देवी वीरा

(एक क्रान्तिकारी महिला की आत्म-कथा)

रूस की प्रसिद्ध क्रान्तिकारी महिला वीरा फिगनर

सुरेन्द्र शर्मा

देवी वीरा

(एक क्रान्तिकारी महिला की आत्म-कथा)

मूल लेखिका

वीरा फिगनर

भाषान्तरकार

श्रीसुरेन्द्र शर्मा

प्रकाशक,

शारदा-सदन, प्रयाग

प्रथम बार } १९३१ { मूल्य १॥)

प्रकाशक :—

शारदा-सदन, प्रयाग ।

मुद्रक—

बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गव,

स्टैण्डर्ड प्रेस, प्रयाग ।

अमर शहीद श्रद्धेय श्रीगणेशशङ्कर विद्यार्थी

सर्वतोमुखी क्रान्ति के उपासक, भारतीय स्वतन्त्रता के पुजारी,

'लड़ाई के पक्षपाती' और पीड़ित मनुष्यता के रक्षक

अमर शहीद श्रद्धेय श्रीगणेशशङ्करजी विद्यार्थी

की बलिदानी आत्मा को

सादर समर्पित ।

—सुरेन्द्र

विषय-सूची

भूमिका

इस पुस्तक के लेखक पंडित सुरेन्द्र शर्मा से मुझे ज्ञात हुआ कि स्वर्गीय गणेशशङ्करजी विद्यार्थी ने इसकी भूमिका लिखने का वचन दिया था, परन्तु कानपुर के हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों में उनके बलिदान के कारण यह भूमिका न लिखी जा सकी। शर्माजी ने आग्रह किया कि जो काम विद्यार्थीजी करने वाले थे उसे मैं करूँ। साधारण अवस्था में तो मैं इस काम से क्षमा माँगता, किन्तु मेरे प्रिय मित्र विद्यार्थीजी की याद दिलाकर उनके नाम पर जब यह काम मेरे सामने रक्खा गया तो उसे स्वीकार करना पड़ा।

यह पुस्तक वीरा फिगनर की लिखी हुई पुस्तक के अँग्रेज़ी अनुवाद Memoirs of A Revolutionist के आधार पर लिखी गई है। शर्माजी ने मुझे अँग्रेज़ी पुस्तक भी देखने को दी थी। मैंने उसे पढ़ लिया था। वह पुस्तक लम्बी है। उसकी मुख्य बातें और मुख्य विचार कम स्थान में लिखे जा सकते थे। शर्माजी ने हिन्दी पढ़ने वालों के लिए उसकी मुख्य बातें ले ली हैं। इस पुस्तक में पुराने रूसी क्रान्तिकारियों के काम का चित्र प्रेम और उत्साह से खींचा गया है। रूस में क्रान्ति की पुरानी आग बहुत दिनों से सुलग रही थी। रूस के ज़ारों ने क्रान्तिकारियों के मार्ग बदलने के अवसरों को किस प्रकार छोड़ दिया, यह भी इस पुस्तक में चित्रित है; किन्तु साथ ही इसके पढ़ने के बाद हृदय पर यह असर नहीं पड़ता कि छिप छिप कर जो काम क्रान्तिकारियों ने करना चाहा उसमें उन्हें उनके त्याग के अनुकूल सफ-

सत्ता मिली। रूस का पीछे का इतिहास यह प्रकट करता है कि क्रान्ति की सफलता वहां तब दिखाई पड़ी जब कुछ विशेष अधिकारियों की जान लेने की फिक्र छोड़कर, क्रान्तिकारियों का ध्यान, जनता को समझाने, उनमें अपने अधिकारों और अपनी उन्नति के विचारों को उत्पन्न करने और उनको कष्ट-सहन के लिए तैयार करने में लगा। वास्तव में सब ही स्थायी क्रान्तियों के भीतर विचार-परिवर्त्तन का काम सदा मुख्य होता है। विचार-परिवर्त्तन करने में क्रान्तिकारी को जो कुछ भी खुले तौर पर कष्ट सहना पड़े वह उसके कार्यों में मदद देता है और उसके विचारों को और फैलाता है। क्या सामाजिक और क्या राजनीतिक, क्रान्तियां सब इसी प्रकार होती हैं। लूथर, कार्ल-मार्क्स, लेनिन, गांधी—इन सब क्रान्तिकारियों के भिन्न भिन्न रास्ते हुए हैं। किन्तु इन सबों ने ही जनता के खुले क्षेत्र में निडर होकर अपने सिद्धान्तों का प्रचार करना और जनता को जगाना—इन कामों को, बम्ब या पिस्तौल से दस बीस आदमियों को मारने की अपेक्षा, अधिक उपयोगी देखा।

हिंसा और अहिंसा के विवाद को छोड़कर भी, यह अनुभव से देखा गया है कि एक ऐसे आदमी का त्याग और बलिदान जो अपने सिद्धान्तों पर बराबर दृढ़ रहता है और अपने सिद्धान्तों को खुले आम पुकारता हुआ उनके लिए कष्ट सहन करता है, अन्य बहुत से आदमियों को उसकी ओर खींच लेता है, और उसीके समान बलिदान करने को तैयार कर देता है। इस प्रकार बढ़ता हुआ यह चक्र ज़बर्दस्त साम्राज्यों के रोके भी नहीं रुकता और दुष्टता और अन्याय को अपने भ्रमण में समाप्त करता जाता है।

भारतवर्ष में आज क्रान्ति की चारों ओर चर्चा है। इसलिए दूसरे देशों के क्रान्तिकारियों की कथायें स्वभावतः रोचक होती हैं। यह

पुस्तक भी इसी आधुनिक समय की लहर में लिखी गई है। पाठक-गण इसे पढ़कर रूस के सम्बन्ध में अपनी जानकारी बढ़ावेंगे। किन्तु उन्हें रूस के क्रान्तिकारियों के कार्यों को अपने अनुभव की तराज़ू पर तौलना होगा। संसार में जिस प्रकार दो मनुष्य बिलकुल एक नहीं होते, उसी प्रकार संसार के इतिहास में दो घटना-समूह भी कभी एक नहीं हुए। एक-ही मार्ग सब स्थलों में नहीं चल सका। हमें भी सदा यह स्मरण रखना चाहिए कि भारतवर्ष की स्थिति में रास्ता खोलने-वाले के लिए किसी की नक़ल शक्तिदायिनी न होगी। हमें अपने जल-वायु, स्वभाव, अपनी मर्य्यादा और संस्कृति के अनुकूल रास्ते निकालने होंगे और उन रास्तों पर खुली रीति से जनता को ले चलना होगा। उभरी हुई, सुलझी हुई, बलिदान देने के लिए तैयार, शक्तिवान् जनता पर ही हमारा अन्तिम भरोसा है।

पुरुषोत्तमदास टण्डन
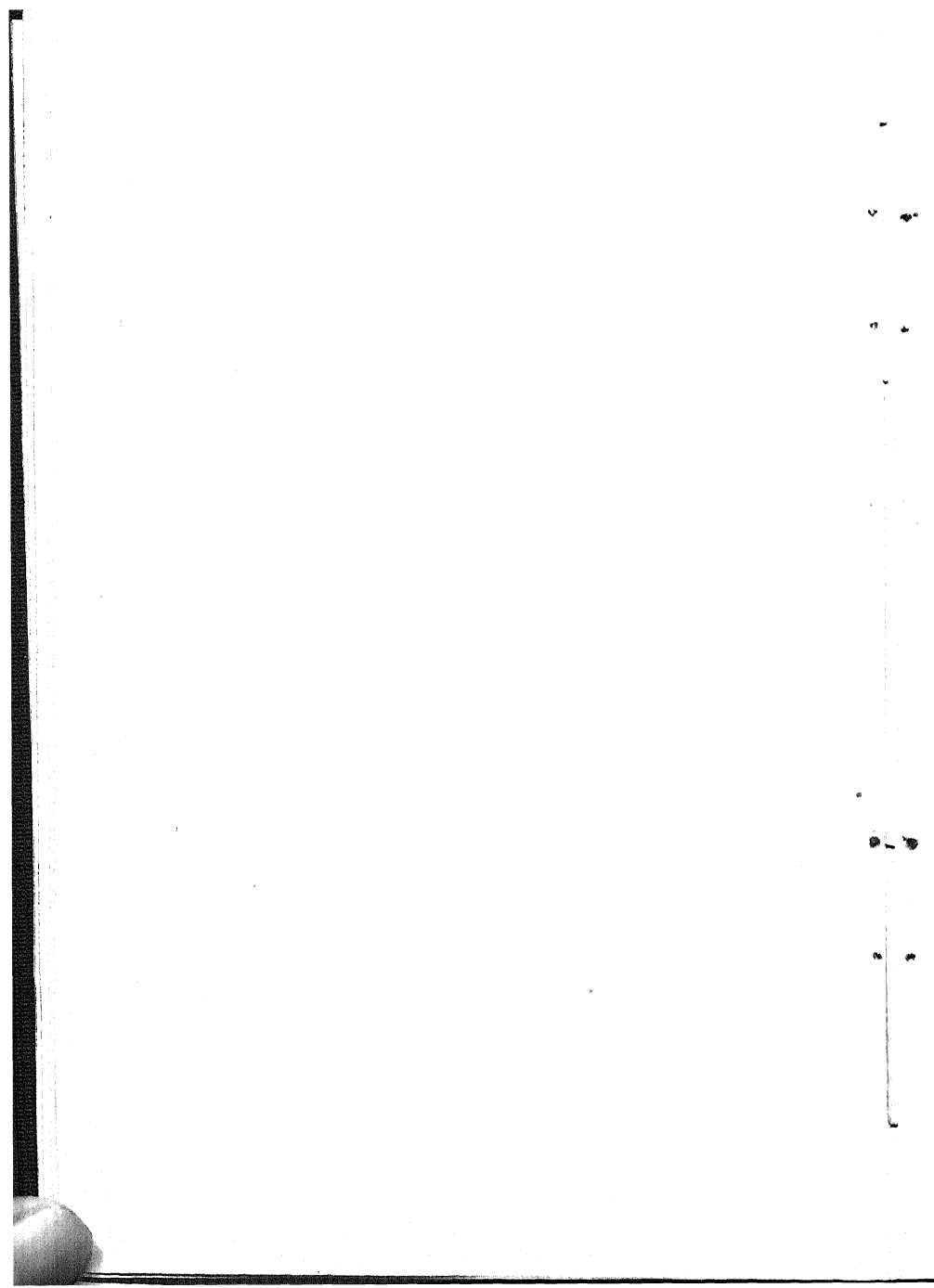
अपनी बात

संसार के इतिहास में रूस की राज्य-क्रान्ति का स्थान बड़ा महत्त्व-पूर्ण है। यह क्रान्ति आधुनिक युग की सबसे बड़ी और ज़बर्दस्त घटना है। इस महाक्रान्ति की घड़ियाँ निकट लाने, और रूस की भव्य भूमि पर स्वतंत्रता देवी का विशाल मन्दिर खड़ा करने के लिए वहाँ की जनता को बड़े से बड़े बलिदान देने पड़े। क्रान्ति के पहले बहुत दिनों तक रूस में ज़ारशाही का बोलबाला रहा। शासन के प्रत्येक क्षेत्र में ज़ोर-ज़ुल्म का दौर-दौरा था। ज़ार की मशीन के पुर्ज़ों ने, समय समय पर सार्वजनिक हितों को कुचलने और समूचे रूसी जीवन का सदा के लिए अन्त कर डालने के उद्योग में रत्ती-भर भी कोर-कसर नहीं रखी। उस निरंकुशता के त्रासमय वातावरण में दिनदहाड़े 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की नीति की तूती बोलती थी। चारों ओर उस त्रास-युग (Reign of Terror) का आतङ्क जम रहा था, जिसकी कल्पना से आज भी हृदय काँप उठता है। उस वातावरण में सचमुच लोक-हित नाम की कोई चीज़ नहीं रह गई थी। जनता सरकार के लिए थी, 'सरकार जनता के लिए' नहीं।

बहुत दिनों तक ज़ारशाही के सुख और स्वार्थ के लिए अबाध गति से रूसी जनता का दोहन होता रहा। राज्य का शासन-विधान, नियम-क़ानून आदि सभी बातें, सार्वजनिक हितों का ख़ून करके, सरकारी मशीन की शान और सत्ता को अधिकाधिक सुदृढ़ बनाने और उसकी जड़ें सदा के लिए पाताल में गड़ी रखने के लिए, काम में लाई जाती

रहीं। ज़मींदार और पूँजीपति दोनों ही, ज़ारशाही के हाथों में बड़े काम के और ज़बर्दस्त हथियार साबित हुए। इन हथियारों के द्वारा रूस के मज़दूर और किसानों का ख़ूब दोहन हुआ। बेगार और ग़ुलामी की प्रथा ने, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, ग़रीब आदमियों का ख़ून चूसकर उन्हें जीवित शव के समान निकम्मा बना दिया।

सौ वर्ष से कुछ अधिक समय हुआ, जब, इस दशा का अन्त कर देने के लिए, रूस के कुछ समझदार और उन्नत विचार के लोगों ने आवाज़ उठाई। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि देश में निरंकुश और रक्त-शोषणी सत्ता की जगह, प्रातिनिधिक सत्ता स्थापित होनी चाहिए और रूस की राजनीति में इस सिद्धान्त पर अमल किया जाना चाहिए कि सरकार जनता की हो, और उसके हाथों में उसकी बागडोर भी हो। देश-हित को सामने रख कर सरकार जनता के लिए हो, न कि, जनता सरकार के लिए। यह आवाज़ सुनकर ज़ारशाही के कान खड़े होगये और उसने एकदम अपने दमन-चक्र से उन लोगों का सर कुचल दिया जिन्होंने प्रातिनिधिक शासन की आवाज़ उठाई थी। किन्तु ज़ारशाही का दमन-चक्र लोक-मत को सर्वथा कुचल देने में समर्थ न हो सका। प्रातिनिधिक शासन की जो विचार-ध्वनि एक बार रूस के वायुमण्डल में गूँज चुकी थी वह बराबर अपना काम करती रही। आगे आनेवाली नई सन्तति के कानों के पर्दों तक उसकी प्रतिध्वनि पहुँची। नतीजा यह निकला कि उसी वायु-मण्डल में से अब ज़ारशाही से कशमकश करनेवाले नये आदमी पैदा होगये।

सन् १८१८ से १८८१ तक, ज़ार एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय का समय था। उसके प्रारम्भिक समय में, शासन में कुछ सुधार हुए और सन् १८६१ में ग़ुलामों का छुटकारा भी। भूमि और अदालत-सम्बन्धी सुधारों के साथ, स्थानीय स्वराज्य-संस्थाओं की स्थापना भी हुई। इन सब

बातों से रूस के सार्वजनिक जीवन को कुछ बल मिला और सामाजिक शक्तियों को काम करने के लिए अधिक व्यापक क्षेत्र। परन्तु इन नाम-मात्र के सुधारों से शिक्षित समुदाय को सन्तोष नहीं हुआ। कारण यह था कि केवल नाम के लिए ग़ुलामी की प्रथा का अन्त होने, तथा शासन के बाहरी ढाँचे में नाममात्र के सुधार होजाने पर भी, किसानों की आर्थिक दशा में कोई अन्तर नहीं पड़ा। उनकी रोटी का सवाल हल नहीं हुआ। दिखावटी 'स्वतन्त्रता' से किसानों की आशायें पूरी नहीं हुईं। इधर दिन पर दिन बढ़ता हुआ शिक्षित समाज, लोकोपयोगी कामों के लिए अधिक से अधिक व्यापक क्षेत्र ढूँढ़ने लगा। नागरिक स्वतंत्रता के अभाव में उस व्यापक क्षेत्र का मिलना असम्भव था जिसमें लोक-सेवा के लिए शिक्षित समाज की शक्तियों का उपयोग हो सकता। इस दशा में यह कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि लोकोपयोगी कामों के लिए अधिक से अधिक व्यापक क्षेत्र ढूंढ़ निकालने की साध में, बहुत ही गरम विचार के जोशीले देशभक्तों ने रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन का श्रीगणेश कर दिया।

धीरे धीरे क्रान्तिकारी आन्दोलन की आग रूस भर में फैल गई। उस आग की लपटें राज-प्रासादों से लेकर झोंपड़ियों तक में जा पहुँचीं। किसान बहुत ही हीन दशा में थे। इसलिए इस आन्दोलन में बहुत आगे बढ़ने की शक्ति उनमें न थी। फिर भी अन्त तक क्रान्तिकारियों के साथ उनकी पूरी सहानुभूति रही। कारखानों के मज़दूरों से तो इस आन्दोलन को बहुत सहायता मिली।

ज़ारशाही से क्रान्तिकारियों की कशमकश शुरू होगई। उस कशमकश में युवक और युवतियाँ दोनों ही आगे बढ़े। दिनदहाड़े वह सम्राट एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय मारडाला गया, जिसे रूस की सम्पूर्ण शासन-सत्ता के अधिनायक की हैसियत से राज-सिंहासन पर आसीन होने का

गर्व था और जिसने स्वयं करोड़ों प्राणियों के ऊपर शासन करने की ज़िम्मेदारी अपने कन्धों पर ले ली थी ! ज़ार की हत्या के फल-स्वरूप अनेक उत्साही युवक फाँसी के तख़्ते पर लटका दिये गये ! इसी समय वह वीराङ्गना सोफिया पैरौव्स्काया हँसते हँसते शूली पर चढ़ गई जिसने अपने अनुपम बुद्धि-कौशल के बल पर, पहले से क्रान्तिकारी पार्टी द्वारा किये गये सारे आयोजन को पलट कर, एक क्षण में नये सिरे से ज़ार की हत्या का प्रबन्ध कर डाला और जिसे अपने उद्योग में पूरी सफलता मिली ! क्रान्तिकारियों का यह सब उद्योग, एक सङ्गठित और सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा ज़ारशाही का अन्त कर, रूस में साम्यवाद की भित्ति पर, एक ऐसी प्रजातंत्र शासन-प्रणाली स्थापित करने के लिए था, जिसमें साधारण से साधारण आदमी का भाग रहे, और जिसकी छत्र-छाया में सर्वत्र स्वतंत्रता, समता, न्याय, बन्धुत्व, प्रेम और मानवीयता के समान अधिकारों की विजय-दुन्दुभी बज उठे। बस, संक्षेप में, 'देवी वीरा' की आत्मकथा के साथ इस पुस्तक की राम-कहानी का यही आधार है।

इस पुस्तक की मूल लेखिका देवी वीराफिगनर का नाम रूस के प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। यौवन-काल ही से अपने देश के आत्मोद्धार के लिए उन्होंने क्रान्तिकारी आन्दोलन में खुलकर भाग लिया। इस काम के लिए उन्होंने व्यक्तिगत सम्बन्ध, सुख, स्वार्थ, पारिवारिक बन्धन आदि सभी मोह-पाशों को तोड़कर सदा के लिए बालाए-ताक रख दिया। इन सब बातों से ऊपर उठ कर उन्होंने देश-सेवा की पवित्र वेदी पर अपना सम्पूर्ण जीवन ही उत्सर्ग कर दिया।

क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने और सशस्त्र विद्रोह खड़ा करके ज़ारशाही को रूस की भूमि से उखाड़ फेंकने के उद्योग में 'देवी

वीरा' को फाँसी की सज़ा का हुक्म हुआ। किन्तु बाद में यह सज़ा बदल कर उन्हें आजीवन कालेपानी का दण्ड दिया गया। अपने यौवन-काल में कितनी सरगर्मी से उन्होंने क्रान्तिकारी आन्दोलन में योग दिया, और फिर, २० वर्ष तक जेलों की चहारदीवारी में बन्द रह कर, उन कामों के पुरस्कार-स्वरूप उन्होंने कैसी भयङ्कर यातनायें सहीं, आदि बातों का सजीव चित्र इस आत्म-कथा में देखने को मिलता है। रूस की जेलों और साइबेरिया के निर्वासन से, उन दिनों किसी आदमी का जीवित लौटकर आना, सचमुच मौत के मुँह में से बचकर निकल आने के समान था। सन्तोष की बात इतनी ही है कि ज़ार-शाही का दमन-चक्र 'देवी वीरा' की अत्यन्त पराक्रमी और साहसी आत्मा को पीस डालने में असमर्थ रहा। इससे वे अपने जीवन-काल ही में आज़ाद रूस की भूमि पर स्वातंत्र्य-सूर्य्य की सुनहली रश्मियों का प्रसार देखकर, अपने और उन स्वर्गीय साथियों के उद्योगों को सफल होते हुए देख सकीं, जिनके साथ आज़ादी की लड़ाई में, उन्हें कन्धे से कन्धा मिलाकर, अपने शक्तिशाली शत्रुओं के दाँत खट्टे कर देने का स्वर्ण अवसर मिला था।

देवी वीरा के अनेक साथी अपने देश की आज़ादी की दीप-शिखा पर पतङ्ग की भाँति बलि चढ़ गये। अपने जीवन में वे रूस के स्वातंत्र्य-प्रभात के दर्शन भी न कर सके। परन्तु इससे क्या, उनके पवित्रतम जीवन के बलिदानों का वह महत्त्व भुलाया जा सकता है, जो रूस के नव्य राष्ट्र के निर्माण के लिए, उसकी नींव में अपनी अस्थियाँ गला कर, सदा के लिए विस्मृति के गहरे गर्त्त में गिर पड़ने से उन्हें प्राप्त है? असल बात यह है कि वे वास्तव में स्वतंत्रता के पुजारी थे और युद्ध में बड़े गौरव के साथ वीर-गति प्राप्त करके उन्होंने उसका पूरा मूल्य चुका दिया! अपनी अमर कृतियों से उन वीरों ने रूस के

इतिहास में वह चमकता हुआ गौरव-पूर्ण अध्याय जोड़ दिया जो विश्व के बलिदानों के इतिहास में अपना सानी नहीं रखता।

जो लोग रूसी स्वतंत्रता की लड़ाई में काम आगये, अथवा फाँसी पर चढ़ा दिये गये, वे अपने जीवन में उस महाक्रान्ति की ज्वाला धधकते हुए नहीं देख सके जिसका अमर बीज उन्होंने बोया और अपने हृदय का रक्त देकर उसे सींचा था। परन्तु इससे यह तो हर्गिज़ नहीं कहा जा सकता कि उनका बलिदान व्यर्थ ही गया, अथवा उन्हें सफलता नहीं मिली। क्यों? इसलिए कि, रूस में इस युग में जो महाक्रान्ति की ज्वाला जगी, वह रूसी जनता के प्रायः सौ वर्ष से ऊपर के असन्तोष, सङ्घर्षण, अनुपम त्याग और बलिदानों के धीरे धीरे एकत्रित होने वाले विराट पुञ्ज के फल स्वरूप थी और उसके जगाने में प्रत्येक क्रान्तिकारी का छोटे से छोटा बलिदान बड़ा ज़बर्दस्त कारण था।

वीरा फिगनर ने २० वर्ष के लम्बे जेल-जीवन के बाद यह आत्म-कथा लिखकर अपने और अपने साथियों के उन विकट उद्योगों पर खुल कर प्रकाश डाला है, जिनके कारण रूस से ज़ार की निरंकुश सत्ता का नामोनिशान मिट गया, और आगे चलकर, वहाँ पूर्ण स्वतंत्रता के प्रकाश में, एक सुदृढ़ साम्यवादी आधार-शिला पर, सोवियट प्रजातंत्र शासन की स्थापना तक होसकी। देवी वीरा का जीवन त्याग और कष्ट-सहन का एक आदर्श जीवन रहा है। उनके जीवन की पुण्य गाथा हृदय को बहुत ऊँचा उठाने वाली है। हीनता और दुःखों के गहरे गर्त्त में गिरे हुए जीवन को, कर्मक्षेत्र में खड़ा होने के लिए, उससे आशा और नव स्फूर्ति का सन्देश मिलता है। इसी कारण उनकी आत्म-कथा के अँग्रेज़ी अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर करने का साहस किया गया।

मूल पुस्तक रूसी भाषा में है। अँगरेज़ी में 'एक क्रान्तिकारी की आत्म-कथा' Memoirs of A Revolutionist के नाम से उसका अनुवाद प्रकाशित होचुका है। अँगरेज़ी पुस्तक बहुत बड़ी है। इसलिए ज्यों का त्यों अनुवाद न करके, उसके आधार पर आवश्यक बातें लेकर यह पुस्तक लिखी गई है। पुस्तक तैयार करने में अपने परम हितैषी आदरणीय कुँ० भुवनपालसिंह साहब बी० ए०, आक्सन, (कोटला, आगरा) से मुझे बहुत सहायता मिली है, इसके लिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। यदि उनका इतना अधिक समय और श्रम इस काम में न लगता, तो यह पुस्तक इतनी जल्दी तैयार न हो सकती।

इस पुस्तक की भूमिका की एक लम्बी, किन्तु दर्दनाक कहानी है। आरम्भ में, भूमिका लिखने के लिए, यह पुस्तक देश के सम्मान्य नेता भू० पू० राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू के हाथों में दीगई। उन दिनों कराची-कांग्रेस की तैयारी में वे इतने व्यस्त थे कि भूमिका लिख देने का वचन देकर भी, न लिख सके। फिर 'प्रताप' के सम्पादक श्रद्धेय श्रीगणेशशङ्करजी विद्यार्थी के हाथों में यह पुस्तक दी गई। उन्हें जेल से आये हुए बहुत थोड़े दिन हुए थे। सार्वजनिक काम और घरेलू चिन्ताएँ उनकी जीवन-सहचरी के तुल्य थीं। इन दोनों बातों से उन्हें समय मिलना कठिन था। वे अपनी स्वाभाविक मृदुल मुसकान के साथ बोले—"इस दशा में, जब कि जेल से बाहर आये हुये मुझे ८-९ दिन हुए हैं, तुम मेरे हाथ में इस काम की ज़िम्मेदारी छोड़ कर, मेरे साथ ज़ुल्म कर रहे हो!" मैंने ज़रा गम्भीर होकर कहा—"हाँ, बात तो कुछ ऐसी ही है, परन्तु जहाँ मैंने अब तक के जीवन में आपको अनेक कष्ट दिये हैं, वहाँ यह एक कष्ट और सही, यह काम तो आप ही को करना है!" कुछ सोच कर विद्यार्थीजी ने कह

दिया कि पुस्तक छोड़ जाओ, ३-४ दिन में भूमिका लिखकर मैं इसे भेज दूँगा ।

मैं भूमिका की प्रतीक्षा में था । गत २३ मार्च तक विद्यार्थीजी इस पुस्तक को पढ़ते भी रहे । २४ मार्च को कानपुर का हिन्दू-मुस्लिम दङ्गा शुरू होगया । २५ मार्च की शाम को विद्यार्थीजी के रूप में 'प्रताप' का सूर्य्य अस्त होगया ! राष्ट्रीयता के दीपक की वह जगमगाती हुई ज्योति बुझ गई जिसके आलोक से कानपुर नगर देश भर में चमकता हुआ दिखाई पड़ता था ! स्वदेशानुराग की वह मञ्जुल मूर्त्ति, जो अद्भुत आकर्षण से बड़े से बड़े प्रभावशाली व्यक्तियों तक को बरबस अपनी ओर खींच लेती थी, अनन्त के गर्भ में सदा के लिए विलीन होगई ! निस्पृह सेवा, त्याग और बलिदान के कुसुमों की वह नव कुसुमित लतिका, जिसके सौरभ से इस देश का सार्वजनिक वातावरण सदा सौरभित होता रहता था, मुट्ठीभर जीवित शव के समान कायर प्राणियों के निर्दय हाथों ने बड़े बुरे समय में तोड़ डाली ! अपनी उज्ज्वल कृतियों के बल पर नर से नारायण बन जानेवाली महान आत्मा, इस पतित भारतीय समाज के आत्मोद्धार के लिए बलि चढ़ गई और उस अमर लोक में जा पहुँची, जहाँ पहुँच कर कभी कोई वापस नहीं आता !

त्यागमूर्त्ति बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन ने स्वर्गीय विद्यार्थीजी की स्मृति में, उन्हींके नाम पर, इस पुस्तक की भूमिका लिख देने का जो कष्ट उठाया, उसके लिए थोड़े से शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करना, उस स्नेह-भाव के गौरव [illegible] म करना है, जो वे उनके लिए अपने हृदय में रखते हैं ।

—सुरेन्द्र शर्मा

इस भूमिका के पृष्ठ १ से १६ तक, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में श्री शारदा प्रसाद खरे द्वारा मुद्रित हुए ।
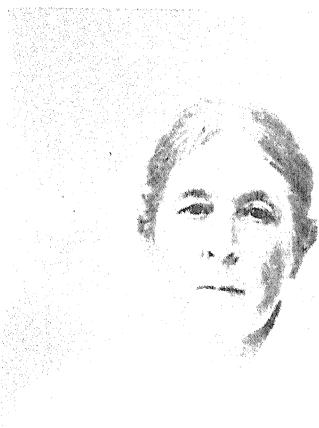
वीरा फिगनर
(सन् १६२६ में)

देवी वीरा
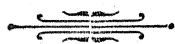
एक क्रान्तिकारी महिला की आत्म-कथा

१

मेरा परिवार

मेरा जन्म २४ जून सन् १८५२ को कैज़ाँ प्रान्त में एक समुन्नत और कुलीन परिवार में हुआ था। मेरी माँ ने वही साधारण घरेलू शिक्षा प्राप्त की थी जो उस समय प्रायः स्त्रियों को दी जाती थी। मेरे नाना टैटीऊशी ज़िले के जज थे। उन्होंने अपने जीवन में अपना धन-माल ख़ूब बर्बाद किया। ऊफा प्रान्त में उनके पास लगभग १७ हज़ार एकड़ ज़मीन थी। इसके अतिरिक्त एक दूसरे ज़िले में उनके पास कुछ और भी ज़मीन थी। इस पर भी, जब वे मरे, तब उनकेऊ पर इतना अधिक क़र्ज़ था कि उनके वारिसों को अपना पैतृक अधिकार छोड़ देने को विवश होना पड़ा।

मेरे पिता निकोलाइ एलेक्ज़ेण्ड्रो विच फ़िगनर ने जङ्गलात की शिक्षा प्राप्त की। पढ़ाई समाप्त होने पर वे जङ्गलात के महकमे के एक अफ़सर बना दिये गये। उस पद पर पहले उन्होंने मैमाडीशी ज़िले में और बाद को टैटीऊशी ज़िले में काम किया। परन्तु गुलामों के छुटकारे के बाद, जब तक स्थानीय मजिस्ट्रेट का पद रहा तब तक वे उस पर काम करते रहे।

उन दो बच्चों के सिवा, जो बचपन ही में इस दुनियाँ से चल बसे, हमारे परिवार में ६ आदमी थे। मेरे माँ-बाप दोनों ही बड़े कार्यशील व्यक्ति थे। काम करने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। उनके शरीर का गठन बहुत सुदृढ़ था, और वैसी ही उनकी इच्छा-शक्ति भी दृढ़ थी। इस दृष्टि से उनसे हमें बहुत अच्छे पैतृक संस्कार मिले थे। मैं अपने बहिन-भाइयों में सबसे बड़ी थी। निरंकुश और एकतंत्र सत्ता के विरुद्ध सङ्घर्षण के युग में, मैंने क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लिया। फलस्वरूप मुझे प्राण-दण्ड का हुक्म मिला और मैं श्लूसैलबर्ग के दुर्ग में क़ैद कर दी गई। मेरी बहिन लिडीआ क्रान्तिकारी दल की मेम्बर थी। वह दल कारखानों के मज़दूरों में साम्यवाद का प्रचार कर रहा था। उसे कई वर्ष के लिए सपरिश्रम कारावास का दण्ड दिया गया। परन्तु सीनेट ने यह सज़ा बदल कर, उसे जन्म भर के लिए पूर्वी साइबेरिया में निर्वासित कर दिया। मेरा भाई पीटर, पर्म और ऊफा के प्रान्तों में खानों का इञ्जीनियर था। मेरा भाई निकोलाई गान-विद्या में बड़ा प्रवीण था। वह थियेटर में गाना सुना कर, तथा स्टेज पर खेल दिखा कर लोगों को मुग्ध कर देता था। लोगों को मुग्ध करने में उसकी सुन्दरता और भी सहारा देती थी। अपने

२५ वर्ष के जीवन में, अनुपम सङ्गीत और नाट्य-कला के बल पर, उसने हज़ारों आदमियों को आनन्दित किया था।

सन् १८८० में शाही महल में जो धड़ाका हुआ, उसके फलस्वरूप मेरी बहिन ईव्जीनिया के नागरिक अधिकार छिन गये और निर्वासित करके वह साइबेरिया भेज दी गई। मेरी सबसे छोटी बहिन औल्गा बहुत योग्य लड़की थी। उसमें काम करने की बड़ी क्षमता थी। उसने भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में कुछ भाग लिया। उसने डाक्टर फ़्लौरौस्की के साथ विवाह किया। जब अधिकारियों ने डाक्टर साहब को निर्वासित करके साइबेरिया भेज दिया तब बहिन भी वहाँ गई। औम्स्क में रहकर वह भी अपने पति के साथ साहित्यिक काम में लग गई। इसके बाद औल्गा ने यारोस्लाव में काम किया, फिर अपने पति की मृत्यु के बाद वह सेन्टपीटर्सबर्ग में रहकर काम करने लगी। साइबेरिया में मेरी बहिन लिडीआ और ईव्जीनिया ने पहले राजनैतिक क़ैदियों स्टाकेविच और साज़िन के साथ ब्याह कर लिया। वे लोग बल, बुद्धि, प्रतिभा आदि में बहुत योग्य थे।

मेरी इच्छा

पिता के कथनानुसार मैं बचपन में बहुत सुन्दरी थी। इसीलिए बाहर से आने वाले लोग मेरे ऊपर ख़ास तौर से ध्यान देते थे। माँ-बाप अपने सब बच्चों के साथ एक-सा व्यवहार करते थे। बाहर के आने-जाने वाले आदमी मुझे थपथपाते, छोटी-मोटी चीज़ें दे देते, और मेरी बात-चीत से अपना मनोरञ्जन करते थे। अपनी से अधिक उम्र के आदमियों

के साथ से बड़ी जल्दी मेरा विकास हुआ और मेरे अन्दर ऐसे ख़याल पैदा हुए, जो प्रायः इतनी कम उम्र में नहीं हुआ करते।

एक बार हम मैमाडीशी में अपनी बुआ के यहाँ गये। बुआ के एक मित्र आँएडे आँएडे विच काटकौव अपना सारा दिन वहीं बिताते थे। वह मेरे साथ हँसी-मज़ाक करते और मुझसे खेला करते थे। वह मुझे अक्सर अपनी स्त्री कहकर, और मैं उन्हें अपना प्यारा स्वामी कहकर पुकारा करती थी। फिर हम लोग टैटीऊशी ज़िले में चले गये। उस समय मैं ७ वर्ष की भी न थी। वहाँ आँएडे का एक पत्र आया, जिसे मेरी चाची ने ज़ोर से पढ़ा। उसमें लिखा हुआ था कि आँएडे की शादी होने वाली है। इस ख़बर से मैं बहुत खीझ गई और सोचा कि जब वह मुझे अपनी स्त्री कहकर पुकारा करता था, तब उसे शादी करने की हिम्मत कैसे हुई? इस दशा में, जबकि मैं यह ख़याल करती थी कि वह मुझसे बँधा हुआ है, यह उसका विश्वासघात था, और थी मुझे अपमानित करने के लिए एक कमीनी हरकत! मैंने बहुत आँसू नहीं बहाये; मेरे दिल ने मुझसे कहा कि अपने से बड़े आदमियों से इस सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं करनी चाहिए, इसलिए मैं चुप रही।

जब मैं ६ वर्ष की थी, तब बाद में भी, कुछ इसी तरह की घटना हुई। उन्हीं दिनों मौसी हमारे साथ रहने को आगई। वह नवयुवती थी। हाल ही में रौड्यौनौव्स्की कैज़ाँ इन्स्टीट्यूट से वह ग्रेजुएट हुई थी। उसी समय से टैटीऊशी में रहनेवाले पल्टन के अफ़सर हमारे यहाँ आने-जाने लगे। उनमें से यरगौल्स्की नामका एक आदमी मुझसे बातचीत करने के लिए अपना ज़रा भी वक्त न देता था और मैं ख़याल करती थी

कि मेरा उसपर ख़ास अधिकार है। जो कुछ हो, मैंने यह जाँच लिया कि वह मेरी मौसी पर आशक्त था। इससे मुझे ईर्षा हुई। मैंने एक दिन ऐसा मौक़ा निकाल लिया, जबकि मैं और वह दोनों, एक ऐसी गली में, जो एक बाग़ तक गई थी, अकेले रह गये। उस समय मैंने उससे बहुत कहा-सुनी की। उस दिन से मैं नियमित रूप से यरगौल्स्की से मिला करती थी।

यरगौल्स्की अब मेरी ओर आकर्षित होने लगा। उल्लू न बनाकर, अब उसने मुझे सान्त्वना देना आरम्भ किया। अपने पीछे कुछ प्रेमियों की दौड़-धूप से मुझे यह ख़याल हुआ कि मैं बहुत सुन्दरी हूँ, परन्तु साथ ही यह भी सोचने लगी कि मैं इन लोगों के क़ाबिल नहीं, बल्कि किसी बहुत बड़े व्यक्ति के योग्य हूँ।

इसी ज़िले में, क़स्बे से ३ मील दूर, ल्यूडौगौव्का के सुन्दर इलाक़े में दो ऐसी कुलीन महिलाएँ रहती थीं जिनका शाही महल में आना-जाना लगा रहता था। उन्होंने अपना सारा जीवन सेंटपीटर्सबर्ग में बिताया था, और अब ढलती उम्रमें वे यहाँ आकर बस गई थीं। वे स्वयं रात-दिन ताश खेलकर मनोरञ्जन करती थीं और लोग उनके यहाँ शौक़ से आते जाते थे। उनमें से छोटी बहिन जानती थी कि मेरे माँ-बाप मुझे सेंटपीटर्सबर्ग के 'स्मोल्नी इन्स्टीट्यूट'* में भेजना चाहते हैं। जब कभी मैं उससे मिलती, तब आरामकुर्सी पर मुझे वह अपने पास

---

* स्मोल्नी इन्स्टीट्यूट केवल उच्च घरानों की लड़कियों का बोर्डिङ्ग स्कूल था। सन् १९१७ में यह बोल्शेविकों का सदर मुक़ाम होगया।

बैठा लेती और उक्त स्कूल तथा मेरे भविष्य के बारे में चर्चा किया करती थी। वह मुझसे पुकार पुकार कर कहती—"पढ़ने में तुम जितना अधिक परिश्रम कर सकती हो, करना और अपने दर्जे में प्रथम रहने से कभी न चूकना। यदि तुम दर्जे में प्रथम रहोगी तो तुम्हें एक स्वर्ण-पदक मिलेगा। ग्राण्ड-ड्यूक्स और ज़ार स्वयं उस स्कूल को देखने आते हैं। वे तुम्हें देखेंगे और यदि तुम्हें स्वर्ण-पदक मिला, तो, वे अपनी दरबारी स्त्रियों में तुम्हें स्थान देंगे। तुम महल में रहोगी और बड़े-बड़ों के साथ नाचोगी।" इसी तरह की बहुत सी बातें वह कहती थी।

उस समय तक अपने गाँव से अधिक मैं और कुछ नहीं जानती थी। मैंने उन दोनों बहिनों की कहानी इस प्रकार सुनी, जिस प्रकार बच्चे "सहस्र रजनी-चरित्र" की कहानियाँ सुनते हैं। मेरा दिमाग़ और भी बढ़ गया।

उन दिनों नियम के अनुसार माँ हमारे सामने शायद ही ज़ोर से कभी कुछ पढ़ती थी। फिर भी, जब तब वह कुछ पढ़ा करती थी। एक बार वह इतिहास से, प्राचीन मास्को के ज़ारों में से किसी एक ज़ार का जीवन-चरित पढ़ रही थी। किस ज़ार का, यह मुझे ठीक याद नहीं। माँ ने पढ़ा कि जब ज़ार के विवाह का समय हुआ तब उसने एक घोषणा निकाल कर रूस भर के रईसों को हुक्म दिया कि वे अपनी सब सयानी लड़कियों को मास्को लावें। मास्को में ज़ार अपने महल में इकट्ठा हुई लड़कियों को देखता और जो उसे सबमें अधिक सुन्दर दिखाई देती उसीको अपनी स्त्री बना लेता था। फिर आगे चलकर माँ ने यहाँ तक कहा कि ज़ार के दुलहिन पसन्द करने में कैसी चालबाज़ियों से काम

लिया जाता था और कैसे षड़यन्त्र रचे जाते थे, और, किस प्रकार एक युवती जिसने ज़ार को मोह लिया था और ज़ारीना होने वाली थी, चालबाज़ों ने, ज़ाहिरा तौर पर उसकी ख़ूबसूरती को बढ़ाने के लिए, उसके बाल इतने ज़ोर से कस कर बाँध दिये कि वह बेहोश होगई तथा उसके ज़ारीना होने का मौक़ा टल गया।

मैं सोचने लगी—"जब ज़ार शादी करना चाहते हैं तब घरवाले मुझे भी मास्को ले जायँगे, और शायद वहाँ सब लड़कियों में ज़ार मुझे ही पसन्द करेंगे! मैं ज़ार की रानी होजाऊँगी!⋯⋯तब मेरी टहलनी मुझे सोने-चाँदी से सजायेगी। मैं हीरे-जवाहरात पहनूँगी!"

मैं नहीं जानती कि यदि मैं स्मोल्नी जाती, जो कि धनी और अमीर लोगों के बच्चों के स्कूल के लिए बहुत मशहूर था, तो वहाँ क्या घटना होती। पर मैं वहाँ गई ही नहीं। जब कैज़ाँ में घरवालों ने मुझे भेजा तब वहाँ के शिक्षा के ढंग में एक सुखद परिवर्त्तन हुआ। किसी तरह इस संस्था के सादगी और साधुता के वातावरण में, बिना किसी बाहरी आदमी की सलाह के, दरबार और सुनहली मुकुट के ऊपरी चमक-दमक के मेरे मूर्खता-पूर्ण विचार दिमाग़ से निकल गये। जो कुछ हो, बिल्कुल एक अद्भुत ढंग से, मेरा जीवन तरह तरह की आशाओं से ओत-प्रोत हो उठा और मैंने, यदि ज़ारशाही नहीं, तो किसी भी तरह एक बादशाही ज़रूर पा ली!

श्लूसैलबर्ग में, क़ैदियों में दो क़ैदिनें भी थीं। एक वोकेन्स्टाइन और दूसरी मैं। हमारे साथी कभी कभी अपनी मधुर बातों में कोमलता का पुट देकर हमारे जीवन की विषादता को चमका देते थे। वे हमें

'रानियाँ' कहकर पुकारते थे। मैंने हीरे-जवाहरात और शाही ताज तो नहीं पहने, किन्तु पहना क्या, जेल का एक ऐसा ख़ाकी कोट जिसकी पीठ पर हीरे ही की शक्ल का एक पीला थेगरा लगा हुआ था।

घर पर

मैं बचपन में एक चपल और होशियार लड़की थी। चालाक, घमंडी और झगड़ालु भी थी। अक्सर अपने बराबर के भाई-बहिनों को गाली दे बैठती। जब मैं झगड़े में व्यस्त रहती, तब वे मुझे अलग घसीट ले जाते और कहते—"लड़ाई बन्द करो!" इसके उत्तर में मैं पुकार उठती—"मैं लड़ना चाहती हूँ!" मैं क्रोध में भर कर ज़मीन पर उसी तरह उछल-कूद मचाने लगती जिस प्रकार ऐसे अवसरों पर शैतान लड़के विचित्र तरह की हरकतें किया करते हैं। मेरी इस तरह की हरकतें पिता के सामने कभी नहीं हुईं।

मुझे गुड़ियों से खेलना पसन्द न था। खेल ही खेल में, बिना जाने मैं लिखना-पढ़ना सीख गई। मुझे ठीक याद नहीं कि मैंने लिखना-पढ़ना असल में कब सीखा। मैं केवल यह जानती हूँ कि क्रिस्टोफौरोव्का में एक कुर्सी पर घुटनों के बल इसलिए खड़ी होजाती थी कि मैं मेज़ तक पहुँच जाऊँ। सम्भवतः अपने जीवन में पहली बार, मैंने अपनी उस चाची के लिए जिसे हम मैमाडीशी में छोड़ आये थे, एक सिलसिले में बहुत से अक्षर लिख डाले थे। उस समय मुश्किल से मैं ७ वर्ष की थी।

स्कूल में भरती होने के समय तक, मेरी माँ, जिसके लिए मैं अपने मानसिक विकास के अन्तिम दिनों में इतनी अधिक कृतज्ञ हुई, अपने

बच्चों के लिए बहुत कम समय देती थी। जब मेरी सबसे छोटी बहिन औल्गा का जन्म हुआ तब मैं १० वर्ष की थी। इस बीच में माँ के छः बच्चे हुए थे।

अपने घरेलू जीवन के दूसरी ओर समय समय पर हमें जब तब कुछ अद्भुत मूर्त्तियाँ दिखाई देती थीं। कभी वे प्रकट हो जातीं और कभी आँखों से ओझल, परन्तु वे सदा हमारे लिए अजनबी होती थीं। सबसे पहला आदमी मैमाडोशी का एक बूढ़ा जर्मन था। बाद में घर का इन्तज़ाम करने के लिए एक दूसरा बेढंगा आदमी आया। उसका मुँह हर वक्त सूजा सा रहता था और उसका नाम भी बड़ा भद्दा था। अन्त में एक दूसरा बूढ़ा आदमी हमें लेखन-कला सिखाने के लिए बुलाया गया। वह पहले हमारे बाबा का ग़ुलाम था। वह अपने सम्बन्धियों के साथ क्रिस्टोफौरौव्का में रहता था। उसकी पोशाक अपने सम्बन्धियों से निराली थी।

हमारे माँ-बाप हमेशा हमसे दूर रहते थे। उन्होंने कभी हमसे घनिष्ठता नहीं बढ़ाई। हमारे सगे-सम्बन्धियों में कोई ऐसा आदमी नहीं था जिसकी आदत बचपन से आनन्दित होकर बच्चों से मिलने-जुलने की होती। घर के बड़ों का प्यार तो सबसे छोटी बच्ची औल्गा के भाग्य में बदा था। वह आठ बरस की थी, तभी पिता का देहान्त हुआ।

हम अपनी माँ को प्यार करते थे। मेरी बहिन और मैं, माँ के अधिक से अधिक पास रहने के लिए एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे। माँ के कमरे के एक कोने पर एक दूसरा कमरा था। वह पीली लकड़ी का बना हुआ था। उसमें पवित्र मूर्त्तियाँ भरी हुई थीं। उनमें ईसा, सेंटनिकोलस,

सर्जी तथा अन्य सन्तों की मूर्त्तियाँ सोने-चाँदी के जड़ाऊ चुगा पहने हुई थीं और प्रकृति की प्रतिमा, मोतियों से सुशोभित थी। कमरे के सामने, छत के ऊपरी भाग में एक छोटा सा लैम्प लटक रहा था और उसकी लौ कमरे के आधे हिस्से को प्रकाशित करती हुई टिमटिमा रही थी। हम लोग वहाँ लेट गये, परन्तु माँ अभी तक बिस्तर पर नहीं आई थी। वह कमरे के सामने खड़ी हुई प्रार्थना कर रही थी। माँ घुटनों के बल खड़ी हुई, मूर्त्तियों की ओर एकटक ध्यान लगाकर बड़े जोश में प्रार्थना कर रही थी। प्रार्थना में वह बहुत धीरे धीरे मुँह से कुछ कहती भी जाती थी। क्या कहती जाती थी, यह कुछ सुनाई नहीं पड़ता था।

बहुत बड़े सुखों, अथवा परेशान करनेवाली मुसीबतों के बिना, माँ के जीवन का प्रवाह एक-सी चाल से चला जारहा था। उस जङ्गली गाँव में, जहाँ कोई बाहरी आदमी से नहीं मिलता, कोई प्रलोभन नहीं थे, और न, वहाँ कोई ऐसी चीज़ थी जो चित्त में बुरी भावना पैदा करती।

उन प्रान्तों में, जीवन,—ख़ासकर एक स्त्री का जीवन—छोटे-मोटे स्वार्थों के तङ्ग दायरों के अन्दर बन्द था, और वैसे भी, प्राकृतिक सुख में मनुष्य की आत्मा इस कारण सन्तुष्ट रहती थी कि न तो आज-कल के से बनावटी अनुभव थे और न, सांसारिक पदार्थों की इतनी आकांक्षा थी, और न, उस दायरे से बाहर जाने की कोई उम्मीद रखता था।

नैतिक पाठ

एक दिन शाम को माँ ने हम सब बच्चों को एक नैतिक पाठ पढ़ाया। अपने नियम के सर्वथा विरुद्ध, उसने हम सब

बच्चों को एक ही कमरे में बुला लिया और बड़े प्रेम से समझा कर कहा —

"सुनो, आज वे एक छोटी लड़की को लावेंगे। वह हमारे साथ रहने को यहाँ ठहरेगी। वह लड़की बड़ी दुखिया है। तुम सब लोग चारों ओर दौड़ सकते हो, पर जबसे उसे बुख़ार आया तभी से, उसकी दोनों टाँगें मारी गईं। वह और बच्चों की तरह चल-फिर नहीं सकती, पर केवल धीरे धीरे रेंग सकती है। ख़बरदार, उसे देखकर हँसने का ख़याल भी न करना! तुम स्वयं देखोगे कि वह कितनी चतुर और भली है।"

वह लड़की हमारी चचेरी बहिन थी। वह जीवन भर लँगड़ी रही। इस बात के थोड़े दिन पहले मेरे साथ एक ऐसी घटना घटी जिसने सदा के लिए मेरे हृदय पर एक गहरी छाप लगा दी। मैं उस घटना को 'टूटे हुए ताले' की कहानी के नाम से पुकारूँगी।

एक छोटे से चौड़े कमरे में लोहे का एक बड़ा भारी सन्दूक़ रखा था। उसमें हमेशा ताला बन्द रहता था। वह 'टहलनियों का कमरा' था। हमारे बाबा के ज़माने से उसका नाम ही 'टहलनियों का कमरा' पड़ गया था। यह इसलिए कि, घर की नौकरानियाँ उसी कमरे में चौखटों पर बेल-बूटे बनाया करती थीं। यहाँ लोहे के बक्स में वे चीज़ें बन्द रखी थीं, जिनका कभी कभी काम पड़ता था। पुराने ढँग का मेज पर बिछाने का कपड़ा, नर्सों के हाथ की तैयार की हुई चीज़ें, रेशमी और ऊनी कपड़े, चाँदी आदि बीसियों चीज़ें बक्स में बन्द रखी थीं। उन कपड़ों को काम में लाने की नौबत ही न आती थी। एक बार माँ ने बक्स खोला और उसे देखना आरम्भ किया। बहिन और मैं उसके

पास चक्कर काटने लगीं। हमने धीरे से सुनहला तमग़ा और लैस छू ली और चाँदी की तश्तरी और प्याले की प्रशंसा करने लगीं। परन्तु सबसे ज्यादा हमें बक्स का लटकता हुआ ताला पसन्द आया। यह ताला अमेरिकन ढँग का, पीतल का बना था। उसकी शक्ल शेर की थी ; सच-मुच शेर की, जिसमें पूँछ और अयाल थे और एक टेढ़ी तश्तरीनुमा जगह में उसमें ताला लग जाता था। हमने उस ताले को कई बार खोला और बन्द किया। इसका खोलना और बन्द करना सचमुच बड़ा अच्छा लगता था। अन्त में जब माँ ने बक्स में ताला लगाया तब ताली नहीं लगी।

माँ ने कहा—"ताला किसने तोड़ दिया?" इस पर एक साथ ही हम दोनों ने पुकार कर माँ को विश्वास दिलाया कि हमने नहीं तोड़ा! माँ ने फिर कहा—"पर किसी ने इसे बिगाड़ तो ज़रूर डाला!" मैंने कहा—"यह लिडी के पास था।"

माँ ने जल्दी से लिडीआ को पकड़ लिया और उसके चाँटे लगाये! उसने रोना आरम्भ किया, परन्तु मैं लज्जित हुई। यह बात दया की नहीं, बल्कि शर्म की, सचमुच शर्म की, है। मैं दोषी थी, शायद मैंने ही वह शेरनुमा ताला तोड़ा था, पर सारा दोष मेरी बहिन के मत्थे मढ़ा गया, और वह इसलिए और भी कि, मैंने कह दिया कि वह शेर उसके पास था।

सम्भवतः बहिन मेरी इस काली करतूत को जल्दी भूल गई, क्योंकि हम लोग ५ और ७ बरस की बच्चियाँ थीं, पर मैं उस लज्जा को, अपने जीवन की पहली लज्जा को, भूल नहीं सकी। इस घटना ने मुझे जीवन भर को एक सबक़ सिखा दिया। वह सबक़ था "दोष अपने ऊपर ओढ़ लेने" अथवा अपना अपराध स्वीकार कर लेने का।

ग़ुलामी

जिस दशा में मेरा बचपन बीता उसमें मैं ग़ुलामी का अर्थ समझ नहीं सकी, और जब इस नाशक प्रथा का अन्त हुआ तब भी उसका मेरे ऊपर कोई गहरा प्रभाव नहीं पड़ा। हमारे प्रारम्भिक घरेलू जीवन में ग़ुलामों पर तानाशाही हुक्मों का आतङ्क जमा रहता था, परन्तु बाद में, हमारे बाप का चरित्र और व्यवहार बदल जाने से उसमें परिवर्त्तन हुआ।

६ वर्ष तक हम जङ्गल में रहे, इससे हम, ज़मींदार और किसान के जीवन से अलग होगये। क्रिस्टोफौरौव्का (Khristoforovka) में लगभग २० मकान तो हमारे बाबा के ग़ुलामों से आबाद थे। इस बात की जाँच करने का कोई साधन नहीं मिला कि किसान और ज़मींदार का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा है। किसानों से ज़बर्दस्ती बेगार कराने की प्रथा मैंने कभी नहीं सुनी थी, और न, मैंने कभी किसी पर ज़ुल्म होते हुए देखा था। मैं यही नहीं समझी थी कि मालिक और ग़ुलामों का पारस्परिक सम्बन्ध या व्यवहार कैसा होता है। केवल उन्हीं ग़ुलामों को मैं जानती थी जो हमारे घर के नौकर थे। माँ सदा उनपर दयालु रहती थी। माँ के अन्दर सन्तोष और मनुष्यता का गुण था। जो लोग उसके पास रहते थे वे सदा उसपर प्रेम करते थे। मेरे पिता का मिज़ाज गरम था। वे नौकरों के लिए खरे और बहुत सख़्त थे। वे हमारे लिए भी उतने ही कड़े थे। जब तब वे बावर्ची पर नाराज़ हुआ करते थे। जब कढ़ी की रकाबी में मक्खी पड़ जाती, अथवा रोटी कम सिकती, तब वे क्रोध में भभक उठते थे। ऐसे मौक़े पर, जब पिताजी को क्रोध आता था, तब माँ हमेशा चुपचाप आँखें नीची किये बैठी रहती थी। हमारे सामने कभी उसने पिताजी

से मुँहजोरी नहीं की, और न, उनके साथ कभी झगड़ा किया। इसी-लिए उन दोनों में हमने कभी झगड़ा होते नहीं देखा। यदि पिताजी बक-झक करते थे और माँ कुछ भी नहीं कहती थी, तो बिना कुछ कहे-सुने हम समझ जाते थे कि उसका चुप रहना पिताजी को अपराधी ठहराना था, और इसलिए, हम सदा उससे सहमत रहते थे।

एक बार जङ्गल में ग़ुलामों के और हमारे सम्बन्ध में एक शोचनीय घटना होगई। घर में हर एक आदमी—माँ और नर्स से लेकर छोटी सी ग़ुलाम लड़की तक—एक अजीब शोर-ग़ुल के चक्कर में पड़ गया। पिताजी घर में नहीं थे। सब लोग बड़ी परेशानी में उनके आने का इन्तज़ार कर रहे थे। उन सबने धीरे से कुछ बातें कीं और मैंने वे सुन लीं। वे लोग घुड़साल में प्रोकौफी (Prokofy) को पीटने जारहे थे। इसका कारण मुझे याद नहीं, शायद यह हो कि वह तीन दिन के लिए ग़ायब रहा था। अहाते में घण्टी व्यर्थ ही उसे घर बुलाने को बज रही थी। सब लोगों ने कहा कि वह आदमी जंगल में स्वयं खोगया और वह गाय भी खोगई जो इधर उधर भटकती फिर रही थी। अन्त में किसी तरह गाय घर आगई। यह बात ठीक है या नहीं, अथवा उस आदमी ने आज़ाद होने को भागने के लिए यह असफल उद्योग किया, और बाद में वापस आगया, यह भी नहीं कह सकती। परन्तु उस नौकर की मरम्मत नहीं हुई, क्योंकि माँ ने पिताजी का क्रोध शान्त कर दिया था।

ग़ुलामी का अन्त होगया। हमें यह बात तब मालूम पड़ी जबकि, माँ की दो उन दासियों ने, जो बहुत वर्षों से हमारे साथ रहती थीं, बड़ी घृणा के साथ, अब अधिक समय तक हमारी टहल करने से इन्कार कर

दिया। वे क्रिस्टोफैरौव्का में अपने परिवारों के साथ रहने को चली गईं। वहाँ उनकी शादी भी होगई। एक अनाथ लड़की पराशा (Parasha) हमारे साथ रह गई। एक नर्स, जो हमारे बाबा के ज़माने में ही आज़ाद हो चुकी थी, अब तक ज़िन्दा थी। वह हमसे केवल प्रेम-बन्धन में ही बँधी थी।

१६ फरबरी सन् १८६१ ई० को, मुझ ऐसी एक बालिका की समझ में, नैतिक और आर्थिक परिणामों के साथ वे उलट-फेर हर्गिज़ न आ सकते थे, जो उस समय साधारण लोगों के जीवन में हो रहे थे। उस दशा में, स्कूल में जितने दिन तक भी मैं रही, तब तक ग़ुलामी और ग़ुलामों के छुटकारे, अथवा ज़मीन के बँटवारे या छूट के सम्बन्ध में, किसी ने एक शब्द तक नहीं कहा। यह बात उन दिनों तक अनसुनी थी।

छुट्टी के दिनों में, मैं अक्सर अपने मकान के बरामदे में किसानों के झुण्ड देखती थी, और पिताजी की लाइब्रेरी में उनकी वह गर्जती हुई आवाज़ भी सुना करती थी, जो, वे न्यायाधीश की हैसियत से, किसानों में समझौते की चर्चा करते वक़्त किया करते थे। वे किस तरह के समझौते की चर्चा करते थे, यह मैंने पूछा नहीं, और न, मुझे दिलचस्पी ही थी। गाँव में पुस्तकें, माँ का साथ, जंगल का सैर-सपाटा, नहाना, मछली का शिकार आदि बहुत-सी आकर्षक बातें थीं। वर्ष में हमें केवल ६ हफ़्ते की छुट्टी मिलती थी। वे हफ़्ते इस तरह जल्दी से बीत जाते थे कि जब तक हम लौट कर फिर स्कूल न पहुँच जाते, तब तक अपनी ओर देखने का हमें तनिक भी समय नहीं मिलता था।

उन दिनों मेरे पिता, परिवार के लोगों के इकट्ठा होने के समय,

गर्मियों में शाम को, अथवा दिन में भोजन के समय, अपने सार्वजनिक कामों के सम्बन्ध में कोई बात-चीत करना पसन्द न करते थे। एक बार, जबकि मैं काफ़ी बड़ी और समझदार होगई, पिताजी ने गैरीबाल्डी के व्यक्तित्व और प्रसिद्ध लेखक डेमर्ट (Demert) के लेखों की चर्चा करते हुए कहा था—"यदि ग़ुलाम आज़ाद न किये जाते और वे विद्रोह खड़ा करते, तो मैं उनके विद्रोह का पथ-प्रदर्शन करता !" पिताजी के यह शब्द स्मरणीय हैं। इनसे मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ।

उस समय मैं इस बात को बिल्कुल नहीं समझ सकी कि पिताजी इस तरह की कोई ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेने को तैयार हैं।

यह बात बाद में मुझे बाहर वालों से मालूम हुई कि न्यायाधीश की हैसियत से, सब मामलों में, पिताजी किसानों के हितों को ध्यान में रखते थे। हर तरह से वे किसानों को ऐसे इक़रारनामे करने से रोकते थे जो उनके लिए अहितकर हों। इसी तरह का एक मामला भिखारियों की मुआफ़ी की ज़मीन के रद्दोबदल का था। यह सब कुछ होते हुए भी, क्रिस्टोफौरौव्का के लोगों ने, जहाँ कि हम रहते थे, स्वतन्त्र रूप से एक बँटवारा मंज़ूर कर लिया, उसके लिए बाद में उन्हें हमेशा पछताना पड़ा। इसी कारण पिताजी ग़ुस्से में भर कर धूर्त्त लोगों को बुरा-भला कहा करते थे, उन धूर्त्तों को, जिन्होंने लोगों को यह सलाह दी कि हाल ही में प्रकाशित हुई विज्ञप्ति में जिस 'स्वतन्त्रता' की चर्चा की गई है वह वास्तव में स्वतन्त्रता नहीं है,—वास्तव में स्वतन्त्रता तभी आयेगी जबकि, मालिकों की सब ज़मीन किसानों के हाथ में मुफ़्त आजायगी।

—०—

२

विद्यालय

सन् १८६३ में, मैं विद्यालय में भरती हुई। अपने परिवार और गाँव से अलग होने में मुझे कोई तकलीफ़ नहीं हुई। छोटी छोटी लड़कियों के साथ में पड़कर, मैंने अपने आपको, तुरन्त ही, नई परिस्थितियों और स्थायी रहन-सहन के साथ जीवन के नये ढाँचे के अनुकूल बना लिया।

दो महिलाएँ मेरी निरीक्षक थीं। उनका रहन-सहन एक दूसरे के विपरीत था। उनमें से एक मैर्या स्टीपानौव्ना (Marya Stepanovna) बड़ी हँसमुख थी। उसका चेहरा सादा और मर्दानी छबि का था, और पीठ पर एक बड़ा कूबड़ होने के कारण वह और भी भद्दी लगती थी। परन्तु वह अपने स्वभाव से सबको मुग्ध कर लेती थी। उसकी धीमी, किन्तु भरी हुई आवाज़ आदमी के हृदय तक पहुँच जाती थी और उसकी मुस्कुराहट और भूरी आँखों की प्रेम-भरी चितवन दूसरों को अपना विश्वास-पात्र बना लेती थी। वह युवती थी। उसके गुलाबी गाल और काले बाल बड़े आकर्षक थे। वह

असल में एक साहसी स्त्री थी। उसके व्यक्तित्व में सहानुभूति थी और कोई चीज़ ऐसी थी जो मातृ-भावना से पूरित थी। उसका चरित्र ढीला-ढाला और मलिन नहीं था। हम उसपर प्यार करते थे और उसका आदर भी। इसका कारण किसी अंश में यह था कि वह बहुत शिक्षित थी और पेचीदा समस्याओं के सुलझाने में सदा हमारी सहायता करती थी। विद्यालय में जो महिला निरीक्षक अयोग्य थीं उनका हम कम आदर करते थे।

दूसरी स्त्री, जो हमारी निरीक्षक थी, बड़े ही रूखे स्वभाव की थी। वह बूढ़ी थी। ऐसा मालूम पड़ता था कि केवल उसका शरीर ही सूखा नहीं था, बल्कि उसकी आत्मा भी सूखकर बिल्कुल मुर्दा बन गई थी। हमें उससे कोई सहायता नहीं मिली। हमने भी, विद्वत्ता का घमण्ड रखने वाली उस बूढ़ी औरत से, साधारण ऊपरी व्यवहार के सिवा और किसी बात की आशा नहीं रखी। उसने हमारी पढ़ाई में कोई मदद नहीं दी, बल्कि पढ़ाई से ख़ाली घंटों में हमें फ्रेंच इबारत में लगा कर हमारा हर्ज और किया।

परिणाम

विद्यालय में ६ वर्ष रहकर मुझे क्या मिला? इस प्रश्न का उत्तर बहुत आसान है। बोर्डिङ्गस्कूल की एक कुटिया में रहने और दूसरे विद्यार्थियों के साथ एक साधारण विद्यार्थी का जीवन व्यतीत करने से, मेरे अन्दर बहुत ही अच्छे ढँग से रहने के तौर-तरीक़े और बन्धुत्व का भाव पैदा हुआ। इसके सिवा अध्ययन के नियमित क्रम और बहुत ही

सख़्ती से समय पर पूरा किये जाने वाले दैनिक कामों ने मुझे एक निश्चित ढँग के अनुशासन का आदी बना दिया। स्कूल में भर्ती होने से पहले मैंने अपनी इच्छा से अध्ययन किया था, परन्तु यहाँ दिमाग़ी काम करने की आदत कुछ और भी बढ़ गई। परन्तु जहाँ तक वैज्ञानिक योग्यता और दिमाग़ी तालीम का सम्बन्ध है, वहाँ तक इन वर्षों में, स्कूल में रहने से मुझे कुछ नहीं मिला, बल्कि यहाँ मेरी आत्मिक उन्नति में धक्का और लगा। यहाँ मैं उस हानि की चर्चा नहीं करती जो कि, जनता से अलग रहने के कारण हुई। लोगों से अलग रहकर, एकान्त में पड़े रहकर जीवन व्यतीत करना अस्वाभाविक है।

विद्यालय में अध्यापक सन्तोषजनक नहीं थे। अध्यापकों में सबसे अच्छे एक वह प्रोफ़ेसर थे जो रूसी भाषा और विदेशी साहित्य पर लेक्चर दिया करते थे। उनकी साहित्य में बड़ी अच्छी गति थी। रूसी साहित्य में हमने बैलिन्स्की* का नाम कभी नहीं सुना। इसके बाद के समालोचकों की चर्चा मैं नहीं करती। हमने समकालीन गल्प और काव्य-साहित्य भी नहीं पढ़ा। हम "मू-मू" (Mu-Mu) की एक कहानी के द्वारा, जो कि हमें एक बार व्याख्या करने को दी गई थी, केवल तुर्गनेव (Turgenev) से परिचित थे।

नेमेन्स्की (Znamensky) नामक एक अध्यापक ने, इतिहास में हमें वर्ष भर तक केवल ग्रीक और रोमन लोगों के पौराणिक उपा-

---

* १८१०—१८४८—एक प्रसिद्ध समालोचक और प्रजा-सत्तावादी युवकदल का नेता।

ख्यानों और फ़ारस और बेबीलैान के इतिहास ही में अटकाये रखा। मध्य-युग और आधुनिक इतिहास में हमने इलोवेस्की (Ilovaisky) की किताबें पढ़ीं। ऊँचे दर्जों में, नीज़ (Knize) नाम के भूगोल के अध्यापक बहुत अच्छे थे। अन्य अध्यापक ऐसे भी न थे जिनके नाम का उल्लेख करना उचित हो। लिवेण्डोव्स्की जानवरों और बनस्पति के विषय पर लेक्चर देते थे, लेकिन उन्होंने कभी न तो हड्डियों का ढाँचा, या मुर्दा भरा हुआ जानवर* दिखाया और न, कोई पौदा ही। हमने कभी ख़ुर्दबीन में नहीं देखा। हमें रक्त, मांस अथवा शरीर के अन्य अवयवों के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं था। दो अध्यापक, जो शरीर-शास्त्र और धातु-विद्या पढ़ाते थे, हमें कुछ बतला भी सकते थे, परन्तु उनके दर्जों में, वर्ष भर तक, पढ़ाई सप्ताह में केवल एक बार होती थी और उन कक्षाओं के पाठ्य-क्रम बहुत ही संक्षिप्त थे।

चार वर्ष तक अध्यापकों ने लेखन-कला में अटकाये रख कर हमें बड़ा कष्ट दिया। सात वर्ष तक हम ड्राइङ्ग सीखते रहे। इस अवधि के भीतर हममें से किसीने भी इस विषय में अपनी प्रतिभा का परिचय नहीं दिया। ड्राइङ्ग-मास्टर का हमने आदर नहीं किया इसलिए कि, वह जानता ही न था कि हममें काम करने का उत्साह कैसे पैदा किया जा सकता है। उसके पास पढ़ते समय कभी किसीने कुछ काम नहीं

---

* जानवर की खाल के अन्दर का गोश्त वग़ैरह सब निकाल कर घास-फूँस अथवा और चीज़ों से भर देते हैं, फिर खाल सींकर जानवर को वैसा का वैसा ही खड़ा कर देते हैं।

किया। इस पर भी हर एक विद्यार्थी ने पूरे नम्बर पाये। सङ्गीत सीखना अनिवार्य्य नहीं था। इस विषय को सीखने के लिए अलग से फ़ीस देनी पड़ती थी। हमारा सङ्गीत सीखना हमारे माँ-बाप की इच्छा पर निर्भर था।

शाम को जब दर्जों की पढ़ाई ख़त्म होजाती थी तब हम दूसरे दिन के लिए सबक़ तैयार करते थे। कुछ लोगों का बहुत सा समय लिखने में, और कुछ का विविध विषयों पर लिये हुए नोटों की नक़ल करने में लग जाता था। इलोवेस्की के इतिहास के सिवा और कोई पाठ्य-पुस्तकें नहीं थीं। उस समय हमने जो कुछ सीखा, वह अध्यापक के मुँह से निकले हुए शब्दों ही से सीखा। परन्तु कैसे? सबसे होशियार दो या तीन विद्यार्थी बहुत जल्दी संक्षिप्त नोट्स लिख लेते थे उन बातों के, जिनका अध्यापक हमारे सामने वर्णन करते थे। फिर उन नोटों का मिलान करने और छूटी हुई बातों के भरने में किसी अधूरे शब्द के वास्तविक अर्थ निकालते समय हम परेशान हो जाते थे और स्मरण-शक्ति तथा कल्पना के सहारे उन नोटों को पूरा करते थे। इसके बाद छोटी लड़कियाँ अपनी कापियों में उन नोटों की नक़ल कर लेती थीं। ऐसा करने में हमारे दिमाग़ पर बहुत बोझ पड़ता था। इसके सिवा पादरी ने हमें नोट लिखने की बड़ी भारी कापियाँ दे रखी थीं। उनमें ईसाइयों की प्रार्थना-पद्धति और उनके कर्तव्य ("Liturgy and Christian Duties") पर लेक्चर थे। उन नोटों की भी हमें नक़ल करनी पड़ती थी। हमने इतिहास, रूसी भाषा, विदेशी साहित्य, बनस्पति-शास्त्र, प्राणी-शास्त्र, शरीर-विद्या, धातु-विद्या, भाषण-शैली आदि सब विषय लिखे हुए नोटों से पढ़े।

विद्यालय का एक बग़ीचा था। उसके चारों ओर नीबू के पेड़ लगे हुए थे और बाहरी ओर एक गहरा खड्ड था। उसकी ओर झाँकने में हम डरते थे। गर्मी के दिनों में अक्सर हम उस बग़ीचे में घूमने जाया करते थे। जाड़ों में हम केवल दो-तीन बार ही विद्यालय के फाटक के बाहर ले जाये जाते थे। जाड़ों के लिए हमारे पास गरम कपड़े नहीं थे। हलके मामूली कपड़े पहन कर ही हम दिन काटते थे। हम व्यायाम तो बिल्कुल ही न करते थे। सप्ताह में केवल एक घंटे नाच लेते थे, यही हमारी कसरत थी। इसीलिए उन दिनों हम कमज़ोर और बीमार होगये थे।

यदि विद्यालय में छोटी लड़कियों के शारीरिक विकास की ओर थोड़ा-बहुत ध्यान भी दिया जाता था, तो वहाँ जीवन-संग्राम की तैयारी के लिए जो नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए, मैं उसके सम्बन्ध में क्या कहूँ? इस प्रकार की वहाँ कोई शिक्षा नहीं दी जाती थी। उस वायुमण्डल में किसी को यह भी ख़याल न था कि हमें यह बतावें कि अपने प्रति, अथवा अपने परिवार, समाज और देश के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है।

विद्यालय में पढ़ने का उत्साह नहीं दिलाया गया और उन सब वर्षों में, जब तक कि मैं वहाँ रही, किसीने इसकी आवश्यकता पर एक शब्द तक नहीं कहा। मुझे छोड़कर, मेरी सब साथिनों में, केवल ३-४ लड़कियाँ नोटबुक के सिवा कभी कभी कोई किताब उठा लेती थीं। शाम को जबकि मेरा नियत काम हो चुकता था, तब मैं चुपचाप अपने निरीक्षक की आँख बचा कर डेस्क में से पुस्तक निकाल लेती। इस पर भी मुझे सन्तोष नहीं होता था और मैं रात को पढ़ती थी। इस प्रकार छिप कर

रात को पढ़ने वाली केवल मैं ही अकेली लड़की थी। जिस कमरे में हम सोते थे वहाँ बहुत कम उजाला रहता था। कमरे के एक कोने में, जहाँ कि पुराने दर्जों की लड़कियाँ सोती थीं, एक छोटी सी मेज रक्खी थी। उस पर ईसा की मूर्त्ति थी। मूर्त्ति के सामने ही एक छोटा सा दीपक जलता था। वह मानो हमारे उत्साह की गवाही देता था। दीपक के लिए हम अपने पैसों से तेल मोल लेते थे। जब तेल चुक जाता था तब मैं दीपक को अण्डी के तेल से भर देती थी। रात के वक्त एक बुढ़िया तैनात रहती थो। वह ठिंगने क़द की और दुबली-पतली थी। काली पोशाक पहनती थी। वह रात को हर वक्त कमरे में अपने बिस्तर पर प्रार्थना किया करती थी। इस प्रकार वह अपनी युवावस्था के पापों का प्रायश्चित करती थी या स्वभावतः ही धार्मिक थी, यह मैं नहीं जानती। बुढ़िया की प्रार्थना को देखकर मैं कोने की मेज पर चली जाती थी और वहाँ घुटनों के बल खड़ी होकर पढ़ने में तल्लीन होजाती थी। बीच बीच में बुढ़िया अपनी प्रार्थना को बन्द करके सोने के सब कमरों का चक्कर लगाती थी। उसके चलने की आवाज़ बिल्ली के से क़दमों की होती थी। उस आवाज़ को सुन कर मैं घुटनों के बल खड़ी होजाती और अपने माथे को बार बार ज़मीन से तब तक लगातो रहती थी, जब तक कि, बुढ़िया मेरी पीठ के पास खड़ी रहती थी, परन्तु जब यह देखती कि मेरी प्रार्थना का कभी अन्त ही नहीं होता, तब वह वहाँ से चली जाती थी। बुढ़िया के चले जाने पर मैं अपनी किताब मेज के नीचे से फिर उठा लेती थी। मैं अधिकतर अँगरेज़ी के उपन्यास पढ़ती थी।

विद्यालय में एक पुस्तकालय था, परन्तु हमें उसकी पुस्तकें देखने को

कभी नहीं मिलीं। पुस्तकें ताले में बन्द रहती थीं। तांली एक इन्स्पेक्टर के पास रहती थी। वह इन्स्पेक्टर यूनिवर्सिटी का डीन था। वह विद्यालय में कभी कभी बुलाया जाता था। एक बार विद्यालय के प्रबन्धक ने बेलिन्स्की (Belinsky) की लिखी हुई एक पुस्तक दी। परन्तु मैं गम्भीर विषय की पुस्तकें पढ़ने की बिल्कुल आदी नहीं थी। इस पुस्तक में थियेटर के सम्बन्ध में तथा हेमलट (Hamlet) के रूप में मोकालौव (Mochalov) के रङ्गमञ्च पर खेल दिखाने के लेख थे। जिस समय मैं ग्रेजुएट हुई उस समय तक मैं कभी थियेटर देखने न गई थी। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि लेखों में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं मालूम पड़ी। मैं केवल उपन्यास और कहानियाँ पढ़ती थी, और मेरे विद्यालय के जीवन के ६ वर्षों में, बेलिन्स्की की इस एक पुस्तक के सिवा गम्भोर विषय की एक भी पुस्तक मेरे हाथों में नहीं आई।

साहित्यिक प्रभाव

छुट्टियों में माँ की देख-रेख में मैं पढ़ा करती थी, इससे मेरी बुद्धि का और भी विकास होगया। घर पर मैं दिन भर पढ़ती थी, पर केवल उसी तरह की कहानियाँ और उपन्यास देखा करती थी जैसेकि विद्यालय में देखने को मिलते थे। घर पर पढ़ी हुई कहानियाँ भी उन सबसे अच्छी होती थीं जो तत्कालीन पत्रिकाओं में निकलती थीं।

मैं १२ वर्ष की थी, तब मुझे माँ ने एक छोटा-सा उपन्यास पढ़ने को दिया। उपन्यास का नाम था "इच्छा की बीमारियाँ" (Diseases of the Will)। इसका लेखक बहुत प्रसिद्ध न था। मैंने यह सारा

पढ़ डाला। इससे मैं उलझन में पड़ गई। इस उलझन में कि, ग्रन्थकार ने कहानी का ऐसा अद्भुत नाम क्यों रखा ? मैं सोचने लगी कि पुस्तक के चरित्र-नायक को सत्य से प्रेम और असत्य से घृणा थी, यही गुण उसकी विपत्ति और दुर्भाग्य का कारण बन गये, और इसीसे, अपने सगे-सम्बन्धियों और मा-बाप तक से बिगाड़ होगया। उसने वही किया जो कि उसे करना चाहिए था। इस दशा में "इच्छा की बीमारी" कहाँ है ? अपनी उलझन को लिये हुए मैं माँ के पास पहुँची। माँ ने कहा कि यह ठीक है कि एक आदमी को हमेशा सच बोलना चाहिए और दूसरे से भी यही आशा करनी चाहिए, पर ऐसे मामलों में, जो बहुत महत्त्व-पूर्ण न हों, किसी व्यक्ति को असली बात से इस प्रकार न भटक जाना चाहिए जैसाकि कहानी में युवक ने किया है। यदि लोग थोड़ा-बहुत मामूली झूठ बोलते हैं तो उनसे अपना सम्बन्ध न तोड़ दो, नहीं तो, तुम अकेली पड़ी रह जाओगी और तुमसे किसीका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहेगा, इस दशा में तुम ऐसी ही दुखी रहोगी जैसाकि टालस्टाय का अभागा नायक था। माँ के कथनानुसार नायक की अत्यधिक सत्य-प्रियता ने एक बीमारी का रूप धारण कर लिया। इस व्याख्या से मेरी दृष्टि में माँ का आदर कम हो गया। मैं असन्तुष्ट और दुखी होकर वहाँ से चली गई।

एक वर्ष बाद, मेरे चाचा एक पत्रिका की दो भारी जिल्दें विद्यालय में मेरे पास ले गये। उसमें बड़ी अद्भुत कहानियां थीं। उनमें एक उप-न्यास था—एक व्यक्ति रण-भूमि में योद्धा नहीं है (One Man in the Field Is No Warrior)। इस उपन्यास ने मेरे ऊपर अमिट

प्रभाव डाला। मैंने चरित्र की ख़ूबी और कहानी की सामाजिक दिशा, सिलविया और लियो की सुन्दर कामनाएँ और उस पूँजीवादी वायु-मण्डल का भद्दापन, जिससे लियो ने ग़लती से सहायता और सहानुभूति चाही, अच्छी तरह से हृदयङ्गम कर लिया। मेरे मानसिक क्षितिज को इतना विस्तृत और किसी उपन्यास ने नहीं बनाया जितना कि इस उप-न्यास ने। इस उपन्यास ने तो मेरे हृदय-पट पर दो विरोधी चित्र खींच दिये। एक चित्र में उच्च आदर्श, सङ्घर्षण, और कष्ट-सहन की भावना अङ्कित थी, और दूसरे में सन्तोष, खोखलापन और जीवन की बाहरी सुनहली चमक की प्रतिछाया। १३ वर्ष की उम्र में जो जानकारी मुझे हुई, वह इतनी ठीक थी कि जब बहुत वर्षों के बाद मैंने यह पुस्तक फिर पढ़ी तब मुझे उन बातों में विचार परिवर्त्तन करने की तनिक भी ज़रूरत नहीं पड़ी।

मानव-चरित्र उन चीज़ों के प्रभाव से बनता है जो विभिन्न समुदाय के लोगों, अनेक पुस्तकों और आस-पास के जीवन से सहायता के रूप में मिलती हैं। कभी-कभी कोई बात हृदय पर इतना गहरा असर डालती है जिससे चरित्र-निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है। नेकरासोव (Nekrasov) की 'साशा' (Sasha) नामकी कविता ने मेरे चरित्र पर बहुत प्रभाव डाला।

उस कविता का मतलब बहुत स्पष्ट है। अगारिन नामका एक शिक्षित और चालाक युवक एक गाँव में गया। वहां वह एक ऐसी युवती से मिला जिसकी बुद्धि और प्रतिभा का अभी विकास नहीं हुआ था। युवक ने अपरिपक्व युवती के हृदय में एक नई जागृति पैदा कर दी।

अपनी ओजस्वी बातों से उसे सामाजिक प्रश्नों और जनता की भलाई के कामों का बोध कराया। इन आदेशों के प्रभाव से साशा (Sasha) के हृदय में आदर्शवादी भावनायें उठने लगीं। परन्तु एक-दो वर्ष के बाद जब साशा उस युवक से फिर मिली तब उसे धोखा हुआ। साशा का अब बौद्धिक और नैतिक विकास होचुका था। अब अगारिन उसके सामने एक खोखला और बकवादी आदमी के रूप में प्रकट हुआ—ऐसा बकवादी, जो दुनियां में इधर उधर घूमकर 'बड़े भारी ख़तरे की बातों' को ढूँढ़ता फिरता है, और चारों ओर कोरा बातूनी जमाख़र्च करता है, किन्तु जीवन के लिए कोई व्यावहारिक काम करके नहीं देता। साशा यह देखकर कि युवक की बातों और उसके कामों में ज़मीन आसमान का अन्तर है, धोखा खाती है, और सदा के लिए उसे अपने मन से ही निकाल देती है!

३
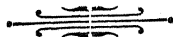
मेरा पड़ोस

न् १८६६ में मेरी विद्यालय की पढ़ाई समाप्त हो-गई। मैं एक चपल, हँसमुख और खिलाड़ी लड़की के रूप में विद्यालय के बाहर आई। मैं देखने में कमज़ोर थी, किन्तु मन और शरीर दोनों ही से स्वस्थ थी। ६ वर्षों के एकान्त-वास से मैं दुखी नहीं थी। मुझे वास्तविक जीवन का, तथा अपने समाज का ज्ञान था। यह ज्ञान मैंने केवल उपन्यास और कहानियां पढ़कर अर्जन किया था। सच्ची बातें बोर्डिङ्गस्कूल की चहारदीवारी के भीतर न आती थीं। घर पर मैं और मेरी बहिन छुट्टियों का समय बिताते थे। वहां हम अपने सम्बन्धियों के सिवा किसी बाहरी आदमी से कभी नहीं मिले। मेरे माँ-बाप बराबर उसी पुराने स्थान में रहते थे। विद्यालय की पढ़ाई समाप्त होने पर मैं अपने उसी पुराने वायुमण्डल में रहने को आगई जहाँ कि मेरी छुट्टियां व्यतीत होती थीं। यह शान्त, सरल और स्वच्छ वातावरण किसी व्यक्ति को गम्भीर विचारों में तल्लीन कर देने के लिए बहुत उप-युक्त था।

गम्भीर विचारों में निमग्न रहने के लिए विद्यालय में ही मुझे एक प्रेरणा मिल चुकी थी। जो महिला मेरी कक्षा का प्रबन्ध करती थी वह बड़ी चतुर और कार्य्यशील थी। एक बार वह अपनी एक छात्रा से, उसका आलस छुड़ाने के लिए, बहुत ज़ोर देकर कह रही थी—"क्या तुम यह सोचती हो कि जब तुम विद्यालय छोड़ दोगी, तब तुम्हारी पढ़ाई समाप्त हो जायगी? नहीं, तुम पढ़ना हर्गिज़ बन्द मत करना। जीवन भर, क़ब्र में जाने के वक्त तक, तुम पढ़ाई बराबर जारी रखो।" यह सचाई असल में सब लोगों के लिए एक साधारण बात थी। परन्तु मैंने यह बात पहले उसी समय सुनी। इसने मेरे दिमाग़ में प्रकाश की एक रेखा खींच दी। उक्त शब्दों को मैं कभी भूल नहीं सकती। इन शब्दों ने मेरे जीवन पर बड़ा नैतिक प्रभाव डाला। इसके लिए उस महिला प्रबन्धक की मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।

सबसे पहले मैं अपनी माँ की कृतज्ञ हूँ इसलिए कि, विद्यालय छोड़ते ही मैंने दिमाग़ी काम करना शुरू कर दिया। उसने मुझे अच्छी से अच्छी पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें पढ़ने को दीं। उसके पुस्तकालय में बहुत-सी अच्छी किताबें थीं। असल में माँ बचपन में किसी स्कूल में पढ़ी-लिखी नहीं थी, परन्तु अपने ही स्वतंत्र उद्योग से उसका हृदय, मन और मस्तिष्क विकास की चरम सीमा तक पहुँच गया था। वह सचमुच बहुत शिक्षित और समझदार थी।

मेरा सामाजिक वायुमण्डल वही पहले वाला था। ज़मीदारों और उनके परिवारों में से हम किसीको नहीं जानते थे। मेरी सी अवस्था और शिक्षा के, वहां कोई लड़के नहीं थे। हमारे सम्बन्धियों के दो परि-

वार वहां रहते थे। उनमें कुल चार आदमी थे। उनमें दो हमारे चचा-चाची थे, तथा दो स्त्री-पुरुष और थे। उन्हींसे अक्सर हम मिला-जुला करते थे। वे सब लोग ज़िले में रहने वाले लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च श्रेणी के थे। असल में वे सांसारिक जीव थे। साम्यवादी नहीं थे। उनके मुँह से साम्यवाद की शिक्षा का मैंने कभी एक शब्द भी नहीं सुना। साम्यवादी सिद्धान्तों के प्रसिद्ध प्रवर्त्तक फूरिये (Fourier), सेंसिमैं (Saint Simon), तथा और लोगों के नामों की उन्होंने कभी चर्चा तक नहीं की। उस लासाल (Lassalle) ऐसे महापुरुष का मैं नाम तक नहीं जान पाई जिसकी ज्वलन्त कृतियों की धाक किसी समय जर्मनी भर में थी। जब मैं पहले पहल अपने देश से बाहर गई तब मज़दूरों की एक बहस देखने गई। बहस थी इसी नेता लासाल के सम्बन्ध में। मैं चक्कर में पड़ गई। लासाल और लाप्लास नामके लेखकों के नामों का अन्तर ही न समझ सकी। अपने अज्ञान पर मुझे बड़ी शर्म आई। मेरे सम्बन्धी प्रजातंत्रवादी नहीं थे। वे स्विट्ज़रलेंड और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राजनैतिक सङ्गठन की प्रशंसा करते थे।

मेरे वे सम्बन्धी, जिनकी ऊपर चर्चा कीगई है, पीसारैव (Pisarev)* के अनुयायी थे। उन्होंने प्राकृतिक विज्ञान को बड़ा महत्त्व दिया। उन्हींकी सलाह से मैंने डार्विन, लायल (Lyell), लूइज़ (Lewes) और वौग्ट (Vogt) की किताबें पढ़ डालीं

* १८४१—१८६८—साहित्य-समालोचक और भौतिकवाद की उस प्रगति का प्रचारक जिसका नाम आगे चलकर निहिलिज़्म पड़ गया।
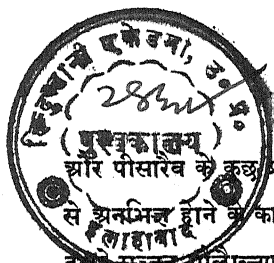
और पीसारेव के कुछ प्रसिद्ध लेख भी देखे। परन्तु इस प्रकार के विषयों से अनभिज्ञ होने के कारण अधिक न समझ सकी। मेरे चाचा और एक दू[illegible] [illegible]लोव्न्या प्रजा-सत्तावादी थे और धार्मिक, सामाजिक तथा जाति-गत विद्वेषी भावनाओं से बिल्कुल मुक्त थे। वे विश्व-व्यापी सार्व-जनिक शिक्षा, स्वावलम्बी श्रम और स्त्रियों के समान अधिकार के पक्षपाती थे। वे सादगी से जीवन बिताना पसन्द करते थे। मेरे चाचा, जो परि-वार के लोगों में सबसे अधिक शिक्षित और समझदार थे, मेरी पहनी हुई सुनहली अँगूठी और तरह-तरह की फ़ैशन के कपड़ों को देखकर हँसते थे। वे कहते—"प्यारी वीरा! बताओ तो सही कि बालियों के रूप में तुम्हारे कानों में कितने पौंड अनाज लटक रहा है!" पास ही में कहीं से इसका उत्तर मिलता—"अठारह सौ पौंड (साढ़े बाईस मन)!" फिर चाचा पूछते—"तुम्हारे इन सुन्दर ऊनी कपड़ों से कितने बुशलई तैयार हो सकती है?" इसी तरह के वे बहुत से प्रश्न करते थे। यह ख़याल करके कि विद्यालय में मेरे मन में सामाजिक सुख और धन की कामना पैदा कर दी गई है, मेरे सम्बन्धी अक्सर कहा करते कि मुझे किसी बूढ़े मालदार आदमी के साथ शादी करनी चाहिए। मेरा ख़याल है कि वे पहले मेरे सम्बन्ध में बहुत अच्छी राय नहीं रखते थे। यही कारण था कि मुझे अपने बारे में झूठी चापलूसी की बातें सुनने को मिलीं। इस प्रकार की बातें मुझे बहुत कड़वी लगीं और मुझे चोट भी लगी। एक रात को मेरी नींद उचट गई। गर्मी के दिन थे। घर का हर एक आदमी उस वक़्त सो रहा था। परन्तु घर की दो स्त्रियां छज्जे पर बैठी बातें कर रही थीं। उनमें एक हमारी मौसी वेरैनका

(Varenka) थी और दूसरी चचेरी बहिन, जो कैज़ाँ से हमारे पास आई थी। वे मेरी बहिन लिडीआ और मेरे सम्बन्ध में बातें कर रही थीं। मौसी ने कहा—"लिडीआ बहुत सुन्दरी होगी और कुछ कर दिखायेगी। परन्तु वीरा एक सुन्दर गुड़िया है। वह उस सुन्दर सुर्ख़ लालटेन की तरह है जो एक कमरे के कोने में लटकी हुई शोभा देती है। केवल देखने में सुन्दर है, पर है असल में गुणहीन।

यह बातें सुनकर मैं अपना सर तकिया पर लगाकर ख़ूब रोई। मैंने उस समय सोचा कि गुणवती कैसे बनूँ!

मेरे चाचा चर्नीशेव्स्की, डौब्रोलीयूबौव* और पीसारैव ऐसे विद्वानों के प्रशंसक थे। उन्होंने मुझे पीसारैव की बहुत कम पुस्तकें पढ़ने को दीं। मैं चर्नीशैव्स्की को अच्छी तरह समझ भी नहीं सकी। अपने घर में हम सार्वजनिक प्रश्नों पर ख़ूब बातचीत करते थे। बातचीत में इस बात पर बड़ा महत्त्व दिया जाता था कि जीवन, अपने और परिवार ही के झंझटों में न लगकर, समाज की सेवा में लगना चाहिए। विद्यालय छोड़ते समय मेरे दिमाग़ में किसी भी तरह के सामाजिक और राजनैतिक विचार नहीं थे। मेरा मानसिक क्षेत्र बिल्कुल अछूता और विशुद्ध था। उसमें विज्ञान और ज्ञान के लिए आदर तथा उसे प्राप्त करने की भावनाएँ पल्लवित हो सकती थीं। उसी भूमि में राज्य प्राप्त करने और सामाजिक काम करने की कामना भी पैदा हो सकती थी। यही

---

* १८३६–१८६१—साहित्य-समालोचक और साहित्य-क्षेत्र में चर्नीशैव्स्की का सहयोगी।

भावनाएँ मेरी मानसिक भूमि में उन बीजों से उपज उठीं जो इच्छा से, और कुछ अनिच्छा से, मेरे आस-पास रहने वाले सम्बन्धियों ने बोये थे।

मेरी प्रवृत्ति

जबसे मैं विद्यालय से ग्रेजुएट होकर निकली, तबसे यहां कई महीने बीत गये। बिना किसी उद्देश के, एकान्त ग्राम-जीवन से मैं असन्तुष्ट रहने लगी। मैं सोचने लगी कि मुझे अब क्या करना चाहिए? किसी नाट्य-शाला के रङ्ग-मञ्च पर जाऊँ, अथवा स्कूल-मास्टरों में शामिल होजाऊँ? पहला काम मेरे मन में कुछ व्यर्थ और अनिश्चित-सा जँचता था और दूसरे के लिए मैं बिलकुल अनुपयुक्त थी। इसका अनुभव मुझे तब हुआ जबकि मैं अपनी बहिन ईव्जीनिया को स्कूल के लिए पढ़ा रही थी।

विश्वविद्यालय की पढ़ाई की इच्छा करना उन दिनों स्त्रियों के लिए बिलकुल एक नई बात थी। सुसलोवा (Suslova) ने ज़ूरिच (Zurich) में डाक्टरी का डिप्लोमा प्राप्त कर लिया था। वह चीड़-फाड़ का काम भी अच्छी तरह सीख गई थी। इस बात की ख़बर एक अख़बार में निकली। इससे मुझे आगे बढ़ने के लिए एक रास्ता मिल गया। मुझे डाक्टरी पढ़ने की इच्छा हुई। लोगों की भलाई के ख़्याल से गाँव में डाक्टर बनकर रहने के लिए नहीं, और न "प्रायश्चित करते हुए एक अमीर आदमी" की भावना से ही, मुझे डाक्टर बन जाने की धुन सवार हुई थी। इस प्रकार के विचार तो बाद में साहित्य के प्रभाव से बने थे। इस समय इस विचार के उत्पन्न करने वाली मेरी प्रवृत्ति थी।

उन जीवनोपयोगी शक्तियों ने, जिनका मुझे पता न था, पर जो मेरे

रोम-रोम में समा रही थीं, मुझे उत्तेजित किया और आज़ादी की मस्त बना-देने वाली सनसनी हृदय के बाहर आगई। जब मैंने जीवन के क्षेत्र में पदार्पण किया तब यह अत्यधिक हर्ष ही था, जो मेरी मानव-सेवा की भावनाओं का वास्तविक साधन बना। मेरे मन में उत्साह की तरङ्गें उठ रही थीं और कुछ काम करने की इच्छा होती थी। इस दशा में, ऐसा जीवन जो मेरे व्यक्तित्व की सार्वजनिक झलक स्पष्ट रूप से न दिखावे, ध्यान ही में न आता था। शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से, मैं अपने आपको, अपने मित्रों की अपेक्षा अधिक सुखी और प्रसन्न समझती थी। इस बात ने, तथा इस ख़याल ने भी कि मेरे पास रहने वाले लोग, औरों की अपेक्षा मुझ पर अधिक स्नेह करते हैं, मेरे मन में कृतज्ञता की एक अपरिमित भावना उत्पन्न कर दी। कृतज्ञता की भावना किसके लिए थी? अपने मित्रों के लिए, जो मुझ पर स्नेह करते थे और जो मुझ से डाह न रखते थे। मेरे हृदय में कृतज्ञता का भाव था अपने अध्यापकों, माता-पिता तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए। सूरज और तारों के लिए भी मेरे मन में कृतज्ञता थी। यह सब इसीलिए कि, अध्यापकों ने मुझे प्रथम श्रेणी प्राप्त करने में यथाशक्ति सहायता दी थी, माँ-बाप ने मेरे कठिन तथा साहसी बचपन में, बड़ी सावधानी से मेरी देख-रेख की थी और मुझे उन्होंने वह हर एक चीज़ दे रखी थी, जो स्कूल से बाहर किसी लड़की को आनन्दित कर सकती है। सूरज खेत के चारों ओर अपना सुनहला प्रकाश फैला देता था और तारे रात को बाग़ के ऊपर चादर-सी ताने हुए सुन्दर दिखाई देते थे। संसार के आशीर्वादों के रूप में, वास्तविक जीवन के आशीर्वादों के लिए मैं किसी को धन्य-

बाद देना चाहती थी। मैं कोई अच्छा काम करना चाहती थी—ऐसा अच्छा, जो मेरा और दूसरों का भला करे।

एक गल्प-लेखक की कहानी में आता है कि मैडौना (Madonna) नामकी एक महिला ने मन्दिर की छत पर खड़े होकर दुनियां के लिए अपने हाथ बाहर फैला दिये थे। और उन हाथों से निकले हुए सुनहली धागों से, उन लोगों को, जो प्रेम और सहानुभूति के इच्छुक थे, आश्रय और प्रकाश मिला था। यह चित्र उस अवस्था का हो सकता है, जिसे प्रत्येक स्वस्थ युवक शुभ घड़ियों में अपने जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते समय स्वभावतः अनुभव करता है।

मेरे चारों ओर गाँव का वायुमण्डल था। वहां ग़रीबी, गन्दगी, रोग, और मूर्खता का राज्य था। परन्तु सुसलोवा (Suslova) के सेवा-मार्ग ने परोपकार के जो सुनहले तार मेरे हृदय में अङ्कित किये थे, वे गाँव के निवासियों तक पहुँचने लगे। सेवा और परोपकार की उन्हीं भावनाओं में मानव-समाज और हमारी मातृ-भूमि की सेवा की भावना भी शामिल होने लगी।

सबसे पहले अपने चाचा से मैंने उपयोगितावाद का सिद्धान्त सुना। इस विषय पर उन्होंने मुझे एक लेख दिया। उन्होंने कहा—"अधिक से अधिक आदमियों की अधिक से अधिक भलाई करना" प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश होना चाहिए। इस बात का मेरे ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा। जिस बात से मैं पूर्णतया सहमत थी, चाचा ने उसीको शब्दों में कह डाला। यह तो मेरे ख़याल से बाहर था कि जिस बात को मैं सच मान लूँ उसके अनुसार काम न करूँ।

इन सब बातों का यह परिणाम अनिवार्य्य था कि मैं अपने परिवार के साथ गाँव के जिस शान्त वातावरण में जीवन बिता रही थी, उससे अलग होजाऊँ। उस समय, मैं एक ऊँचे और दूरस्थ लक्ष्य के बिना, निकम्मा जीवन बिताने के विचार तक को सहन नहीं कर सकी। सुसलोवा (Suslova) ने मेरा कुछ भविष्य तो निश्चित कर ही दिया था। मैंने किसी विश्व-विद्यालय में भरती होने के लिए अपना काम शुरू कर दिया। मेरा विचार था कि या तो मैं किसी विदेशी विश्व-विद्यालय में भरती होजाऊँ, या कैज़ाँ में। कहीं भी पढ़ती, मुझे असल में पढ़ना था। मैं डाक्टर होना चाहती थी और अपने ज्ञान को देहात में फैली हुई बीमारी, ग़रीबी और अज्ञान के दूर करने में लगा देने की मेरी इच्छा प्रबल थी। परन्तु पिताजी ने मुझे विदेश जाने की आज्ञा इसलिए नहीं दी कि उन दिनों लड़कियों का बाहर जाना सामयिक कल्पना के बाहर था।

एक बार बड़ी ख़ुशामद से मैंने पिताजी से पूछा—"शायद आप यह ख़याल करते हैं कि मैं अपने उद्देश को पूरा न कर सकूँगी, और मुझमें उसे पूरा करने की सामर्थ्य नहीं है?"

उन्होंने उत्तर दिया—"नहीं, मैं जानता हूँ कि यदि तुम एक काम की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लो, तो उसे पूरा कर डालोगी।"

मैं नहीं जानती कि इस प्रकार का विश्वास उनमें कैसे पैदा हो गया, परन्तु इसने मेरे आत्म-निर्भरता के भाव को ज़रूर मज़बूत कर दिया।

इससे भी अधिक महत्त्व की घटना वह थी, जो मेरे ग्रेजुएट होने के बाद पहले वर्ष हुई थी। मेरे सामने सुलझाने के लिए एक गम्भीर और

जटिल समस्या थी। पिताजी बीमार थे। शाम का वक्त था। वह एक आरामकुर्सी पर बैठे हुए थे। मैं उनके पास ही बैठी हुई थी। मैंने अपनी बात कही और उनकी सम्मति पूछी।

पिताजी ने अपना मुँह फेर लिया और झुँझलाकर कहा—"मैं नहीं जानता।"

मैं उठ खड़ी हुई।

मैं सोचने लगी—"मैं क्यों बोली? मैंने क्यों उनसे कहा?" मैं बड़ी लज्जित हुई इसलिए कि, मैंने पिताजी के सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया। तुरन्त ही मेरे मन में यह विचार उठा—"किसी व्यक्ति को अपना मार्ग स्वयं ही निश्चित करना चाहिए।" उसी क्षण यह विचार मेरे हृदय में सदा के लिए दृढ़ हो गया।

नाच में

मैं किसी विश्व-विद्यालय में जाने का विचार कर रही थी, परन्तु माँ-बाप मुझे कैज़ां लेगये इसलिए कि, सामाजिक आनन्दों का मुझे प्रलोभन दिलायें, और मेरी दृढ़ता की परीक्षा करें। वे उन्नतिशील व्यक्ति थे। परन्तु समाज में यह चाल थी कि परिवार में यदि कोई जवान लड़की हो तो वह लोगों के सामने लाई जाय। लोग उसे देखें और वह उन्हें अपनी चमक-दमक और हाव-भाव दिखावे।

ज़िले में पिताजी से बहुत लोगों से जान-पहचान थी। फिलीपौव नामका एक बूढ़ा ज़मीदार था। पिताजी की तरह वह भी स्थानीय मजिस्ट्रेट था। वह उनका मित्र था। वह बारहों महीने एकान्त में रहा

करता था। उसकी स्त्री अपने बच्चों को पढ़ाने-लिखाने के अभिप्राय से कैज़ां में रहती थी। कैज़ां में फ़िलीपौव ने हमें अपने घर ठहराने को निमंत्रित किया। इसके फलस्वरूप जब दिसम्बर में हम रवाना हुए, तब उसके परिवार के मेहमान बनने का अवसर हमें मिला। तभी कैज़ां में फ़िलीपौव के सबसे बड़े लड़के एलेक्सी विक्टौरौविच (Aleksey Victcrovich) से मेरा परिचय हुआ। वह क़ानून का पण्डित था। उस समय वह मजिस्ट्रेट के पद पर काम कर रहा था। वह हमसे नित्य मिलता था। थियेटर, कुलीन पुरुषों की सभा और कमर्शल क्लब के नाच में वह बराबर मेरे साथ रहता था। उस समय तक, मैं पहले कभी थियेटर में नहीं गई थी। मैं कह नहीं सकती कि पहले पहल नाच में ख़ुशी से शामिल हुई। वहां जाकर मैं अपने आपको भूल सी गई। मैं प्रकाश से जगमगाती हुई नाट्य-शाला में खड़ी हुई थी। वहां मर्द-औरतों के जोड़े बाजे की तानों के अनुसार नाच रहे थे। चारों ओर बहुत से सुन्दर स्त्री-पुरुष खड़े थे। मेरे लिए वे सब अजनवी थे। मुझे वहां मालूम हुआ कि मैं बिल्कुल निराली और अकेली सी हूँ। उस समय मैं रो भी सकती थी। इतने ही में एलक्सी तथा दूसरे नवयुवक मेरे चारों ओर घिर आये, और मैं भी उस भीड़ में शामिल होकर डर और मुसीबत सब भूल गई। आगे चलकर तो मैं बहुत साहसी हो गई और सामाजिक मनोरञ्जन की बातों में कुछ-कुछ रुचि भी बढ़ने लगी। कैज़ां में हम बहुत दिनों तक न रहे। जब हम लौटकर गाँव के शांत वातावरण में आ गये तब कैज़ां की सब बातें हवा हो गईं।

इस घटना के थोड़े दिन बाद ही एलेक्सी का कैज़ां से टैटीऊशी को

तबादिला हो गया। वहां वह हमसे मिलते-जुलते रहते थे। उन्होंने मेरे विचारों से सहमत होकर मेरे कार्य्यक्रम से पूरी सहानुभूति दिखाई। हम दोनों साथ-साथ पुस्तकें पढ़ते थे और विश्व-विद्यालय में भरती होने के सम्बन्ध में हम दोनों का एक मत था। हम दोनों को परिचित हुए एक वर्ष भी न बीता था कि १८ अक्टूबर सन् १८७० को निकीफौरौवो (Nikiforovo) के गिरजे में हम दोनों की शादी हो गई।

कुछ सप्ताह के बाद मेरे पिता का देहान्त हो गया। इसके बहुत दिन पहले ही मेरी मां और दो बहिनें कैज़ां चली गई थीं। वहां मेरे भाई पीटर और निकोलाई लड़कों की एक प्राथमिक पाठशाला में पढ़ रहे थे और बहिन लिडीआ विद्यालय में अपनी पढ़ाई का काम समाप्त कर रही थी। हम लोगों ने निकीफौरौवो में अपना घर बना लिया, और ज़िले की राजधानी हमें तनिक भी आकर्षित नहीं कर सकी।

शादी के बाद मेरे जीवन में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। अब मेरा विद्यालय में भरती होना बिल्कुल निश्चित था। अब पढ़ने के लिए ज़ूरिच जाने को केवल रुपये का प्रश्न था।

चर्नूसोवा की मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। उससे मैंने जर्मन भाषा अच्छी तरह सीख ली। मेरे ग्रेजुएट होने के बाद ही माँ ने मुझे शिलर और गर्टः की पुस्तकें कैज़ां से लाकर पढ़ने को दी थीं, और अब यहां विश्व-विद्यालय के लिए तैयारी करते समय मैंने जर्मन भाषा की योग्यता बढ़ा ली। इसके अतिरिक्त एलेक्सी से मैंने रेखागणित और बीजगणित भी सीख लिया। मैंने एलेक्सी से, नौकरी छोड़कर अपने साथ स्विट्ज़रलेंड चलने का अनुरोध किया। मेरा यह विश्वास था कि आदमी अज्ञान और

ग़रीबी के ही कारण जुर्म करने को विवश होता है। मजिस्ट्रेट के काम को मैं बुरा समझती थी और उसने मेरे हृदय पर चोट पहुँचाई थी। मैंने एलेक्सी के आगे यह प्रस्ताव रखा कि वह भी डाक्टर बन जावें, अथवा अपने लिए कोई दूसरा काम ढूँढ़ लें। उनकी वह घृणित जगह छुड़ा देने के लिए मैं कितना भी नुक़सान उठा सकती थी। अन्त में एलेक्सी से उनकी पहली नौकरी छुड़वाकर, डाक्टरी पढ़ने के लिए, अपने साथ उन्हें विदेश ले जाने में मुझे सफलता मिली।

इस समय मित्रों और सम्बन्धियों से हमारा पारस्परिक व्यवहार बहुत अच्छा था। मेरे काम के साथ उन सबकी सहानुभूति थी। सब लोग हृदय से मेरी सफलता चाहते थे। अब मैं यह अच्छी तरह समझती थी कि पहले जिन लोगों ने मेरी उन्नति में किसी भी तरह सहायता दी है उनके साथ क्या बर्ताव होना चाहिए।

चुनाव का समय क़रीब था। डिस्ट्रिक्टबोर्ड के चेयरमेंन के पद के लिए प्रिंस वोकोंस्की भी उम्मेदवार था। वह चतुर, किन्तु बड़ा आलसी जीव था। उसने बड़े रूखेपन से कहा कि मैं केवल वेतन के लिए काम करता हूँ, और मैं सुअरों का घेरने वाला हूँ अथवा स्थानीय मजिस्ट्रेट, मेरे लिए दोनों हालतों में रहना एक ही बात है। ज़िला-बोर्ड के चेयरमेंन के पद के लिए वोकोंस्की की अयोग्यता का ख़याल करके मेरे चाचा नाराज़ थे। मुझे आशा थी कि वह स्वयं उम्मेदवार होंगे। परन्तु वह खड़े नहीं हुए। बड़े दुःख के साथ मुझे कहना पड़ा कि बोर्ड का चेयरमेंन ज़िले की राजधानी में रहने को बाध्य है। यदि चाचा बोर्ड के चेयरमेंन हो जाते तो उनके शांत जीवन और खेती-बारी के कामों में विघ्न पड़ता। उसी समय

मुझे मालूम हुआ कि मेरी स्वर्गीय चाची के पति वैरेन्का (Varenka) स्वयं किसानों पर इसलिए अत्यधिक अत्याचार कर रहे हैं कि उनकी रियासत में अनाज का नुक़सान होगया है। यही व्यक्ति किसी समय विद्यालय से इसलिए निकाला गया था कि बैज़ना (Bezdna)❀ में जो किसान गोली से मारे गये थे, उनकी स्मृति में उसने जुलूस निकाल कर शोक प्रदर्शित किया था। उधर मैं यह चाहती थी कि एक व्यक्ति के कामों का उसकी कही हुई बातों के साथ सामञ्जस्य होना चाहिए।

इस बीच में हमारे विदेश जाने का जल्दी प्रबन्ध न हो पाया। विद्यालय में चार वर्ष तक पढ़ने के लिए हम रुपया इकट्ठा कर रहे थे। इसी बीच में मैंने कैज़ाँ जाकर विद्यालय में भरती होने का निश्चय किया। वहाँ मैं अपनी बहिन लिडीआ के साथ रहना चाहती थी। वह विद्यालय में अपनी पढ़ाई समाप्त कर चुकी थी।

कैज़ाँ में रसायन और शल्य-विद्या के अध्यापकों की देख-रेख में हमने पढ़ाई आरम्भ कर दी। पहले अध्यापक थे तो अच्छे स्वभाव के, परन्तु उन्होंने हमारी पढ़ाई में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई, हमें केवल अपने ही प्रयत्नों पर छोड़ दिया। दूसरे अध्यापक ने हमारे हृदय में अध्ययन करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न कर दी। अपने सब विद्यार्थियों में उन्होंने अपने ही बराबर, विज्ञान के लिए उत्साह और आदर-भाव

❀ सन् १८६१ की विज्ञप्ति प्रकाशित होने के बाद यहाँ ग़दर होगया था।

उत्पन्न कर दिया। उन्होंने एक अध्यापक और व्यक्ति दोनों ही के रूप में, हम में हार्दिक प्रेम उत्पन्न कर दिया था। सभी विद्यार्थी उनपर प्रेम करते थे। सबने उनके योग्य विद्यार्थी बनने का उद्योग किया।

शल्य-विद्या के उक्त अध्यापक का नाम था लेशाफ़्ट (Leshaft)। उनकी देख-रेख में हमारी पढ़ाई पूरी रफ़्तार पर हो रही थी। हम अनुभव करते थे कि हमारे लिए उन आश्चर्य्य-जनक चीज़ों की दुनियाँ बन रही है जिनका हमने कभी स्वप्न में भी ख़याल नहीं किया था। एक दिन सुबह रसायन-शाला में जाने पर हमने देखा कि काम करने की मेज़ें ख़ाली पड़ी हुई हैं। यह जानकर हमारे आश्चर्य्य का ठिकाना न रहा कि लेशाफ़्ट विद्यालय से अलग कर दिये गये। सुना यह गया कि कुछ अध्यापकों ने, लेशाफ़्ट के निर्भीक तथा दृढ़ चरित्र से नाराज़ होकर, सेंट-पीटर्सबर्ग में अधिकारियों से शिकायत की है कि वह यूनिवर्सिटी के युवकों पर हानिकारक प्रभाव डाल रहे हैं। इस बात से हम सबको बड़ा क्रोध और दुःख हुआ। लेशाफ़्ट के जाने से पहले हम लोग उनसे मिलने गये। हमने उन्हें सदा की तरह शान्त और प्रसन्न पाया। हमने उन्हें कष्ट के साथ प्रणाम किया और चले आये। उनके चले जाने के बाद फिर वहाँ ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जो हमें अधिक समय तक कैज़ाँ में रखता। एक बार फिर मैं टैटीऊशी ज़िले के गाँव में चली आई। सन् १८७२ की बसन्त ऋतु में हम तीनों व्यक्ति—मैं, बहिन लिडीआ तथा मेरे पति— नीकीफौरौवो से ज़ूरिच के लिए रवाना होगये।

४

ज़ूरिच में

रिच के विश्वविद्यालय में पहुँच कर मेरा विचार डाक्टरी पढ़ने का था। मैं इस काम में तन-मन से जुट जाना चाहती थी। धीरे-धीरे यहाँ हमारा मेल-जोल बढ़ गया और कुछ हमारे मित्र भी बन गये। मेरी बहिन लिडीआ ख़ासकर रूसी छात्राओं में बहुत घुल-मिल गई, यहाँ तक कि, वह उन्हींके पास रहने लगी। वहाँ बहुत से नये आदमी थे। नई बातें और नई घटनाएँ देखने को मिलीं। विद्यार्थियों के लिए पुराने और अस्त-व्यस्त पुस्तकालय की जगह एक नया और सुव्यवस्थित पुस्तकालय खोल दिया गया था। स्त्रियों के लिए वाद-विवाद करने को एक क्लब था। इससे विचारों के विकास के लिए बड़ा अच्छा मसाला मिल गया था। यहाँ बड़े जटिल प्रश्नों और उच्च विषयों पर वाद-विवाद होता था। उनमें विद्यार्थी बड़ा उत्साह दिखाते थे। क्लब की बैठकों में बड़ा हुल्लड़ मचता था। इसीलिए वहाँ ऐसे सिद्धान्तों के ढूँढ़ निकालने का कम अवसर था जिन पर सब एक मत हों। स्त्रियों का क्लब तो ५-६ हफ़्ते में ख़त्म होगया। एक दूसरा 'फ्रीची

क्लब' (Frichi Club) था। यह पहले से अधिक अच्छा था। वहाँ हमने सामाजिक, और मज़दूरों से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं तथा साम्यवाद के इतिहास का अध्ययन किया। इतना करने पर भी, हमने विश्वविद्यालय की पढ़ाई में तनिक भी बेपरवाही नहीं की। अध्यापक एक स्वर से अपनी रूसी छात्राओं के उद्योग की प्रशंसा करते थे। थोड़े दिन बाद अचानक रूसी सरकार का एक अपमान-जनक हुक्म आया कि हम लोग विश्वविद्यालय छोड़ दें। इस हुक्म के निकालने का बहाना यह किया गया था कि हम लोगों का चरित्र अप्रमाणित है। एक सभा की गई और उसमें सरकार के इस काम का विरोध किया गया। हम लोगों में, जो बहुत दक़ियानूसी थे, वे अलग होगये, और विरोध में उन्होंने हमारा साथ नहीं दिया। इसी समय से ज़ूरिच की सुसाइटी तितर-बितर हो गई।

मेरे पति और मैं, दो विपरीत मार्गों का अनुसरण कर रहे थे। वह दक़ियानूसी विचारों की ओर झुके हुए थे और मैं सदा गरम दल की ओर अधिकाधिक आकर्षित होती गई। मेरा यह विश्वास होगया कि डाक्टरी केवल एक बहाना है। इससे समाज और देश की सेवा नहीं हो सकती। वह सेवा तो केवल सामाजिक और राजनैतिक सुधारों ही से हो सकती है। अपने साथियों के साथ मुझे भी यह विश्वास होगया कि अन्यायपूर्ण नाशक सामाजिक ढाँचा ही सब सामाजिक बुराइयों की जड़ है, और इन बुराइयों को दूर करने का एक ही उपाय है। वह यह कि, प्रजा-पीड़क और अधिकार-प्राप्त जातियों की सत्ता उलट देने के अभिप्राय से लड़ाई-झगड़ा करके इस ढाँचे को बदल दिया जाय। स्विट्ज़रलैण्ड में

ज़ूरिच में

रहते हुए जब मैं २१वीं वर्ष में थी, तब मैं अपनी बहिन लिडीआ के क्रान्तिकारी दल में शामिल होगई। यह साम्यवादी युवक विद्यार्थियों का एक दल था। उसका कार्यक्रम उन साम्यवादी सिद्धान्तों पर आधारित था जो उस समय फ्रांस से फैल चुके थे। हमने अपने काम का एक ऐसा ढाँचा बनाया जिससे हम इन सिद्धान्तों का लोगों में सीधा प्रचार करें, अर्थात् उन्हींके साथ रह कर काम करें और धीरे धीरे उन्हें विद्रोह करने के लिए तैयार कर दें।

इस दल के आदमी धीरे धीरे तितर-बितर होगये। कुछ तो उनमें से रूस लौट गये और कुछ फ्रांस, सर्बिया तथा दूसरे देशों को चले गये। एक वर्ष से अधिक समय तक मैं बर्न (Berne) के विश्वविद्यालय में डाक्टरी पढ़ती रही इस आशा से कि, मैं एक डाक्टर के रूप में साधारण जनता में कुछ काम करने लायक़ होसकूं।

रूस-यात्रा

हमारा दल रूस में बड़ी सरगर्मी से काम कर रहा था। उसने एक बहुत ही सुव्यवस्थित कार्यक्रम को पूरा कर दिखाया। कोई भी व्यक्ति इस बात का पता उस कार्यक्रम से चला सकता है जो ५० अभियुक्तों* के मुक़दमे में पढ़कर सुनाया गया था। असल में उस दल के २० या २५ से अधिक मेम्बर नहीं थे। इस दल का अपना एक मासिकपत्र था। उसका

---

* सन् १८७७ में ५० अभियुक्तों में से अधिकांश को क्रान्तिकारी बातों के प्रचार करने के जुर्म में सख्त क़ैद की सज़ा दी गई थी।

नाम था 'श्रमजीवी' (The Worker)। यह विदेश में प्रकाशित किया जाता था। इस दल का उद्देश था कि शान्तिमय ढँग से प्रचार करके लोगों में थोड़े से साम्यवादियों का एक दल बना दिया जाय। परन्तु उसी समय इस दल ने, एक बड़े और विजयी विद्रोह का इन्तज़ार किये बिना, छोटे छोटे स्थानीय बलवों की स्वीकृति दे दी। दल के काम का ढाँचा बिल्कुल संयुक्त राष्ट्र-वादी सिद्धान्तों पर बनाया गया था। उसमें किसी महन्ती शासन, अथवा किसी एक दल को दूसरे दल पर हुकूमत करने की गुञ्जाइश नहीं थी। पढ़े-लिखे मेम्बरों के सब काम प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार होते थे। उनमें साधारण से साधारण आदमियों की सेवा का भाव रहता था। दल ने कारखानों के मज़दूरों के बीच में काम करने के लिए अपना क्षेत्र बनाया। इसका कारण यह था कि उनका मन और मस्तिष्क काफ़ी अधिक विकसित था, और गाँवों से उनका सम्बन्ध था। गर्मियों में काम करने के लिए जब मज़दूर लौट कर घर जाते थे तब किसानों में बड़ी आसानी से वे नये विचारों का प्रचार कर सकते थे। इस बात को ध्यान में रखकर हमने ट्रैक्टों और भाषणों द्वारा प्रचार करने के प्रोग्राम पर अमल किया। दल के मेम्बर कारख़ाने के केन्द्रों में विभाजित हो गये। कुछ लोग मास्को के कारख़ानों में घुस गये। कुछ एक जगह जाकर जुलाहों का काम करने लगे। कुछ लोग कियैव (Kiev) में शक्कर के कारख़ाने में काम करने लगे। चौथा दल तुला (Tula) में जाकर बस गया। सन् १८७५ की शरद् ऋतु में हमारा यह दल छिन्न-भिन्न हो गया। वे सब आदमी, जिनका दल से सम्बन्ध था, तथा बहुत से मज़दूर क़ैद कर लिये गये। परन्तु इतने ज़बर्दस्त धक्के के बाद भी,

कुछ लोग बच गये। उन्होंने काम जारी रखने के लिए नया प्रोग्राम बनाया।

आगे चलकर क्रान्तिकारी दल के बचे हुए आदमियों को याद आया कि इस दल के कुछ आदमी विदेशों में भी हैं और वे इस बात की प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि "सब लोग एक के लिए, और एक सबके लिए" सदा काम करेंगे। मार्कनैटन्सन ने डैरोथी एप्टेकमेंन और मुझसे प्रार्थना की कि हम लोग मास्को आकर पार्टी को नियमित रूप से चलाने का प्रबन्ध करें। बड़ी कशमकश के बाद मैंने यह काम करने का निश्चय किया। मैंने बसन्त के दिनों में अपने पति को लिख दिया था कि अब मैं आपसे आर्थिक सहायता नहीं लूंगी, मेरे साथ अब कोई भी सम्बन्ध न रखिये। बस, तभी से मेरे मार्ग में उनकी कोई रुकावट नहीं रही। परन्तु मैं डाक्टरी के डिप्लोमा के लिए क्या करती? मेरी पढ़ाई समाप्त होने में ५-६ महीने बाक़ी थे। डाक्टरी की परीक्षा के लिए जो लेख लिखना पड़ता है उसका विषय मैंने सोच लिया था। मैं एक दो महीने में उसे लिखना आरम्भ करने वाली थी। मेरी माता, मित्रों तथा सम्बन्धियों को बड़ी बड़ी आशाएँ लग रही थीं इस बात की कि, मैं बहुत ही योग्यता से डाक्टरी पास करके बड़े परिश्रम और साहस का काम करूँगी। परन्तु यह सब बातें व्यर्थ हुईं! जबकि लक्ष्य बिल्कुल मेरी आँखों के सामने था, तभी यह सारी आशाएँ अपने ही हाथों से मैंने धूल में मिला दीं। मैंने इस समस्या के दोनों पहलुओं पर विचार किया। एक ओर तो मेरे मित्रों की यह आशा थी कि मैं डाक्टरी पास करूँगी, इसलिए इस काम में उन लोगों ने मुझे हर तरह से सहायता दी थी। और दूसरी

ओर, वे आदमी थे जिन्होंने इन भावनाओं और अपनी व्यक्ति-गत कामनाओं का त्याग कर दिया था और अपने सम्बन्धियों की इच्छाओं के आगे भी सर नहीं झुकाया था। मैंने सोचा कि यह आदमी जेलों में कष्ट सहन कर रहे हैं और उन सख़्तियों और कठिनाइयों को अनुभव कर रहे हैं जिनके लिए मन में हम सब लोग तैयारी कर रहे हैं। मैंने यह भी अनुभव किया कि एक डाक्टर के लिए जो ज्ञान आवश्यक है वह मैंने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है, केवल उसके लिए एक सरकारी मुहर की कमी है। जो लोग हमारे सब मामलों से परिचित थे, उन्होंने कहा कि मेरी इसी क्षण ज़रूरत है और इस समय मैं उस काम के लिए बड़ी उपयोगी हो सकती हूँ जिसके लिए मैंने तैयारी की है। इन सब बातों का ख़याल करके मैंने ज़ूरिच से जाना ही निश्चित किया इसलिए कि, मेरे काम मेरी बातों को झूठी साबित न कर सकें। मैंने ख़ूब अच्छी तरह समझ-सोच कर दृढ़ निश्चय किया था, इसलिए उसके लिए पीछे से मुझे कभी पछताना नहीं पड़ा। दिसम्बर सन् १८७५ में, मैंने स्विट्ज़रलैण्ड छोड़ दिया। यहाँ से मैं अपने साथ उन दिनों की ज्वलन्त स्मृति लेगई जिनमें मुझे वैज्ञानिक ज्ञान, अच्छे अच्छे मित्र और इतना ऊँचा लक्ष्य मिला था, जिसके सामने सब बलिदान तुच्छ जान पड़ते हैं। उन्हीं दिनों जबकि मैं रूस लौट रही थी, मेरी माँ अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए स्विट्ज़रलैण्ड जाने की तैयारी कर रही थी। लिडीआ की गिरफ़्तारी से माँ का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था। मेरे इस प्रकार लौटने की कोई आशा नहीं थी, अतः सेंटपीटर्सबर्ग में अचानक माँ से मेरी भेंट होगई। यह कहना व्यर्थ है कि मेरा रूस लौट आना उसके

लिए कितना दुखदायी हुआ। कुछ दिन के बाद मेरी छोटी बहिनों ओल्गा और ईव्जीनिया को साथ लेकर माँ चली गई।

माँ के चले जाने के बाद मैं मास्को में रहने लगी। यहाँ उजड़े हुए क्रान्तिकारी दल का केन्द्र था। मैं और मेरे साथी पुलिस की निगाह में न पड़ें, इसलिए मैं अपनी बहिन लिडीआ से भी न मिल सकी। लिडीआ मास्को के एक थाने में क़ैद थी। इस बात पर बड़ी आसानी से मैं सहमत हो गई, क्योंकि मैं मास्को उसके लिए तो आई नहीं थी। मुझे यह पूरा निश्चय और आशा थी कि मेरे सामने जो सार्वजनिक काम है वह मेरे मानसिक और आध्यात्मिक साधनों के सामने ऐसी विस्तृत माँग पेश करेगा कि मेरे जीवन से व्यक्ति-गत बातें बिलकुल अलग हो जायँगी। अत्यन्त कटु और वास्तविक स्वप्न मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ मित्रों ने, मेरी तरह क्रान्तिकारी कामों की आवश्यकता अनुभव की। उन्होंने एक पार्टी का सङ्गठन कर लिया। उसका सङ्गठन और व्यवस्था अच्छी नहीं थी। उन लोगों को अनुभव न था, इसलिए काम करने के लिए वे कोई व्यावहारिक ढाँचा भी नहीं बना सके। जो सबसे अच्छे और योग्य आदमी थे, वे तुरन्त ही गिरफ़्तार कर लिये गये। स्थानीय युवकों ने काम की कोई तैयारी नहीं की थी। उन मज़दूरों ने, जिनके हम संसर्ग में आये, हमारी पाकेट-बुकों का दुरुपयोग कर के सारा गुड़ गोबर कर दिया। इस ढँग से काम करने से कोई लाभ नहीं था। लोग अलग अलग टुकड़ियों में बँट गये थे। उनकी कोई नियमित प्रणाली और सङ्गठन नहीं था। किसी भी तरह मैं अपने आपको इस गड़बड़ी में न रख सकी।

जेल में अपने मित्रों से मिलने-जुलने का काम मेरे सुपुर्द किया गया। सारे दिन मैंने इशारों की भाषा में पत्र लिखने में बिता दिये। शाम को मैं गन्दे शराबख़ानों में जाकर कुछ लोगों से मिलती, या मास्को के अँधेरे रास्तों और गलियों में उन पुलिस वालों से मिलती थी, जिनसे मिलने का मेरा समय नियत रहता था। इन लोगों का सहारा तकना बड़ा घृणित काम है। किसी समय भी यह लोग दोनों ओर के आदमियों को धोखा दे सकते हैं। हमने कुछ मित्रों को जेल से छुड़ाने का प्रोग्राम बनाया था, परन्तु उसका कोई नतीजा नहीं निकला, उसमें बहुत सा ख़र्च और होगया।

क्रान्तिकारी दल की दशा अच्छी न थी। सरकार के ज़ुल्मों से अब-तक बने हुए सब दल अस्त-व्यस्त होगये। न्याय-विभाग के मिनिस्टर की रिपोर्ट के अनुसार लगभग आठसौ आदमी विभिन्न अपराधों के अपराधी थे। जो स्थायी रूप से हवालात में क़ैद थे, अथवा जिनके मामले की जाँच हो रही थी, उनकी संख्या तो बहुत अधिक थी। इस प्रकार सरकारी दमन उन दिनों प्लेग की तरह भयङ्कर रूप धारण कर रहा था—उसकी भट्टी में हर एक आदमी ने अपना कोई मित्र या सम्बन्धी झोंक दिया। इससे न जाने कितने परिवार दुखी थे। परन्तु यह सब आफ़तें उस ज़बर्दस्त धक्के के मुक़ाबले कुछ भी नहीं थीं, जो क्रान्तिकारी प्रचार-आन्दोलन को लगा था। बहुत से कार्य-कर्त्ताओं की आशाएँ धूल में मिल गईं। जो प्रोग्राम इतना आशा-प्रद और उपयोगी मालूम पड़ता था, उससे कोई नतीजा नहीं निकला। जो आदमी जनता में बड़े उत्साह से प्रचार करने गये थे, उनका उत्साह एक दम भङ्ग होगया। हमारे काम का पुराना तार तो टूट गया, परन्तु अभी तक कोई नया रास्ता नहीं सूझा।

कुछ कार्य्यकर्त्ताओं ने इधर-उधर बिखरी हुई शक्तियों को फिर से सङ्गठित करने की व्यर्थ ही चेष्टा की। सब लोग तितर-बितर होगये। उनके नेताओं ने अपनी पुरानी नींव पर, पुराने ही विचारों के अनुसार काम का ढाँचा बनाया था। परन्तु मार्क नेटन्सन दो और क्रान्तिकारी पार्टियों को मिलाने में सफल होगये। इनमें से एक दल लैवरिस्ट लोगों का था। यह दल लैवरौव (Lavrov) का अनुयायी था। इसने 'फारवर्ड' पत्र को धन आदि से सहायता देकर चलाया था। महीने के अन्त में यह पार्टी टूट गई। इसके बाद प्रचारकों का एक दल निज़नी नौव्गौरौड (Nizhni Novgorod) नामक स्थान में काम करने गया, परन्तु वहाँ से उसे ज़बर्दस्ती वापस कर दिया गया। पुलिस की निगरानी वहाँ बड़ी सख़्त थी। किसी भी नये काम की झलक इतना सन्देह पैदा कर देती थी कि प्रचारकों का देहात में रहना असम्भव होगया।

इन उद्योगों के बाद नई नई बातों के आयोजन बिल्कुल लुप्त होगये। मैं स्वयं इतनी परेशान थी कि मर जाने की इच्छा की। उस समय जिन लोगों से मेरा परिचय था, उनमें एक व्यक्ति एण्टौन टैक्सिस की मुझे अब भी याद है। वह लैवरिस्ट पार्टी के आदमी थे। वह एक झूठा पासपोर्ट दाख़िल करके वहाँ रहते थे। बड़ी निराशा के क्षणों में उन्होंने मुझे उत्साह दिलाया और धीरे धीरे मेरे मन में वे सिद्धान्त जमा दिये जिन्हें मैं कभी भूली नहीं। उन्होंने मुझे वे कारण बतलाये जिनसे क्रान्तिकारी आन्दोलन असफल हुआ। एक सच्चे लैवरिस्ट की तरह उन्होंने उक्त काम की असफलता का वास्तविक कारण बतला दिया कि आन्दोलन सिद्धान्तों की दृष्टि से तो बहुत अच्छा था, किन्तु उतना व्यावहारिक नहीं

था। कार्य्य-कर्त्ताओं ने यथोचित तैयारी न की थी, और न, उनके काम के ढँग में कोई ख़ूबी थी। क्रान्तिकारी आन्दोलन के भविष्य में उन्हें पूरा विश्वास था। वर्त्तमान अवस्था को वे क्षणिक और ऐसा परिवर्त्तन-काल समझते थे जो किसी भी आन्दोलन के लिए अनिवार्य्य है। उन्होंने मेरे ऊपर प्रभाव डालकर बराबर यही समझाया कि अपने उद्देश के लिए क्षणिक ज़ोशीले बलवों की ज़रूरत नहीं, बल्कि बहुत ही परिश्रम और तत्परता से काम करने की ज़रूरत है। यह हो सकता है कि इस प्रकार के कठोर परिश्रम का प्रत्यक्ष फल कुछ न मालूम पड़े, परन्तु फिर भी हमें निराश न होकर इसी तरह काम करने के लिए तैयार होजाना चाहिए। आगे चलकर एन्टौन टैक्सिस ने कहा कि प्रत्येक नया विचार धीरे धीरे जीवन में प्रवेश कर रहा है, और एक ऐतिहासिक स्थिति ऐसी भी आ-सकती है जिसमें एक व्यक्ति अपने कामों की प्रगति उस क्षेत्र की ओर मोड़ दे जो उसके सामने खुला पड़ा हो। उन्होंने मुझे इसलिए भी उत्साहित किया कि मैं मास्को छोड़कर देश में कहीं अन्यत्र बस जाऊँ और स्वयं देखूँ कि रूसी लोग किस प्रकार एक जन्तु विशेष की तरह हैं।

बसन्त के दिनों में मेरे काम का भार एक दूसरे आदमी ने ले लिया। इसलिए मैं यरोस्लाव चली आई। एक अनुभवी व्यक्ति की सलाह पर, मैंने अपनी विदेश-यात्रा और ज़ूरिच-विश्वविद्यालय में पढ़ने की बात छिपा ली। इससे कोई भी व्यक्ति मेरे चरित्र पर सन्देह कर सकता था। इसी दशा में मैंने यरोस्लाव के अस्पताल में जाना शुरू कर दिया। ६ सप्ताह के बाद असिस्टेंट सर्जन की जगह के लिए मेडिकलबोर्ड की परीक्षा हुई। बोर्ड के इन्स्पेक्टर के कथनानुसार मैंने "पुरुष विद्यार्थी की

तरह" प्रश्नों के उत्तर दिये और स्वयं उसकी अपेक्षा मैं लैटिन भाषा अच्छी जानती थी। मेरे डिप्लोमा में कहा गया कि मैंने बहुत ऊँची योग्यता के साथ परीक्षा पास की है।

यरोस्लाव (Yaroslavl) से मैं कैज़ाँ चली गई। वहाँ मुझे कुछ घरेलू बातों का निपटारा करना था। मैं और मेरे पति, क़ानूनी ढँग से पारस्परिक सम्बन्ध विच्छेद करने पर सहमत होगये। कुछ महीनों के बाद हम दोनों का सम्बन्ध विच्छेद होगया। लौट कर सेंटपीटर्सबर्ग जाने पर, डाक्टरी विद्यालय में मैंने दाई का इम्तिहान पास किया। नवम्बर सन् १८७६ में मेरे सब सांसारिक झगड़े तय होगये। मैंने बड़ी दृढ़ता से बीता हुआ घटना-चक्र भविष्य के गर्भ में गाड़ दिया। २४वें वर्ष से तो मेरा जीवन पूर्णतया रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बद्ध होगया।

५
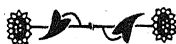
कार्यक्रम

न् १८७६ के अन्त तक रूस के क्रान्तिकारी दल दो मुख्य शाखाओं में बँट गये। एक शाखा में थे प्रचारक और दूसरी में विद्रोही। पहला दल उत्तर में और दूसरा दक्खिन में फैला हुआ था। पहले दल के विचार लैवरौव (Lavrov) के 'फारवर्ड' पत्र के अनुसार थे और दूसरे के विचार बाकुनिन (Bákunin) के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के। इस बात पर दोनों ही दल सहमत थे कि हमारा काम देहातियों में होना चाहिए। दोनों दलों के काम करने की शैली बिल्कुल निराली थी। प्रचारकों ने समझा कि साधारण जनता कोरे क़ाग़ज़ की तरह है, जिसपर वे साम्यवादी अक्षर लिख देंगे। उन्होंने निश्चय किया कि जनता को नैतिक और मानसिक रूप से अपने ही बराबर उठा दें और उसमें अल्प संख्या बहुत ही मज़बूत और होशियार लोगों की क़ायम कर दें, जो समय पर निश्चय ही एक प्रारम्भिक और सङ्गठित विद्रोह खड़ा कर सकें। साम्यवादी सिद्धान्तों और आदर्शों

को साधारण जनता में फैलाना भी प्रचारकों का काम था। इस काम के लिए अथक उद्योग और व्यक्तिगत योग्यता की ज़रूरत थी। दूसरी ओर विद्रोही लोग थे। वे साधारण जनता को सिखाने का इरादा नहीं रखते थे। उनका कहना था कि जनता से हमें शिक्षा लेनी है। उनकी राय में, वर्त्तमान परिस्थिति के ही कारण लोग स्वयं साम्यवादी होचुके थे और सामाजिक क्रान्ति के लिए अब वे बिल्कुल तैयार थे। वे वर्त्तमान शासन-प्रणाली से घृणा और सदा उसका विरोध करते थे। क्रियात्मक रूप से, अथवा निष्क्रिय प्रतिरोध करते हुए, वे सदा से एक विद्रोह की दशा में रहते चले आरहे थे। पढ़े-लिखे लोगों का यह काम था कि इन छोटे-मोटे व्यक्ति-गत विरोधों और उपद्रवों को एक सूत्र में बाँध कर एक प्रबल जल-धारा की तरह शक्तिशाली बना लें। क्रान्तिकारियों ने काम करने का जो ढँग अख़्त्यार किया, उसमें आन्दोलन करना, अशान्ति फैलने वाली अफ़वाहें फैलाना, डकैती डालना, शाही गद्दी के दावेदार खड़े कर देना आदि बहुत सी बातें शामिल थीं।

कोई नहीं जानता था कि जनता बदला लेने के लिए कब उठ खड़ी होगी। लोगों में ज्वाला भड़काने वाला मसाला इतना इकट्ठा हो चुका था कि एक छोटी सी चिनगारी आसानी से उस अनल-ज्वाल को प्रज्ज्वलित कर सकती थी। बाद में वही ज्वाला बड़ी भारी आग की लपटों में परिणत हो सकती थी।

किसानों की अवस्था ऐसी थी कि केवल एक चिनगारी की ज़रूरत थी। पढ़े-लिखे लोग तो चिनगारी का काम देने को थे। यह ज़रूर था कि विद्रोह में लोगों की हालत बहुत डवाँडोल होजाती, उनमें शान्ति

और व्यवस्था का नाम न रहता, परन्तु उनकी राष्ट्रीय भावना आगे चलकर उन्हें रास्ता दिखाती, इससे वे नये सिरे से अपनी व्यवस्था बना लेते। इस प्रोग्राम को पूरा करने के लिए आन्दोलनकारियों में किसी ख़ास सङ्गठन और अनुशासन की ज़रूरत नहीं थी। हर जगह लोग बलवा करने को तैयार थे। यह निश्चय करने की ज़रूरत ही न थी कि विद्रोह कहाँ से आरम्भ किया जाय। पहली चिनगारी कहीं भी लगे, किसी भी समय आग चारों ओर फैल जायगी।

दक्षिण की अपेक्षा, उत्तर में क्रान्तिकारी आन्दोलन की दशा अच्छी थी। धीरे धीरे यहाँ की हालत अधिकाधिक अच्छी हो रही थी। उसमें स्थायित्त्व था इसलिए कि, काम करने वाले लोग अनुभवी थे। इधर दक्षिण में काम करने वाले लोग बर्बाद हो गये। उनका कोई परम्परागत अस्तित्त्व भी न बचा। असल में वे मिटा दिये गये। उनमें जो कुछ थोड़े से आदमी बचे, वे नये दलों में शामिल होगये।

उत्तर में लोग बराबर अपना काम कर रहे थे। सन् १८७६ में चैकौ-व्स्की (Tchaikovsky) के दल ने एक नई समिति की स्थापना की। इस समिति का नाम था 'लैण्ड एण्ड फ्रीडम' (भूमि और स्वतंत्रता)। आगे चलकर सन् १८७९ में, इसी समिति से 'विल आफ़ दी पीपुल' (जनता की इच्छा) नाम की एक दूसरी पार्टी बन गई।

जहाँ तक लोगों में व्यावहारिक काम का सम्बन्ध है, वहाँ तक 'प्रचारक' और 'विद्रोही' उपर्युक्त दोनों ही दल असफल हुए। पहले के निश्चित किये हुए कार्यक्रम को पूरा करने में, लोगों के मार्ग में सचमुच ऐसी बाधाएँ आईं जिनकी कभी आशा नहीं थी और जो दूर नहीं की जा

सकती थीं। फिर भी, कुछ लोग क्रान्तिकारी कामों को जारी रखने और एक निश्चित कार्यक्रम पूरा करने को तैयार थे। बहुत से कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार कर लिये गये। जो कुछ उनमें बचे, वे बहुत अनुभवी थे। उन्होंने पिछले अनुभव के बल पर बिल्कुल नये ढँग से क्रान्तिकारी कार्य करना आरम्भ कर दिया। इन उद्योगों के फलस्वरूप एक नया कार्यक्रम प्रकाश में आया। वह प्रोग्राम 'नैरोडनीकी'※ (Narodniki) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कार्यक्रम में उक्त दोनों पार्टियों का प्रोग्राम सम्मिलित था।

इस कार्यक्रम के मूल सिद्धान्त प्रायः वैसे ही थे, जैसेकि, ऐतिहासिक विकास की अवस्था में प्रत्येक देश के हुआ करते हैं। रूसी लोगों का अपना एक दृष्टिकोण था। वह उन नैतिक और मानसिक विचारों के अनुसार था जो उनकी वर्त्तमान परिस्थितियों के अनुसार बने थे। इसी दृष्टिकोण का अङ्ग होने के कारण, कोई भी व्यक्ति समझ सकता है कि राजनैतिक और आर्थिक प्रश्नों की ओर सार्वजनिक प्रवृत्ति कैसी होगी। साधारण स्थिति में, शासन-संस्थाओं का परिवर्त्तन करने से पहले इन विचारों का बदलना बहुत कठिन था। इसलिए यह आवश्यक था कि क्रान्तिकारी कार्यों में सबसे पहले, लोगों की प्रवृत्तियों और उनकी इच्छाओं का उपयोग करने का प्रयत्न किया जाता और क्रान्तिकारी झण्डे पर उन आदर्शों को चित्रित किया जाता जो जनता के दिमाग़ में घर कर चुके

※ नैरौड (Narod) का अर्थ है जनता। नैरौडनिक (Narodnik) का अर्थ हुआ सार्वजनिक (Populist)।

थे। आर्थिक क्षेत्र में इस प्रकार का आदर्श था भूमि पर उन लोगों के अधिकार का, जो उसे जोतते हों। जब तक जिस ज़मीन को एक व्यक्ति जोतता रहे, तब तक उसपर उसीका अधिकार रहे। इसी प्रकार का दूसरा सार्वजनिक आदर्श था जन-सङ्घ के अधिकार और उसके द्वारा समस्त भूमि को ज़प्त कर लेने का। यह आदर्श साम्यवाद की शिक्षा से मिलता-जुलता था। किसानों के हृदय से ज़ार का विश्वास हटा देने के लिए यह आवश्यक था कि उनके सामने समुचित रूप से यह सिद्ध कर दिया जाता कि ज़ार साधारण जनता का हितैषी नहीं है। इस काम के लिए कोई भी व्यक्ति लोगों को उभाड़ता और उन्हें ज़ार के पास दरख़्वास्तें लेकर भेजता, जब उन्हें अपनी तकलीफें दूर कराने में सफलता न मिलती तब उससे उनका स्वप्न अपने आप भङ्ग होजाता। इसके अतिरिक्त क्रान्तिकारी, गाँवों में क्लर्क, डाक्टर, छोटे छोटे दुकानदार के रूप में किसानों में रह कर उनकी सोयी हुई निकम्मी शक्ति और समझ को जागृत करने में लग गये।

'भूमि और स्वतन्त्रता'

सन् १८७६ के अन्त में 'लैण्ड एण्ड फ्रीडम' (भूमि और स्वतन्त्रता) नामकी समिति बन गई। इसकी स्थापना करने वालों में से मैं भी एक थी। परन्तु इसमें पथ-प्रदर्शक थे चैकौव्स्की (Tchaikovsky) दल के पूर्व सदस्य मार्क नैटन्सन (Mark Natanson)। वे हाल ही में निर्वासन से लौट कर आये थे। यह नाम भी, 'भूमि और स्वतन्त्रता' नाम की उस समिति की स्मृति में चुना गया था जो सन् १८६० के आरम्भ

में अपना काम कर रही थी। हमारा कार्यक्रम था समाज के सब व्यक्तियों में काम करना, पल्टन, नौकरशाही, देहात में रहने वाले अधिकारी तथा छोटे मोटे पेशेवर आदमियों पर अपना आतङ्क जमाना और सरकार के विरुद्ध लोकमत सङ्गठित करना। इन्हीं उद्योगों के फलस्वरूप सेण्टपीटर्स-बर्ग में कैज़ाँ के गिरजे में एक बड़ा जुलूस निकाला गया था। उसके नेताओं में एक युवक प्लैखानौव* (Plekhanov) भी थे। उस अवसर पर पुलिस के द्वारा बहुत से आदमी पीटे और गिरफ़्तार किये गये। बाद में उन आदमियों पर मुक़दमा चला और वे जेल भेज दिये गये।

इसके बाद हममें से कुछ लोग सेंटपीटर्सबर्ग में रह गये, और बाक़ी सैराटौव और एस्ट्रख़ान के प्रान्तों में चले गये। हमारा जो दल 'सैपरेटिस्ट' कहलाने लगा था, उसने अपना काम करने के लिए समारा प्रान्त चुन लिया। मैं भी वहाँ अगस्त सन् १८७७ में पहुँच गई।

पहला उद्योग

मैं समारा (Samara) में, ज़िले के एक युवक डाक्टर के पास सिफ़ारिश करके भेज दी गई। वह डाक्टर बिल्कुल मेरे ही से विचारों के थे। उन्होंने मुझे अपने ज़िले के स्टडेन्ट्सी (Studentsy) नामके एक बड़े गाँव में नियुक्त करा दिया। मेरे सर्किल में १२ गाँव थे। हर महीने उन सब गाँवों का मैं दौरा करती थी। अपने जीवन में पहली

---

* १८५७—१९१८—वे रूस में कार्लमार्क्स के साम्यवाद-आन्दोलन के प्रवर्त्तकों में से एक थे।

बार यहाँ साधारण जनता के साथ मुझे देहाती जीवन कासा मना करना पड़ा। यहाँ से मेरे सम्बन्धी, परिचित मित्र और शिक्षित आदमी बहुत दूर थे। यह मैं मानती हूँ कि यहाँ किसानों के जन-सागर में मैंने अपने आपको अकेली, निर्बल और असहाय अनुभव किया। मैं यह तक न जानती थी कि एक देहाती आदमी से बात-चीत कैसे करनी चाहिए।

अब तक मैंने दुखी किसानों के रहने के स्थानों को पास से नहीं देखा था। मैं पुस्तकों, पत्रिकाओं, लेखों और आँकड़ों से लोगों की ग़रीबी और उनके दुख जानती थी। अब २५ वर्ष की उम्र में, मैं उस बच्चे की तरह लोगों के सामने आई जिसके हाथों में उन्होंने एक अद्भुत और असाधारण उद्देश छोड़ दिया।

सबसे पहले मैंने उन कामों में अपना हाथ लगाया जिनके पूरा करने की मेरे ऊपर ज़िम्मेदारी थी। ३० में से १८ दिन तक तो मैं घर से दूर गाँवों और छोटे नगलों का दौरा करती रही। इन दिनों मैं सचमुच ग़रीबी और दुखों के अथाह सागर में डूब गई। मैं प्रायः एक झोंपड़े पर ठहर जाती। वहाँ गाँव के मुखिया या उसके सहायकों से मेरे आने की ख़बर पाकर ३०-४० रोगी इकट्ठे होजाते। उनमें बूढ़े और जवान, बहुत सी स्त्रियाँ और उनसे भी अधिक वे बच्चे होते थे, जिनकी चीख़-पुकार चारों ओर गूँज उठती थी। इन मैले-कुचैले और दुबले मरीज़ों को कोई आदमी बराबरी के भाव से नहीं देख सकता। उनके अधिकांश रोग बहुत पुराने थे। उनके सिर-दर्द और गठिया के रोग १० से १५ वर्ष तक के पुराने थे। चमड़े के रोगों से प्रायः सभी पीड़ित थे। कुछ ही गाँवों में नहाने-धोने का प्रबन्ध था। बहुत से आदमी सन्निपात, साँस, गर्मी

आदि भयङ्कर बीमारियों के शिकार थे। असल में वे दायमुलमरीज़ थे। उनके कपड़े और रहने के मकान बहुत ही मैले-कुचैले और गन्दे थे। भर-पेट भोजन तक उन्हें नसीब नहीं था। इस दशा में उन्हें देखकर बड़े शोक और विस्मय से मैंने अपने आपसे पूछा—यह सब पशुओं का जीवन है, या मानव-तनु-धारियों का? जब इन अभागों के लिए मैं दवा तैयार करती थी तब अक्सर मेरी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती थी!

शाम तक बड़ी शान्ति से मैं मरीज़ों को दवा बाँटती थी। किसी को चूरन देती और किसी को मरहम। साथ ही यह भी बतलाती जाती थी कि वे दिन में तीन या चार बार कैसे दवा इस्तैमाल करें। काम कर चुकने पर मैं ज़मीन पर अपने बिस्तर के लिए बिछी हुई घास के ढेर पर पड़ रहती थी। निराशा के बादल मुझे घेर लेते। मैं सोचने लगती—क्या इस भयानक ग़रीबी का कभी अन्त भी होगा? चारों ओर फैली हुई गन्दगी में ये सब नुस्ख़े एक ढकोसला नहीं हैं? ऐसी अवस्था में विरोध का कोई विचार भी होसकता है? उन लोगों से, जिनकी शारीरिक दशा बिल्कुल कुचल गई है, विरोध और सङ्घर्षण की बात भी करना, उनके ताना मारना नहीं है?

तीन महीने तक रोज़ मैं यही दृश्य देखती रही। इतने पास से देखने पर ही किसी व्यक्ति को हमारी जनता की स्थिति का वास्तविक परिचय मिल सकता था। यह तीन महीने, मेरे लिए, सार्वजनिक जीवन की भौतिक दिशा के बड़े भयङ्कर अनुभव के थे। इस दशा में लोगों की आत्मा को देखने का मुझे अवसर ही न मिलता था। प्रचार के लिए मेरा मुँह खुल भी न सका।

उस समय समारा (Samara) में चेपुरनौवा (Chepurnova) नामकी एक महिला गिरफ़्तार कर ली गई। उसके क़ाग़ज़ों में मेरे तथा अन्य मित्रों के लिए लिखे गये पत्र भी पाये गये। इसके लिए पीटर्सबर्ग से हमें चेतावनी दी गई और वहाँ से मेरा तबादिला कर देने के लिए एक आदमी भेज दिया गया। मेरे चले आने के एक हफ़्ते बाद स्टर्डेंट्सी (Studentsy) गाँव में हथियारबन्द पुलिस रख दी गई।

६

गाँव में

ट्कौवस्की, और सौलैयैव दोनों आदमी एक गाँव में लुहार की दुकान करते थे। वह धन्दा उन्होंने छोड़ दिया। अब उन लोगों के साथ मिलकर मैंने वौरौने (Voronezh) प्रान्त में बसने का निश्चय किया। हम तीनों आदमी वहीं रहने लगे। इसके थोड़े ही दिन बाद १९३ अभियुक्तों के मामले का फैसला सुना दिया गया। उसमें हमारे बहुत से साथी छोड़ दिये गये इसलिए कि, वे हवालात में ही काफ़ी सज़ा भुगत चुके थे। उनमें से देश में काम करने के लिए कुछ आदमी हमें मिल सकते थे। इसी विचार से बौग्डानौविच और मैं वौरौने से सेंटपीटर्सबर्ग को रवाना होगये। वहाँ हमें बड़ा आनन्द मिला। राष्ट्र के युवक बड़ा हर्ष मना रहे थे। पुराने और नये सभी मित्रों ने जेल से छूटे हुए आदमियों का स्वागत किया। क़ैद से छूट कर आये हुए लोग मानों मौत के मुँह में से निकल कर आये थे! उनका शरीर जर्जर होगया था। परन्तु वे जेल के कष्टों को एक दम भूल गये। जवानी की उमङ्ग और बहुत

दिनों तक रुकी हुई शक्ति की लहर में, उन्होंने एक स्वप्न के रूप में विचार किया कि अपने उद्देश को पूरा करने के लिए फिर नये सिरे से उद्योग किया जाय। अपने विचारों को कार्य्य रूप में परिणत करने के लिए उन्होंने नया प्रोग्राम सामने रखा। सबेरे से रात तक उनके यहाँ लोगों की भीड़ लगी रहती थी।

क्रान्तिकारी क्लब की एक बैठक हुई। वहाँ एक दिन में ९० से १०० आदमी तक आये। मित्र लोग अपने साथ उन अजनबी आदमियों को भी ले आये, जो कैद से छूटे हुए उन आदमियों से मिलने को उत्सुक थे, जिन्हें वे यह ख़याल कर चुके थे कि वे ज़िन्दा ही क़ब्र में दफ़न कर दिये गये! इस समय मेरा बहुत से उन आदमियों से परिचय हुआ, जो सन् १८७० की पहली अर्द्ध-दशाब्दी में क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बन्ध रखते थे। उनमें से एक सोफिया पैरौव्स्काया भी थी। उससे मेरा पहली बार अभी परिचय हुआ। मैंने उसकी बड़ी तारीफ़ सुनी थी। मैं उसकी प्रजातंत्रवादी प्रवृत्तियों, और रहन-सहन, उसकी सादगी तथा चरित्र की सुशीलता से बहुत प्रसन्न थी। उसके मरने के समय तक, जबकि जेल के भीतर से उसने अपने साथियों पर सुखानौव और वैरौच्का की देख-रेख का भार सौंपा था, उसके साथ मेरी मित्रता बनी रही।

उन लोगों ने, जो जेल जाने से बच गये थे, तथा उन्होंने, जिन्हें अदालत ने छोड़ दिया था, फिर से अपना सङ्गठन करने का निश्चय किया। लगभग ४० आदमियों की एक पार्टी बन गई। मेम्बरों की एक आम सभा में पहले की 'पेपुलिस्ट' पार्टी का प्रोग्राम पढ़ कर सुनाया गया और वह पास हो गया। उसी सभा में सेण्टपीटर्सबर्ग में रह कर पार्टी के कामों की

व्यवस्था के लिए, एक कमेटी बना दी गई। इन बातों को तय कर देने के बाद सब मेम्बर तितर-बितर हो गये। हम लोग गाँवों में बसने के लिए चले गये। कुछ लोग अपने घर-वालों का प्रबन्ध करने तथा उनकी आर्थिक समस्याएँ सुलझाने के लिए चले गये। कुछ लोग अपना स्वास्थ्य ठीक करने को चले गये। दुर्भाग्य से हमारी पार्टी का इस समय ख़ात्मा हो गया। ज़ार ने अदालत के उक्त फैसले को मंज़ूर नहीं किया। इसका नतीजा यह हुआ कि पार्टी के बहुत से मेम्बर फिर पकड़ लिये गये और अधिकारियों की आज्ञा से वे निर्वासित कर दिये गये। कुछ लोग विदेशों में भाग गये। हमारी कमेटी टूट गई। कुछ लोग, जिन्होंने अपनी उचित व्यवस्था कर ली थी, या जो निर्वासन से भाग खड़े हुए, एक के बाद एक सेएटपीटर्सबर्ग लौट आये और 'लैण्ड एण्ड फ्रीडम' नामकी पार्टी में शामिल हो गये। सब लोगों ने मुझ से भी सेएटपीटर्सबर्ग में ठहर कर काम करने का अनुरोध किया। यह इसलिए कि, वे मुझे पढ़े-लिखे लोगों में काम करने के लिए अधिक उपयुक्त समझते थे। परन्तु मैं अपने विश्वास पर जमी हुई थी। मैंने इस समय सब काम छोड़ दिये थे इसलिए कि, स्वयं अब तक के अनुभवों ने सिद्ध कर दिया था कि इस प्रकार के काम व्यर्थ और अनुपयोगी हैं। मेरा लोगों में जाकर रहने का विचार ही पक्का रहा। सैरटौव (Saratov) में उस समय कुछ काम पूरा किया जा चुका था। गाँवों में लगभग एक दर्जन कार्य-कर्त्ता रहते थे। उनमें अध्यापक, क्लर्क, मोची, मजूर, बिसाँती आदि लोग थे। सैरटौव ख़ास में शहर के मज़दूरों में प्रचार किया जा रहा था। एलेक्ज़ेण्डर मिखेलौव सिनेनकिये नामके गाँव में रहते थे। वह

ईसाई मज़हब के विरोधी सम्प्रदाय में एक ग़ैरसरकारी उपदेशक का काम करते थे। उस सम्प्रदाय के लोगों की वह बड़ी प्रशंसा करते थे। उन्होंने विचार किया कि एक ऐसा नया बुद्धिवादी सम्प्रदाय बनाया जाय जिसका मूल सिद्धान्त हो व्यावहारिक सङ्घर्षण। उन्होंने बड़ी उत्सुकता से 'भगोड़ों' और 'यात्रियों' के चरित्रों का, तथा मज़हब के विरोधी उन अध्यापकों के उदाहरणों का वर्णन किया जो अपने बौद्धिक विकास और साधारण दृष्टिकोण में किसानों की अपेक्षा कहीं अधिक ऊँचे थे।

हमारे साथियों ने ज़िले में कुछ ऐसी जगहों पर काम करने का प्रबन्ध किया जिससे वे लोगों के संसर्ग में आसकें। पैट्रौव्स्क (Petrovsk ज़िले में मुझे भी एक जगह मिल गई। मेरी बहिन ईव्जीनिया भी मेरे साथ रहने को आगई। सैरटौव मेडिकल बोर्ड के सामने उसने हाल ही में डाक्टरी का इम्तिहान पास किया था। हमारे वहाँ पहुँचते ही लोगों में एक सनसनी फैल गई। वहाँ का जन-समाज इस प्रश्न पर बड़े चक्कर में पड़ गया कि हम लोग यहाँ क्यों आये? हम पढ़े-लिखे और अच्छी स्थिति के आदमी होकर भी, गाँव में रहने के लिए किस मतलब से आये? सौभाग्य की बात है कि हमारे रहन-सहन ने उन लोगों के लिए यह असम्भव कर दिया कि वे हमें निहिलिस्ट ख़याल करें। इसी बीच में ज़िला-बोर्ड के चेयरमैन और उनकी स्त्री से हमारी मित्रता होगई। इससे हमारा रास्ता बिल्कुल साफ़ होगया। कुछ अधिकारी हम पर सन्देह करते थे, इसलिए उन्होंने हम पर निगरानी रखने का निश्चय कर लिया।

इस दशा में हमने अपना काम आरम्भ किया। किसानों के लिए, एक स्त्री का डाक्टर होना बड़े ताज्जुब की बात थी। लोग पादरियों के पास यह

पूछने गये कि मैं स्त्री-पुरुष सभी का इलाज करने को नियुक्त हुई हूँ, या केवल स्त्रियों ही का? जब उन्हें मालूम होगया तब तो मैं मरीज़ों से घिरो रहती थी। ग़रीब देहाती लोग सैकड़ों की संख्या में मेरे पास ऐसे इकट्ठे होते थे, मानों मैं कोई अद्भुत काम करनेवाली मूर्त्ति थी। सवेरे से रात तक डाक्टर का छोटा-सा झोंपड़ा छकड़ा-गाड़ियों से घिरा रहता था। मेरी ख्याति बड़ी जल्दी फैल गई। उन तीन क़स्बों के बाहर भी, जहाँ मैं काम करती थी, मेरे इलाज की चर्चा होगई। थोड़े दिन बाद ही ज़िले भर में मेरे नाम की धूम मच गई। मैं किसी डाक्टर की मातहती में काम नहीं कर रही थी। मैं सीधे मेडिकल बोर्ड से, जितनी ज़रूरत होती उतनी दवा मँगा लेती। इसी बात से किसानों को मालूम होगया कि मैं उनकी सहायता कर सकती हूँ, क्योंकि जितनी उन्हें ज़रूरत पड़ती थी उतनी ही दवा मैं ख़र्च कर देती थी।

एक अभागी किसान स्त्री ४०-५० मील से पैदल चलकर मेरे पास आई। उसे रक्त-प्रदर की बीमारी थी। घर लौटते समय उसने कहा कि जैसे ही मैंने उसे छुआ वैसे ही उसके ख़ून गिरना बन्द होगया। कुछ लोग पानी और तेल लेकर मेरे पास आये और कहने लगे कि इस पर "मंत्र पढ़ दो।" उन्होंने सुन रखा था कि मैंने "मंत्र पढ़कर" अद्भुत सफलता के साथ लोगों की बीमारियाँ दूर करदी हैं! लोग कुछ ऐसे बूढ़े आदमियों को मेरे पास लाये जिनकी आँखें १५ और २० वर्ष पहले से ख़राब होगई थीं। वे मेरी सहायता से, मरने से पहले एक बार फिर प्रकाश देखना चाहते थे। जिस प्रकार मरीज़ों को मैं ध्यान से देखती थी, और लोगों से उनकी बीमारी के सम्बन्ध में तरह तरह के

प्रश्न करती थी, तथा जिस प्रकार बड़ी होशियारी से उन्हें दवा इस्तैमाल करने का तरीक़ा बतलाती थी, वे सब बातें लोगों के लिए सचमुच बड़े ताज्जुब की थीं।

पहले महीने में मेरे पास आठसौ और दस महीने में ९ हज़ार मरीज़ आये। मेरे पास आने वाले मरीज़ों की संख्या असल में उतनी ही थी, जितनी कि, ज़िले के मुख्य नगर में एक उस बड़े डाक्टर के यहाँ, जिसके साथ कई छोटे छोटे डाक्टर रहते हैं, एक वर्ष में होती है। यदि इस काम में मेरी बहिन ईब्जीनिया ने हाथ न बँटाया होता, तो इतना बड़ा काम करना मेरी ताक़त के बाहर होजाता।

थोड़े दिन बाद ही हमने एक स्कूल खोल दिया। ईब्जीनिया ने किसानों को ख़बर कर दी कि अगर वे अपने लड़कों को स्कूल में भेजा करें तो वह उन्हें बिना कुछ लिये योंही पढ़ा देगी। हमारे पास स्कूल की सब किताबें थीं। लड़कों के घरवालों को क़ाग़ज़, क़लम और प्राइमर ख़रीदनी नहीं पड़ती थी। तुरन्त ही हमारे घर पर २९ लड़का-लड़की पढ़ने के लिए आने लगे। मेरे ज़िले के तीनों परगनों में एक भी स्कूल नहीं था। ईब्जीनिया के पास दूसरे गाँवों से भी लड़के आते थे। कभी-कभी तो १९ मील दूर तक से पढ़ने को लड़के लाये जाते थे। छात्रों में छोटे बच्चों के सिवा युवक भी थे। कुछ किसानों ने बहिन से कहा कि उन्हें हिसाब सिखा दो, गाँव के कामों में हिसाब आदि रखने के लिए यह चीज़ बड़ी ज़रूरी है। इस काम के लिए मेरी बहिन को एक अच्छा-सा ख़िताब भी मिल गया।

डाक्टर के झोंपड़े ही में स्कूल और अस्पताल था। जब हम लोगों

को दवा बाँटने का, तथा स्कूल का काम ख़त्म कर चुकते, तब गाँव में कहीं किसानों के घर चले जाते। अपने साथ कोई पुस्तक ले लेते, अथवा करने को कोई दूसरा काम। उस रात को फिर घर पर छुट्टी रहती थी। लोग इधर-उधर दौड़ कर अपने पड़ोसियों और सम्बन्धियों को बुलाने लगते कि वे आकर हमारी बातें सुनें। पढ़ना आरम्भ हो जाता और रात के १०-११ बजे तक लोग हमसे लगातार पढ़ते चले जाने का अनुरोध करते। हम उन्हें प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकें और कहानियाँ पढ़ कर सुनाते, अथवा किसी पत्रिका से कोई लेख, या कुछ चुनी हुई ऐतिहासिक बातें। हमें सदा ऐसा अवसर मिलता था जिससे लोगों से किसानों के जीवन, उनकी खेती बारी, ज़मीदारों और अधिकारियों से उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर बात-चीत करते थे। हम किसानों की ज़रूरतों को समझने की कोशिश करते, उनकी शिकायतों और दुःखों को सुनते तथा उनके साथ सहानुभूति दिखाते और उनके दुख-सुख में हाथ बँटाते थे। कभी कभी किसान मुझसे कोई पुस्तक छोड़ जाने के लिए कहते, जिससे वे, वह बात जो उन्हें बहुत पसन्द आई है, फिर से पढ़ सकें, या ज़बानी याद कर सकें। किसान लोग हमें गाँव की पञ्चायत में आने का निमंत्रण देते जिससे हम क्लर्क की धोखा-धड़ी, रिश्वत, लालच आदि तथा मुखिया के बेईमानी से भरे हुए कारनामे ढूँढ़ निकालें और ऐसा करके हम ग्राम-सङ्घ की रक्षा करें। गाँव के क्लर्क से किसान घृणा करते थे। वे चाहते थे कि उस जगह पर ईव्जीनिया काम करे। उन्होंने हमसे यह भी कहा कि हम लोग क़स्बे की अदालत और वहाँ के बोर्ड में आया करें, जिससे क्लर्क गाली-गलौज देकर उनका अपमान अथवा उनके साथ कोई बुरा

बर्त्ताव न करने पावे। जब हमारे घर जाने का समय होता तब हमें उनके सामने यह पक्का वादा करके आना पड़ता था कि हम उनके बच्चों को पढ़ा-लिखा कर "ऐसे ही विद्वान्" बना देंगे जैसेकि हम स्वयं हैं।

हमारा यह जीवन, जिसमें किसानों से हार्दिक सम्बन्ध था, बड़ा सुखद था। उसकी याद आते ही, आज भी, मैं आनन्द में गद्गद् हो जाती हूँ। प्रति क्षण हम यह अनुभव करते थे कि यहाँ हमारी ज़रूरत है। हमारा जीवन व्यर्थ नहीं, बल्कि उपयोगी है। इस दशा में, जब एक आदमी यह ख़याल करता था कि मेरा जीवन बड़ा उपयोगी है, तब उसकी इस भावना में बड़ा ज़बर्दस्त आकर्षण रहता था। इसी भावना से प्रेरित होकर रूस के युवक गाँवों में काम करने के लिए चले आते थे। उस ग्रामीण वायुमण्डल में केवल वही व्यक्ति ठहर सकता था जो बहुत सजग हो और जिसका हृदय साफ़ हो। यदि उस जीवन से, तथा उन सब कामों से हम बिलकुल वञ्चित कर दिये गये, तो इसमें हमारा कोई दोष नहीं था।

हमारे विरुद्ध जो कशमकश चल रही थी वह कुछ ऐसी विचित्र थी कि यहाँ उसका वर्णन करना बहुत ज़रूरी है। हमारे मित्र दूसरों के नाम से बनावटी पासपोर्टों में रहते थे, किन्तु हम अपने ही पासपोर्ट लेकर रहते थे। ज़िले में यह बात कोई नहीं जानता था कि हमारी एक बहिन साइ-बेरिया में है। हमें गाँव में अच्छी तरह घुल-मिल जाने का अवसर भी न मिला था कि इतने ही में, किसानों ने हमें ख़बर दी कि हमारे ज़िले का पादरी, हमारे सम्बन्ध में यह अफ़वाह फैला रहा है कि हमारे पास पासपोर्ट नहीं है, हमने कभी कहीं पढ़ा-लिखा नहीं और वह स्वयं उतना

ही डाक्टर है जितने कि हम लोग हैं। किसान लोग हमें 'देवी' कहकर पुकारते थे, परन्तु पादरी ने हमें एक जगह नियुक्त करने से इन्कार कर दिया था यह कह कर कि, मैं नहीं जानता कि आप लोग कौन हैं, कहाँ से आई हैं और विवाहित हैं या अविवाहित। इसके थोड़े ही दिन बाद, उसी पादरी ने ज़िला-बोर्ड में यह फ़तवा दे डाला कि जबसे हम लोग व्याज़मीनो (Vyazmino) में आये हैं, तबसे लोगों की धार्मिक प्रवृत्ति बदल गई है, गिरजे में बहुत कम लोग आते हैं, उनका धार्मिक उत्साह मन्द पड़ गया है, और लोग गुस्ताख़ और हठी होगये हैं। बोर्ड में किसानों की ओर से पादरी से कह दिया गया कि जिस प्रकार मैं डाक्टर की हैसियत से अपना काम करती हूँ, उससे इन बातों का कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिए उन्हें इन बातों से कोई मतलब नहीं। फिर हमारे स्कूल के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल होने लगी। ज़मींदार का मैनेजर, क्लर्क, पादरी, सभी लोग स्कूल के बच्चों को बुला कर उनसे पूछ-ताछ करते थे। बच्चों ने एक दिन मेरी बहिन से कहा—"वे हमेशा हमसे पूछते हैं कि आप हमें प्रार्थना सिखलाती हैं या नहीं ?" ईव्जीनिया लड़कों को बराबर प्रार्थना सिखाती थी। फिर भी सैरटौव (Saratov) में शिकायत पहुँची कि ईव्जीनिया लड़कों में यह भाव भर रही है कि "न कहीं ईश्वर है और न, ज़ार (Tsar) की कोई ज़रूरत है।" इन्हीं दिनों ज़िला-बोर्ड के अधिकारियों से गाँव में यह अफ़वाह उड़ी कि हम फ़रार हुए लोगों को आश्रय देते हैं। उसके बाद से, जब कभी कोई आदमी हमारे यहाँ आता, चाहे वह कोई भी हो, तब उसकी निगरानी रखने को, किसी बहाने से गाँव का चौकीदार ज़रूर आता था। जब हम क़स्बे में घूमने गये तब मित्रों ने

हमसे कहा कि प्रिंस चेगोडायेव ने प्रत्येक आदमी को यह विश्वास दिला दिया है कि हम किसानों के झोंपड़ों में हर जगह जाते हैं, और वहाँ क्रान्तिकारी घोषणायें पढ़ कर सुनाते हैं, तथा हम एक भी बीमार आदमी को ऐसा नहीं जाने देते, जिसके सामने यह बात न कहते हों कि सब जगह अन्याय का राज है और हर एक अधिकारी बेईमान है !

जब किसानें ने यह बात सुनी तब उन्हें सचमुच बड़ा दुःख हुआ। अब यहाँ हमारी स्थिति डवाँडोल थी। इसी समय ऐलक्ज़ेण्डर सौलैयेव हमसे आकर मिले। उनका प्रोग्राम था कि सेंटपीटर्सबर्ग जाकर एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय की हत्या करें। वह हमसे इसी मामले में सलाह करने आये थे। उन्होंने हमसे रूस की वर्त्तमान स्थिति पर बातें कीं और यह भी बतलाया कि साधारण जनता में क्रान्तिकारी काम करने के सम्बन्ध में, वह क्या विचार रखते हैं। उनके विचार में सबसे पहली बात एक थी। रूस की वर्त्तमान स्थिति में, जहाँ जनता के हितों के लिए लड़ाई लड़ना, क़ानून, पूँजीपतियों, और अधिकारियों की नज़र में अन्याय और ग़ैरक़ानूनी है, यदि कोई व्यक्ति इन सब बातों का समर्थन करे, तो यह महज़ आत्म-तुष्टि के सिवा और कुछ नहीं है। इस क़ानूनी आधार पर काम करने से हमें सफलता की कोई आशा नहीं थी, इस दशा में भी, जबकि न्याय और सार्वजनिक हित का हथियार हमारे हाथ में था। सांसारिक सम्पत्ति, परम्परा और अधिकार-सत्ता का बल तो हमारे विरोधियों की ओर था।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए, सैरटौव में हुई अन्तिम कमेटी में, हम इस नतीजे पर पहुँचे कि गाँवों में ज़मीदारों और पुलिस के विरुद्ध मार-काट का त्रासमय वातावरण पैदा कर दिया जाय और पूरी

शक्ति से न्याय की रक्षा की जाय। हम लोगों ने मार-काट का जो प्रोग्राम बनाया था वह बहुत आवश्यक था। लोग ग़रीबी में बिल्कुल पिस गये थे, और ज़ोर-ज़ुल्म की उन माँगों से बहुत अपमानित और परेशान हो गये थे जो लगातार उनके सामने पेश की गई थीं। लोगों में अब इतना बल न रह गया था कि प्रतिकार के लिए वे स्वयं ऐसा ढँग अख़्त्यार करते। ऐसे काम के लिए नई क्रान्तिकारी शक्तियों की ज़रूरत थी। गाँव में इन शक्तियों का दौर-दौरा ख़त्म होचुका था। प्रतिक्रिया और कष्टों ने पढ़े-लिखे लोगों की शक्ति और उनका वह विश्वास चूर चूर कर दिया था जिससे वे देश में काम करने की आशा को फलते-फूलते देख सकते। क्रान्तिकारी युवकों ने उन लोगों के परिश्रम से कोई आशा-प्रद परिवर्त्तन होते हुए न देखा जो पहले जनता में काम कर चुके थे। प्रतिक्रिया की लहर के सामने अपने लिए कोई रास्ता न पाकर, बड़ी बड़ी ज़बर्दस्त शक्तियाँ नष्ट होगईं। इस समय रूस में सार्वजनिक कामों का बिल्कुल ख़ात्मा हो चुका था; इस स्थिति में प्रतिक्रिया बढ़ ही सकती थी, घट नहीं।

सौलैयैव ने कहा—सम्राट की मृत्यु से सामाजिक जीवन में परि-वर्त्तन होगा, और वातावरण साफ़ हो जायगा। पढ़े-लिखे आदमी अधिक समय तक संशय में न पड़े रह कर, जनता में काम करने के लिए, एक विशाल और फल-प्रद क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। देश के सभी स्थानों में सच्ची युवक-शक्ति का स्रोत उमड़ उठेगा। ठीक यही स्रोत है,—हमारी तरह कुछ इने-गिने व्यक्तियों का उत्साह नहीं—जो रूस के समस्त किसानों के जीवन पर प्रभाव डालने के लिए ज़रूरी है।

हम लोगों का जो एक साधारण विश्वास है, सौलैयैव उसीको

दुहरा रहे थे। हमने यह स्पष्ट देख लिया कि जनता में हम जो काम कर रहे थे वह कुछ उपयोगी न था। हमारी इस हार से क्रान्तिकारी दल को दूसरी बार हार खानी पड़ी। परन्तु यह हार अपने मेम्बरों के अनुभव की कमी, अथवा इसके कार्य्यक्रम के सैद्धान्तिक होने ही से उसे नहीं हुई। हार इसलिए भी नहीं हुई कि दल ने लोगों में बाहरी उद्देश और दुर्लभ आदर्शों का प्रचार करने की इच्छा की थी। न यह हार इसलिए हुई कि अपनी शक्तियों और साधारण जनता की तैयारी में हमें अत्यधिक आशायें थीं। इनमें से किसी भी कारण से हमारी हार नहीं हुई। हमें तो मैदान उस समय छोड़ देना पड़ा, जबकि हम यह अच्छी तरह जानते थे कि हमारा कार्य्य-क्रम जीवन के अनुकूल है, इसकी माँगें राष्ट्रीय स्थिति में एक वास्तविक आधार रखती हैं, और राष्ट्रीय स्वाधीनता न होने ही से सारी कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुई हैं।

यदि निरंकुश अधिकारियों, अथवा राजा से जनता की आवश्यकताओं और समाज की इच्छाओं की पूर्त्ति में किसी तरह से कुछ सहायता मिले, तो राजनैतिक स्वाधीनता का अभाव दबाया भी जा सकता है। इस दशा में यह भी होसकता है कि लोग उस अभाव को बहुत गम्भीरता से अनुभव न करें। परन्तु यदि राज-सत्ता इन दोनों बातों को भुलाकर, अपने ही रास्ते चलती जाय, यदि लोगों के करुण क्रन्दन, मज़दूरों की माँगों और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं की आवाज़ सुनने के लिए उसके कान बहरे होजायँ, यदि विद्वानों की ढूँढ़ निकाली हुई गम्भीर बातों, और अर्थशास्त्रियों द्वारा निकाले हुए आँकड़ों की वह उपेक्षा करे, यदि उसकी प्रजा का एक भी समुदाय अपने सामाजिक

जीवन पर प्रभाव डालने का कोई भी साधन न रखे ; यदि सारे आधार व्यर्थ होजायँ, सारे रास्ते रोक दिये जायँ ; यदि युवकों के रूप में समाज का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग अपने कामों के लिए कोई क्षेत्र न पावे, और उसके सामने सार्वजनिक हित के नाम पर कोई ऐसा काम न हो, जिसमें वह अपना हार्दिक उत्साह लगा सके—तो इस दशा में, स्थिति असहनीय हो उठती है, और समाज का सारा रोष अपने आप उस आदमी पर इकट्ठा हो जाता है जो उस शाही अधिकार का प्रतिनिधित्त्व करता है, जो सामाजिक जीवन से बिल्कुल अलग है ; लोगों को क्रोध आता है उस राजा पर, जो राष्ट्र के जीवन, उसकी भलाई और प्रसन्नता के लिए स्वयं अपने को ज़िम्मेदार ठहराता है, किन्तु जो करोड़ों आदमियों की बुद्धिमत्ता और बल की अपेक्षा, अपनी बुद्धिमत्ता और अपने ही बल की क़ीमत अधिक लगाता है। और यदि, उस राजा को सन्तुष्ट करने के लिए अख्त्यार किये गये सारे ढंग व्यर्थ सिद्ध हुए हों, तब क्रान्तिकारियों के लिए केवल एक ही,—हिंसा का, छुरे का, पिस्तौल का, डाइनामाइट का—मार्ग रह जाता है। यही कारण है कि सौलौयैव ने रिवाल्वर उठा ली !

क्रान्तिकारी दल की शहर की शाखाओं के मेम्बर भी इसी नतीजे पर पहुँचे। वीरा ज़ैसुलिक (Vera Zassulich), जो जूरी ने फ़ैसला करके छोड़ दी थी और जो हाल ही में भाग खड़ी हुई थी, फिर गिरफ्तार कर ली गई। उस समय, जबकि सारा रूस अदालत के उस फ़ैसले की सराहना कर रहा था, ज़ार के परिवार के लोग ट्रैपौव (Trepov)*

* ट्रैपौव सैंटपीटर्सबर्ग की पुलिस का प्रधान अधिकारी था। वीरा

को देखने गये। जब १६३ अभियुक्तों का मामला पेश हुआ, तब सीनेट ने उनकी सज़ाएँ कम कर देने की सिफ़ारिश की, परन्तु ज़ार ने उनकी सज़ाएँ और भी सख़्त कर दीं। अपने नौकरों की धाँधली और ज़्यादतियों के विरोध में की गई सारी कोशिशों का, ज़ार ने अधिकाधिक प्रतिक्रिया और दमन से उत्तर दिया। जो थोड़ी-सी राजनैतिक हत्यायें हुईं, उनके फल-स्वरूप चारों ओर धर-पकड़ मच गई। स्वयं मालिक को अछूता छोड़कर, एक ऐसे नौकर को, जिसने अपने मालिक का हुक्म बजाया है, सज़ा देना, बड़ा भद्दा लगता था। राजनैतिक हत्याओं ने स्वभावतः लोगों को ज़ार की हत्या की ओर प्रेरित किया। ज़ार की हत्या का ख़याल गोल्डेनबर्ग और कोबिलौन्स्की के दिमाग़ में प्रायः उसी समय आया जबकि उसे सौलैयैव ने सोचा था और यही उसके जीवन में व्याप्त होगया था। अब मैं सोचती हूँ कि यदि हम सब इसका विरोध करते, तो वह इसका उद्योग कभी न करता। उसे अपने इस उद्योग की सफलता में पूरा विश्वास था। जब मैंने उसके सामने यह बात रखी कि इस उद्योग की विफलता से, और भी अधिक भयङ्कर प्रतिक्रिया की लहर पैदा हो सकती है, तब उसने मुझे बड़ी दृढ़ता और उत्साह से विश्वास दिलाया कि विफलता का तो ख़याल भी नहीं करना चाहिए, मैं ऐसा मौक़ा तो कभी आने ही नहीं दूँगा, मैं तभी इस ज़िम्मेदारी को उठाऊँगा, जबकि इसकी सफलता का हर एक अवसर होगा,

---

जैसुलिक ने उसे मारने की कोशिश की थी इसलिए कि, उसने राजनैतिक क़ैदियों को गालियाँ दी थीं।

और यदि, वह विफल हुआ भी, तो मेरा जीवन न रहेगा। जब सौलौयैव ने इतनी दृढ़ता से इस काम में अपनी सफलता का विश्वास दिलाया, तब मैंने यही ख़याल किया कि उसकी आशाएँ ठीक हो सकती हैं। सचमुच इस आदमी के जीवन में एक वीर के साहस, एक तपस्वी के आत्म-त्याग और एक बालक की सी दयालुता का समावेश था। बस, आगे चलकर हम इसके बाद बहुत दिनों तक बड़ी चिन्ता के साथ सेंटपीटर्सबर्ग के समाचार की प्रतीक्षा करने लगे। इसी बीच में गाँव की स्थिति पहले से भी अधिक ख़राब होगई। अब अधिक समय तक हमारा वहाँ पड़ा रहना व्यर्थ और असहनीय था।

२९ अप्रैल को सेंटपीटर्सबर्ग में समर-गार्डन के पास सौलौयैव ने ज़ार पर रिवाल्वर से गोली चलाई। एक किसान ने उसकी कुहनी में धक्का दिया, इससे गोली ख़ाली गई! मई में सौलौयैव को फाँसी दे दी गई! उस समय मैंने सोचा कि हमें अपना काम करते रहना चाहिए। प्रतिक्रिया की शक्ति का नाश करने की अपेक्षा, हमने उसे और भी अधिक बढ़ने का मौक़ा दिया। इसी वक़्त हमारे दूसरे साथी वौल्स्क ज़िला छोड़ देने को विवश हुए। इधर कुछ मित्रों ने सेंटपीटर्सबर्ग से हमें लिखा कि यह बात ढूँढ़ निकाली गई है कि सौलौयैव सैरटौव के ज़िले में जाकर रहे थे, और उनकी कार्रवाइयों का पता लगाने के लिए एक विशेष कमीशन नियुक्त होगया है। इसके बाद ही सैरटौव से ख़बर आई कि वह कमीशन शहर में पहुँच गया और वौल्स्क ज़िले को रवाना हो रहा है। हमारे मित्रों ने हमसे वहाँ से चले जाने का इस डर से अनुरोध किया कि यह बात मालूम कर ली जायगी कि हमारा और सौलौयैव का सम्बन्ध था। अन्त में वौल्स्क

ज़िले से एक आदमी यह ख़बर लाया कि अधिकारियों ने उस कोचवान का पता लगा लिया जिसने सौलैयैव को गाड़ी में पैट्रोव्स्क ज़िले में पहुँचाया था। इसके बाद वहाँ से हमारा जाना ज़रूरी था। बहिन के साथ मेरे चले आने के एक दिन बाद व्याज़मीनो में पुलिस पहुँच गई।

उस दशा से, जो इस समय गाँव की थी, हमें यह अच्छी तरह मालूम हो गया कि वर्त्तमान स्थिति में लोगों में काम करना सम्भव नहीं है। इन सब बातों को देख-सुनकर, हम इस नतीजे पर पहुँचे कि सब कामों से पहले इस दशा का अन्त कर देना ज़रूरी है। साथ ही हमें यह भी मालूम होगया कि लोगों ने यह जान लिया कि हम उनके शुभचिन्तक हैं। जब पुलिस के सिपाही व्याज़मीनो में पहुँचे तब किसानों ने कहा—यह सब इसलिए होरहा है कि वे हमारी तरफ़दार थीं। बाद में जब क्लर्क ने यह अफ़वाह फैला दी कि हम गिरफ़ार कर लिये गये और ईव्जीनिया फाँसी पर लटका दी गई, तब किसान लोग रात को हमारे मित्रों के पास इन बातों की सचाई का पता लगाने गये। यह बात झूठी निकलने पर, वे लोग संतुष्ट और प्रसन्न होकर घर लौट आये। कुछ महीने बाद मैं एक जवान लड़की से मिली। वह पहले हमारे पास ही रहती थी। उसने मेरी गर्दन में अपनी दोनों बाँहें डालकर बड़े हर्ष से कहा—"आप वहाँ व्यर्थ ही नहीं रहीं!"

सैरटौव में अन्तिम बार हमारा छोटा-सा दल इकट्ठा हुआ। उस समय मैंने कहा कि मैं 'लैंड एण्ड फ्रीडम' नामकी पार्टी में शामिल होना चाहती हूँ, इसलिए अपने आपको इस दल से अलग करती हूँ। मैं उचित कारण नहीं समझती इसके लिए कि, एक छोटा-सा दल स्वतंत्र

होकर इस तरह बना रहे, मैं उस पार्टी में उन लोगों का समर्थन करूँगी जो ज़ार की हत्या के लिए फिर से नया उद्योग करना चाहते हैं। दूसरी पार्टियों के लिए भी सरकार से लड़ाई लड़ना बहुत ज़रूरी होगया था। इसके बाद हम लोग तितर-बितर होगये।

'लैंड एण्ड फ्रीडम' नामकी पार्टी ने, मेरी इच्छा पर विचार करके, पौपौव के द्वारा मुझे मेम्बर बन जाने के लिए निमंत्रित किया। मैंने अपनी अनुमति दे दी। पौपौव ने मुझसे कहा कि वौरौने में पार्टी की एक बैठक होगी। बाद में पार्टी के कुछ और मेम्बरों के साथ हम वहाँ गये।

वर्त्तमान स्थिति

सन् १८७६ के अन्त से १८७९ की गर्मियों तक, जबकि वौरौने में पार्टी की बैठक हुई, क्रान्तिकारी दल की अवस्था बहुत डवाँडोल-सी रही। कई अलग अलग दल काम कर रहे थे। सब दलों को मिलाकर अखिल रूस के एक विराट दल के रूप में सङ्गठित होजाने की पार्टी की कोई इच्छा ही नहीं थी। इसका नतीजा यह हुआ था कि एक उद्देश्य, एक साधन, और एक ही प्रोग्राम के होते हुए भी, छोटे छोटे स्वतंत्र दल तितर-बितर होगये। वे सब दल एक दूसरे से, मेम्बरों के व्यक्ति-गत परिचय से मिले हुए थे। उत्तर में 'लैंड एण्ड फ्रीडम' सुसाइटी एक बड़े सुदृढ़ संयुक्त दल के रूप में अपना सङ्गठन कर रही थी। वह एक आम क़ानून से बँधी हुई, तथा मेम्बरों के पारस्परिक सम्बन्ध से नियंत्रित थी। मेम्बरों के अधिकार और उनके कर्त्तव्य की रूप-रेखा भी खींच दी गई

थो। उधर दक्षिण के लोग रूसी वीरता का प्रदर्शन कर रहे थे। उनमें अनुशासन नहीं था और उनमें तथा क्रान्तिकारी युवक-दल में बहुत थोड़ा अन्तर था। वे जंगली आदमियों की तरह, ओडेस्सा, खारकौव और कियेव में घूमते-फिरते थे। सन् १८७७ से १८७६ तक सरकार के बेहद ज़ुल्मों ने इन शहरों में आन्दोलन दबा दिया था। मुक़दमों ने क्रान्तिकारियों को अपनी सबसे उत्कृष्ट शक्तियों से वञ्चित कर दिया था। इस प्रकार की कठिन परीक्षाओं ने उत्तर में ऐसे भयङ्कर परिणाम पैदा नहीं किये थे। यह इसलिए कि, सङ्गठित पार्टी ने, केन्द्रस्थ सभा के मेम्बरों में तनिक भी कमी होने पर, इन प्रान्तों में नई शक्तियों की धारा बहा दी थी। सन् १८७६ की गर्मियों में, 'लैण्ड एण्ड फ्रीडम' सुसाइटी के रूप में, क्रान्तिकारियों का केवल यही एक ऐसा सङ्गठित दल था, जिसके हाथ में एक अख़बार और बहुत से मेम्बर थे। पार्टी के ऊपर भी एक केन्द्रस्थ दल था। उस का सदर-मुक़ाम था सेण्टपीटर्सबर्ग। यह दल प्रेसों का सञ्चालन, अख़बारों का प्रकाशन और पार्टी के सभी आर्थिक मामलों का प्रबन्ध करता था। यही केन्द्रस्थ दल सब प्रान्तों से सम्बन्ध रखता था और सबके पास इस ढँग से अपनी स्कीमें भेजता था जिससे उसे प्रान्तों के काम से सीधा कोई सम्बन्ध न रहे। इसके सिवा यह पार्टी का क्षेत्र और उसकी शक्ति बढ़ाता तथा गाँवों में नये कार्यकर्त्ता भेजता था। प्रान्तीय मेम्बर 'सङ्घ-बद्ध' होकर कई ज़िलों में फैले हुए थे। वे सब स्थानीय शासन और स्थानीय मामलों में स्वतन्त्र थे। सेण्टपीटर्सबर्ग में पार्टी के मेम्बरों का ध्यान अधिक से अधिक सरकारी हाकिमों की निरंकुशता और ज़ोर-ज़ुल्म को दबाने में लग रहा था, इसलिए वे, प्रान्तों में किए हुए अपने साथियों

के कामों पर बहुत कम नज़र रख पाते थे। उनके सारे आदमी और सारी शक्तियाँ राजनैतिक कैदियों को छुड़ाने और मार-काट के कामों में अटक रही थीं।

आगे चलकर क्रान्तिकारी सिद्धान्तों पर लोगों में मत-भेद बढ़ने लगा। सेण्टपीटर्सबर्ग में पार्टी के मेम्बर कुछ तो सफलता के नसे में मतवाले बन गये, या लड़ाई के उस जोश में असफलता के कारण क्रोधित हो उठे, जो उनकी सारी शक्तियों का उद्योग चाहता था, पर साथ ही उसने आन्दोलन के बहुत ही उत्तम साधन दिये थे। पार्टी के मेम्बर तेम्बौव और सैरटौव गाँवों के शान्त वातावरण को बड़ी घृणा से देखने लगे। इस बात से कि, गाँवों में दर्जनों कार्य-कर्त्ता रहते हैं, फिर भी वहाँ कोई नतीजा नहीं निकला, और न वहाँ व्यावहारिक रूप से लड़ाई के कोई चिह्न ही दिखाई दिये, उनके हृदय में खलबली मच गई। यदि दर्जनों क्रान्तिकारी, जिन्होंने दो वर्ष से अधिक समय तक गाँवों में काम करने में अपने आपको लगा दिया, लोगों में जीवन न डाल सके, और कोई ऐसा ठोस काम न कर सके जिससे निकट भविष्य में सार्वजनिक विद्रोह की तैयारी की जा सके, तो अब अधिक समय तक उनके वहाँ पड़े रहने से क्या लाभ था? हर एक मेम्बर किसानों को उस सरगर्म लड़ाई से कुचला हुआ दिखाई देता था, जिसमें कि, उन्होंने बड़े उत्साह से योग दिया था। उधर पैपुलिस्ट लोगों ने सोचा कि पार्टी के शहर में रहने वाले वे युवक आग से खेल रहे हैं, जिनकी उज्ज्वल प्रतिभा मुख्य काम से, उस जनता से जिसे उनकी युवक-शक्ति की बड़ी भारी ज़रूरत है—अलग बहक रही है। उनकी नज़र में सेनापतियों और

पल्टन के अफ़सरों की हत्या का काम उतना उपयोगी और ज़रूरी नहीं था, जितना कि गाँवों में सार्वजनिक भूमि के बराबर बँटवारे के सम्बन्ध में त्रासमय वातावरण पैदा कर देने का काम था। गाँवों में मार-काट के त्रासमय काम ख़ूब होते रहे, उनकी ओर किसी का ध्यान भी न था। कोई यह भी देखने वाला नहीं था कि उन कामों का वहाँ क्या प्रभाव पड़ रहा है। उन कामों की कोई धूम मचाने वाला, अथवा उनपर कोई आँसू बहाने वाला भी नहीं था। उन कामों ने स्वयं उन क्रान्तिकारियों तक को नहीं उभाड़ा, जो चिन्ताओं, ख़तरों और लड़ाई के आनन्द के बीच न रहकर, शहरों में बसे हुए थे। उन लोगों ने पहाड़ों के एकान्त में, तथा किसानों के जन समुद्र में अपने उन साथियों के लिए चार आँसू तक नहीं बहाये, जिनका नाश हो चुका था!

७

कलह

हरों और गाँवों के क्रान्तिकारी दलों में, आपस में मन-मुटाव तो हो ही रहा था, अब धीरे धीरे सेंटपीटर्सबर्ग की केन्द्रस्थ कमेटी के भीतर भी तनातनी शुरू हो गई और लोगों में मत-भेद बढ़ने लगा। जिन सरकारी अफ़सरों के मन-माने ज़ोर-ज़ुल्म बहुत ही शर्मनाक हालत को पहुँच गये थे, उनको मारने के लिए, एक के बाद दूसरे प्रयत्न किये जा रहे थे। क्रान्तिकारी दल हथियारों के बल पर अधिकारियों के क्रूर कार-नामों का दृढ़ता से विरोध कर रहा था। इन सब बातों से युवकों में ऐसा जोश फैला और ऐसे व्यावहारिक साधन दिखाई देने लगे जिससे दमन पर सीधा और बड़ा ज़बर्दस्त घूँसा लग सके। केन्द्रस्थ कमेटी के भीतर एक ऐसा दल उठ खड़ा हुआ जो इस बात के पक्ष में था कि सरकार से खुलकर लोहा लिया जाय। इस दल के लोगों के लिए, केन्द्रस्थ सरकार पर वार करने का प्रश्न बड़े महत्त्व का था, परन्तु पै.पैाव, प्लेखानौव, और उनके साथियों ने केन्द्रस्थ कमेटी में उस दल के

प्रोग्राम का बहुत विरोध किया। उन्होंने कहा कि मार-काट के कामों से पार्टी का बहुत नुक़सान हुआ है, तथा सरकार का दमन भी अधिक बढ़ गया है, और इसीसे, युवक उस जनता में रचनात्मक तथा उचित कामों के करने से बहक गये हैं, जिसकी सहायता की पार्टी को बड़ी ज़रूरत है। झगड़ा बहुत बढ़ चुका था। जब मैं सेंटपीटर्सबर्ग पहुँची तब दल की बैठकों में हुई आपस की तू-तू-मैं-मैं से मुझे चोट पहुँची।

दलबन्दी

सैलौयेव के असफल उद्योग के बाद प्लेखानौव और पैपौव ने एक बड़ी कान्फ्रेंस की, यह निश्चय करने के लिए कि, हिंसात्मक क्रान्ति का क्या रूप हो। उन्हें यह विश्वास था कि जो क्रान्तिकारी प्रान्तों में काम कर रहे हैं वे हमारी ओर होंगे और मार-काट के विरुद्ध अपना ज़ोर लगावेंगे। इस बात से डर कर, उस दल ने जो अधिक गरम था, 'लैंड एण्ड फ्रीडम' पार्टी के अन्दर ही स्वयं एक अलग पार्टी बना ली और मेम्बरों की भर्ती शुरू कर दी। हिंसात्मक कार्य्य-क्रम के प्रचार के लिए, उस दल का एक अख़बार निकलता था, और उसके विशेषांक के रूप में एक पर्चा भी निकला करता था। उसकी विज्ञप्तियाँ "कार्य्य-कारिणी कमेटी" की ओर से जारी की जाती थीं। कियैव में क्रान्ति-कारी घोषणाओं में भी इसी नाम से दस्तख़त किये जाते थे।

यह दल अपनी हस्ती अलग क़ायम रखने के लिए तैयारियाँ करने लगा। इस दशा में मुख्य पार्टी से इसका झगड़ा होना ज़रूरी सा हो गया। इसने अपना निज का प्रेस और रासायनिक प्रयोगशाला खोलने

की तैयारी कर दी। किबैलचिह (Kibalchich) में इस दल को एक ऐसा आदमी मिला जो सन् १८७८ के प्रारम्भ में, अपने जेल से छूटने के वक्त से, घर पर डाइनामाइट बनाने की समस्या को हल करने में लग रहा था, और जिसने इस काम के लिए ज़रूरी बातों का केवल अध्ययन ही नहीं किया था, बल्कि अपनी प्रयोगशाला में स्वयं बनाया भी करता था।

जब यह निश्चय हुआ कि 'लैंड एण्ड फ्रीडम' पार्टी की एक बैठक वौरोनै में हो, तभी गुप्त कार्य्यकारिणी कमेटी के मेम्बरों ने उससे पहले लिपेट्स्क (Lipetsk) में अपनी निज की एक कांग्रेस करने का विचार किया और दक्षिण के मुख्य मुख्य क्रान्तिकारियों को उसमें आने के लिए निमंत्रित कर दिया। वाद-विवाद करने के बाद इस दल ने अपने निश्चित नियम और क़ानून बना लिये और अपना उद्देश स्थिर कर लिया कि निरंकुश शासन-सत्ता को उलट, सरकार से सशस्त्र युद्ध करके, देश में राजनैतिक स्वतंत्रता स्थापित करेंगे। इसके बाद वे 'लैंड एण्ड फ्रीडम' की कान्फ्रेंस में शामिल होने के लिए वौरोनै चले गये।

प्रान्तों के पारस्परिक अविश्वास और सेंटपीटर्सबर्ग के झगड़ों ने बड़ी तनातनी का वायुमण्डल पैदा कर दिया था। वहाँ पार्टी के मेम्बर पारस्परिक अविश्वास को साथ लेकर इकट्ठे हुए थे। उन्हें डर था कि कान्फ्रेन्स के इस अधिवेशन में झगड़ा होगा। परन्तु कान्फ्रेंस शुरू होते ही यह मालूम होगया कि मत-भेद इतना तीव्र नहीं था जिसके लिए वे डरते थे। चारों ओर शान्ति छागई और लोगों के मन में बड़ी भारी इच्छा यह हुई कि मेल बना रहे तो अच्छा है। आपस की सफ़ाई और

बाद-विवाद के बाद 'लैंड एण्ड फ्रीडम' की पार्टी का प्रोग्राम और उसके नियमोपनियम बिना किसी परिवर्त्तन के योंही छोड़ दिये गये। यह निश्चय किया गया कि आम तौर पर काम जारी रखा जाय, मगर उसमें किसानों को ज़रूर शामिल कर लिया जाय, इसलिए कि, किसानों के बिना रूस ऐसे मुल्क में कोई आन्दोलन देश-व्यापी नहीं होसकता। शहरों में मार-काट और ज़ार को मारने का उद्योग भी होता रहे। इन सब बातों से प्लेखानौव सहमत नहीं हुआ, और इसीलिए वह पार्टी से अलग होगया।

यह कान्फ्रेंस कुछ ज़ोरदार न हुई। मौरोज़ौव मेरे पास आये। उन्होंने मुझसे गुप्त समिति में भरती होजाने का अनुरोध किया, परन्तु मैंने ऐसा करना अनुचित समझा इसलिए कि, एक गुप्त समिति के भीतर दूसरी गुप्त समिति बनाना बिल्कुल अनावश्यक था।

८
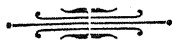
पार्टी के झगड़े

रौने की कान्फ्रेंस के बाद मेरा जाली पासपोर्ट से रहने का जीवन आरम्भ हुआ। मैं क्याट्-कौव्स्की के साथ सेंटपीटर्सबर्ग को रवाना हो गई। वह मुझे लैज़नुआ मुहल्ले में वहाँ लेगये, जहाँ उन्होंने और ईवानौवा (Iwanova) ने क्रान्तकारी दल की बैठकों के लिए स्थान बना रक्खा था। यह स्थान 'लैण्ड एण्ड फ्रीडम' पार्टी के उन लोगों का सदर-मुक़ाम था जो सशस्त्र क्रान्ति के पक्ष में थे। गर्मी के दिन थे। यहाँ सदर-मुक़ाम खुल जाने से कई लाभ थे। हम सब लोगों के पास जाली पासपोर्ट थे और इसी तरह के बहुत से आदमी छिपकर हमारे पास काम से आया करते थे। पार्क में लगे हुए छोटे-छोटे देवदारु के वृक्षों के कुञ्ज में, जहाँ का वातावरण बिलकुल शान्त था, दल की बैठकों का प्रबन्ध करना बड़ा आसान था। हम कहीं दूर ऐसी जगह जाकर इकट्ठे होते थे, जहाँ लोग कभी आने का साहस ही न करते। हम लोग जहाँ-तहाँ देवदारु के

वृक्षों के नीचे फैल जाते। वहाँ कोई भी अजनबी आदमी दूर ही से दिखाई दे सकता था। उस रास्ते कोई भूला-भटका भी न आ सकता था। हमारे यहाँ पहुँचते ही दल की बैठकें होने लगीं। परन्तु यह बैठकें 'लैण्ड एण्ड-फ्रीडम' पार्टी की नहीं थीं, बल्कि उन लोगों की थीं जिन्होंने लिपेट्स्क की सभा में भाग लिया था और जो लैज़नुआ में इकट्ठे हुआ करते थे। पहली ही बैठक में कुछ आदमियों ने गाँव में रहने-वाले अपने साथियों के काम की शिकायत की और कहा कि वे मार-काट के कामों में रुकावट डालते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि ज़ार की हत्या के सम्बन्ध में, वोरोनेज़ की कान्फ्रेंस के निश्चय के अनुसार, काम बिना किसी विलम्ब के तुरन्त किया जाना चाहिए, अन्यथा, जब एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय क्रीमिया से सेंटपीटर्सबर्ग लौटेगा, तब यह काम हो नहीं सकेगा। इसी बीच में उन स्थानों में बहुत काफ़ी डाइनामाइट भेज दिया गया जहाँ होकर ज़ार क्रीमिया से लौटने वाला था। इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने के लिए काफ़ी आदमी भेज दिये गये। परन्तु उन लोगों ने पहले की तरह कहा कि मार-काट के कार्य्यक्रम के विरोधी हर सम्भव ढंग से इसके पूरा करने में देर कर रहे हैं। पार्टी की शक्ति आपस के लड़ाई-झगड़े में ख़र्च होरही थी। भविष्य में कुछ सुधार और समझौतों की आशा ज़रूर थी, किन्तु किसी निश्चित और सर्व-सम्मत कार्य्य की नहीं। वोरोनेज़ में जो कान्फ्रेंस हुई थी, उसने आपसी झगड़े को मिटाया नहीं, बल्कि दबा दिया। दलों को आपसी झगड़े से बर्बाद न होने देने के लिए यह ज़रूरी था कि लोग अपनी शक्तियों को बाँट लें और प्रत्येक को अपने ही रास्ते जाने का अवसर मिल सके। लोगों ने अपने मुख्य काम के सम्बन्ध में बार बार बहस

की, परन्तु अब कोई विरोध करने वाला नहीं था। जो लोग विरोधी थे, वे मौजूद ही न थे। वीरोने में सोफिया पेरौव्स्काया और मैंने दल की एकता क़ायम रखने के लिए कोई ख़ास उद्योग नहीं किया था। परन्तु अब, जबकि काम करने का वक्त आगया, तब हमने विरोध नहीं किया। हमारे सेंटपीटर्सबर्ग के साथियों ने हमें दिखा दिया कि वे सब साधन, जिनके बल पर आगे के काम का उद्योग किया जाने वाला है, तैयार हैं, और अब, यह हमारे ऊपर निर्भर है कि एक जगह पड़े रहने की अपेक्षा, हम अपने प्रोग्राम को पूरा करें। लोगों की इच्छा दलबन्दी करने की थी। 'लैण्ड एण्ड फ्रीडम' पार्टी का भविष्य और उसको विभाजित कर देने का प्रश्न सामने आगया, और अन्त में पार्टी को विभाजित कर देना ही ठीक समझा गया।

दोनों ओर के प्रतिनिधि चुने गये इसलिएकि, वे ऐसा ढँग निश्चित करदें जिससे पार्टी विभाजित होजाय। उन्होंने प्रस्ताव किया कि वह प्रेस, जिस पर पार्टी का समाचार छपता है, उन लोगों के हाथ में रहे जो पुराने प्रोग्राम के समर्थक हैं। इस बात पर दोनों दल सहमत होगये। मिखेलौव की पार्टी ने तुरन्त ही प्रेस के लिए कम्पोज़ीटरों का प्रबन्ध कर लिया। एक साथी ने टाइप आदि का इन्तज़ाम कर दिया था। उन्होंने आपस में रुपया-पैसा बराबर बाँट लेने का भी निश्चय कर लिया, परन्तु उस समय वे ऐसा न कर सके। ड्मीट्रीलिज़ोगब नामका एक व्यक्ति चैकौव्स्की (Tchaikovsky) का अनुयायी था। वह बड़ा ख़ुश-हाल था। उसके ज़मीन-जायदाद भी ख़ूब थी। वह इन सब चीज़ों का पूरा अधिकार ड्रीगो (Drigo) को दे चुका था। उस पर वह पूरा

भरोसा रखता था इस बात का कि, वह ईमानदारी और उचित ढंग से उस सब जायदाद का उपयोग करेगा। उसने उसे हर एक चीज़ बेच देने और उसका रुपया 'लैण्ड एण्ड फ्रीडम' पार्टी को सौंप देने का अधिकार दे दिया। लिज़ोगब कई महीने ओडेसा में क़ैद रहा। अन्त में, चूबारोव के मामले में उसे फाँसी होगई! ड्रीगो ने विश्वासघात करके अपने आपको सरकार के हाथ बेच दिया, इस आशा से कि, वह अपने उदार और विश्वासी मित्र की सम्पत्ति से ख़ूब लाभ उठा सकेगा। एलेक्ज़ेण्डर मिखेलौव के द्वारा 'लैण्ड एण्ड फ्रीडम' पार्टी के मेम्बर ड्रीगो से रुपया-पैसा लेते थे। परन्तु ड्रीगो ने ए० मिखेलौव को कभी एक कौड़ी तक नहीं दी। वह बड़ी कठिनता से ड्रीगो के विश्वासघात का शिकार होने से बच सके।

जहाँ तक मुझे याद है वहाँ तक 'लैण्ड एण्ड फ्रीडम' के हमारे साथियों को कुछ नहीं मिला। एक और सिलसिला था, जहाँसे हमें २३ हज़ार रूबल मिलने को थे। 'मृत्यु की विजय' (Victory of Death) नामकी एक दूसरी पार्टी के मेम्बरों ने यथा समय यह रक़म हमें दे दी। वे लोग हमारे मार-काट के राजनैतिक कार्यक्रम से पूरी सहानुभूति रखते थे।

'लैण्ड एण्ड फ्रीडम' पार्टी दो दलों में बँट गई थी। यह बात आपस में तय हो चुकी थी कि इनमें से कोई दल अपने पहले नाम का उपयोग न करेगा। पहले नामसे पार्टी ने क्रान्तिकारी क्षेत्र में बड़ा नाम पैदा किया था। दोनों ओर के आदमी इस हक़ के लिए लड़ने लगे। दोनों में से एक भी झुकने को तैयार न था। जो पार्टी संगठित होकर अपना काम

कर रही थी, उसके सामान्य अधिकार दोनों ही दल अपने हाथ में जारी रखना चाहते थे। पुरानी परम्परा के समर्थकों ने, जिनका ध्यान ज़मीन के बँटवारे और किसानों के आर्थिक हितों की ओर था, अपने दल का एक विचित्र सा नाम 'ब्लैक पार्टीशन' (काला बँटवारा) रख लिया। हमने सबसे पहले राज-सत्ता को उलट कर, एक आदमी की इच्छा की जगह, सार्वजनिक आकांक्षा को स्थान दिया था। इसीलिए हमने अपने दल का नाम 'जनता की आकांक्षा' (The Will of the People) रख लिया।

'जनता की आकांक्षा'

'ब्लैक पार्टीशन' नामकी बनी हुई नई पार्टी ने अपने प्रोग्राम का ढाँचा प्रायः 'लैण्ड एण्ड फ्रीडम' के ढँग पर ही रखा और लोगों में सीधे जाकर काम करने, तथा पूँजीवादियों के विरुद्ध आर्थिक लड़ाई छेड़ देने के लिए अपने आपको सङ्गठित करने की आवश्यकता पर बहुत ज़ोर दिया। इधर हमारे दल के—'जनता की आकांक्षा' के—मेम्बर बिल्कुल नये सिद्धान्त से काम लेकर अपना प्रोग्राम पूरा करने के लिए आगे बढ़े। इस नये सिद्धान्त का आधार इस भावना पर था कि केन्द्रस्थ राज-सत्ता का प्रभाव लोगों के जीवन की प्रत्येक दिशा पर पड़े। लोगों की राय में, इस भावना ने हमारे समूचे इतिहास भर में बहुत बड़ा काम किया। पुराने ज़माने में, इस राज-सत्ता ने, प्राचीन रूस की राजनैतिक व्यवस्था में उपस्थित संयुक्त राज्य के सिद्धान्तों को बिलकुल कुचल दिया था। लोग बिल्कुल एक टैक्स अदा करने वाली जाति के रूप में परिणत कर

दिये गये थे। वे पहले ज़मीन के बन्धन में थे और बाद में व्यक्ति-गत .ग़ुलामी से जकड़ गये थे। देश में पहले तो रईसों की एक ऐसी जाति बन गई जो दूसरों की सेवा करे, परन्तु बाद में, वह ज़मींदारों की ऐसी जमात बन बैठी, जिसके ऊपर अधिकारियों के कर्त्तव्य का कोई भार ही न रहा। १८वीं शताब्दी के आरम्भ में जब यह जमात बहुत कङ्गाल हो गई और बड़े बड़े नामी रईसों के मकान बिल्कुल उजड़ गये, तब उन लोगों को, दया करके बड़ी बड़ी ख़ालसा जागीरें बख़्श दी गईं और साथ ही ख़िदमत करने के लिए बहुत से .ग़ुलाम भी दे दिये गये। बस, तभी रईस और धनी लोगों की उन बड़ी बड़ी रियासतों की नींव पड़ी, जो .ग़ुलामों के छुटकारे के समय मौजूद थीं। अब हमारे समय में, उसी राज-सत्ता ने, जिसने सन् १८६१ में .ग़ुलामों को व्यक्ति-गत .ग़ुलामी से मुक्त किया था, समूचे राष्ट्र के श्रम को दोहन करने का काम स्वयं अपने हाथ में ले लिया। इसने किसानों को भूमि का ऐसा बँटवारा करके दिया जो उनके लिए नाकाफ़ी था। इस नाकाफ़ी ज़मीन के साथ किसानों पर बेहद टैक्सों का ऐसा बोझ लादा गया, जिसमें खेत से मिली हुई उनकी सारी पैदावार चली जाती थी, और कभी कभी करों का यह बोझ, .ज़मीन की पैदावार से दोसौ फ़ीसदी या इससे भी अधिक बढ़ जाता था! इस भयानक स्थिति में देश का बहुत बड़ा बजट तैयार किया जाता था। उस बजट का ८० से ९० फ़ीसदी तक रुपया ग़रीब लोग ही देते थे। परन्तु सरकार उस बजट का कुल रुपया फ़ौज और जहाज़ी बेड़े पर, तथा उस सरकारी क़र्ज़ को अदा करने में लगाती थी, जो इन्हीं सब कामों के लिए लिया जाता था। बजट में बहुत थोड़ा-सा रुपया देश के

हित के लिए ख़र्च होता था, जिससे लोगों की सार्वजनिक शिक्षा आदि की ख़ास .जरूरतें पूरी हो सकती थीं।

इन सब बातों से यह सिद्धान्त प्रकट होता था कि जनता सरकार के लिए है, सरकार जनता के लिए नहीं। सरकार ने जनता को ऐसा चूस लिया जिसके सामने व्यक्ति-गत दोहन कुछ भी नहीं थे। परन्तु सरकार अपने इन कारनामों से सन्तुष्ट नहीं हुई, इसलिए उसने ऐसा हर तरीक़ा अख़्त्यार किया जिससे व्यक्ति-गत दोहन को उत्तेजना मिले। पुराने ज़माने में सरकार ने ज़मीदारों की एक जमात बना दी थी, अब उसने मध्य-स्थिति के लोगों का गरोह खड़ा कर देने का प्रयत्न किया। साधारण जनता के हितों की ओर ध्यान देने की अपेक्षा, उसने व्यक्ति-गत लाभ उठाने वाले, बड़े बड़े व्यवसायियों, और रेलवे के मालिकों को प्रोत्साहन दिया। प्रत्येक अर्थशास्त्री ने इस बात की जाँच करली कि .गुलामों के छुटकारे से लेकर, अब तक बीते हुए २० वर्षों में एक भी ऐसा काम नहीं किया गया जिससे जनता की आर्थिक दशा में कुछ भी सुधार होसके। आर्थिक सहायता, एकाधिकार से निश्चित मुनाफ़ा, चुङ्गी-भाड़े आदि साधनों से पूँजीपतियों को पैदा करने और उनकी आर्थिक सहायता करने में सरकार की सारी शक्ति काम में लाई जारही थी। पश्चिमी यूरुप के देशों में, केन्द्रस्थ शासन धनिकों के अस्त्र की तरह, तथा उनके प्रतिनिधि की हैसियत से काम कर रहा था और सारी राज-सत्ता उसी के हाथ में थी, परन्तु हमारे देश में केन्द्रस्थ शासन एक स्वतन्त्र ताक़त, और बहुत हद तक, इन पूँजीवादियों की श्रेणियों का उत्पादक था।

इस प्रकार आर्थिक क्षेत्र में हमारे ज़माने की सरकार, हमारी पार्टी

'विल आफ़ दी पीपुल' की नज़र में, पूँजीपतियों में सबसे बड़ी और देश के श्रम का स्वतंत्र रूप से नाश करनेवालों में मुख्य ठहरी, जो कि अपनी शक्ति, और छोटे-मोटे पूँजीपतियों को खड़ा रहने में लगाती थी। सरकार ने उस दशा में, जबकि, स्वयं जनता पर आर्थिक दृष्टि से ज़ुल्म कर रही थी, सब जातियों को बिना किसी राजनैतिक अधिकार के पंगु बना कर छोड़ दिया था। उन दिनों रूस में धार्मिक स्वतंत्रता नहीं थी, तभी तो, विभिन्न सम्प्रदायों के एक करोड़ से अधिक आदमियों को बुरी तरह से दबाया और कष्ट दिया जा रहा था। सरकारी कर सम्बन्धी, और पुलिस के अड्ड़ों ने लोगों को एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय में आन्दोलन करने के अधिकार से वञ्चित कर दिया था। निःशुल्क शिक्षा के अभाव ने उन्हें ज़बर्दस्ती मूर्ख बना रखा था। लोगों के पास ऐसा कोई साधन नहीं था जिससे वे सरकार को अपनी ज़रूरतें बतला सकते, क्योंकि अर्ज़ी देने तक का उन्हें कोई अधिकार नहीं था। असल में सब से बड़ी बात यह है कि हर बात में देश का सारा जीवन शासन की स्वेच्छाचारी और निरंकुश सनक के अधीन था। समाज के पास, सरकार पर, और उसके द्वारा जीवन पर, प्रभाव डालने के लिए केवल एक ही साधन है—साहित्य और प्रेस। यह दोनों ही चीज़ें बिल्कुल दबा दी गई थीं। एक ऐसे देश में, जहाँ वैज्ञानिक खोज करने, अथवा भाषण देने की आज़ादी न हो, वहाँ प्रेस का क्या मूल्य हो सकता है? सबसे अच्छे वैज्ञानिकों, अथवा प्रेस के प्रतिनिधियों को निर्वासित किया जा चुका था। जो लोग जेल जा चुके थे, उन्हें अब पुलिस की निगरानी में रहना पड़ता था। विद्यार्थियों के रूप में, समाज का एक छोटा सा अङ्ग, कमेटी

आदि बनाने के अपने अधिकार से वञ्चित कर दिया गया था। विद्यार्थियों पर पुलिस बहुत पास से निगरानी रखती थी।

किसी भी उद्योग से, वर्त्तमान स्थिति में परिवर्त्तन करने के लिए, या तो हृदय की भावनाओं के विरुद्ध काम करना पड़ता था, या फिर, ज़ुल्म सहने पड़ते थे। जब युवक साधारण जनता में शान्तिमय ढँग से प्रचार का काम करने लगे तब सरकार ने उन्हें गिरफ्तार किया, और जेल में बन्द कर दिया, या साइबेरिया में निर्वासित कर दिया। इससे रूसी युवक आपे से बाहर हो उठे और उन्होंने सरकार के कुछ आदमियों को सज़ा दी। सरकार ने इसका जवाब फ़ौजी शासन और फाँसियों से दिया। सन् १८७८ के मध्य से १८७९ तक रूस में १८ राजनैतिक अपराधियों को फाँसी दे दी गई! इस दशा में, सरकारी मशीन एक ऐसे देवता की तरह थी, जिस पर, जनता का आर्थिक हित, नागरिकता के अधिकार और मनुष्यता आदि सभी चीज़ें बलि चढ़ा दी गई थीं!

रूसी जीवन के स्वामी के रूप में, यह राज-सत्ता थी, जो बड़ी भारी पल्टन और शक्तिशाली शासन के बल पर अपनी रक्षा कर रही थी। 'जनता की आकांक्षा' नाम के क्रान्तिकारी दल ने इसी राज-सत्ता के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यही सरकार जनता का सबसे बड़ा दुश्मन थी। अब ज़रूरत इस बात की पड़ी कि क्रान्तिकारी आन्दोलन का रूप बदल दिया जाय। इस काम के लिए यह सोचा गया कि क्रान्तिकारी दल का केन्द्र देहात से हटा कर शहर में ले जाया जाय। सार्वजनिक विद्रोह के लिए नहीं, बल्कि षड़यन्त्र द्वारा उच्च अधिकारियों

का नाश कर, उनकी जगह ख़ुद अधिकारी बन बैठने के लिए। इन सब बातों से क्रान्तिकारी क्षेत्र में बड़ा ज़बर्दस्त परिवर्त्तन होगया। इन विचारों ने, पहले के क्रान्तिकारी विचारों को दबा दिया और दल के साम्य-वादी तथा केन्द्रस्थ शासन की परम्परा समाप्त होगई, और पहली दशाब्दी में क्रान्तिकारी कामों का जो सिलसिला बन चुका था, वह अब बिल्कुल टूट गया। इसलिए इसमें कोई ताज्जुब नहीं कि क्रान्तिकारी क्षेत्र में विरोध को दबाने और पुराने विचारों को हटाकर, मुख्यतया नये विचारों की सत्ता जमाने के लिए, दल को एक वर्ष से अधिक समय तक अथक उद्योग करना पड़ा। जब पार्टी का वह मुखपत्र निकला, जो पहले कभी एकतंत्र सत्ता के गीत गाता था, तब लोग असन्तुष्ट हुए। परन्तु अब उसी पत्र ने निकलते ही घोषणा कर दी कि ज़ारशाही का अन्त हो रहा है! इस पर सब लोगों में पहली मार्च सन् १८८१ को हर्ष का पारावार उमड़ उठा इसलिएकि, एलेक्ज़ेंण्डर द्वितीय की हत्या हुई थी।

सबसे पहले हमने अपने कार्यक्रम में यह निश्चय किया कि हम "प्रजातंत्रवादी साम्यवादी" हैं। पहले के नाम में हमारे पुराने कार्यक्षेत्र का भी नाम बना रहा, और यह भी प्रकट होगया कि हमने अब जो नई पार्टी बनाई है, वह केवल राजनैतिक नहीं है, और न, राजनैतिक सफलता प्राप्त करना उसका एकमात्र उद्देश ही है। लोगों तक पहुँचने और उनकी उन्नति तथा आवश्यकताओं का, स्वतन्त्रता के वायुमण्डल द्वारा राजमार्ग खोल देने का यह एक साधन है। साम्यवादी दृष्टि से हमारा उद्देश यह होगया कि आर्थिक क्षेत्र की सबसे उपयोगी चीज़, उपज और ज़मीन, किसान-सङ्घ के हाथ में पहुँच जाय और राजनैतिक

क्षेत्र में एकतन्त्र अधिकार की जगह, प्रजातन्त्र राज्य स्थापित होजाय। इन सब बातों को पूरा करने और वर्त्तमान शासन-पद्धति को मिटाने के लिए हिंसात्मक क्रान्ति का केवल एक ही साधन था। इससे फिर, हम सार्वजनिक मत से अपने सामाजिक ढाँचे को, अपनी सभ्यता और परम्परा के अनुसार बना सकते थे। ज़मींदार और पादरी के रूप में ज़ारशाही के दो मुख्य आधार थे, और यह तीनों ही, एक दूसरे के जीवन-मरण के साथी थे।

कार्य्यकारिणी कमेटी

अपने शक्तिशाली शत्रु से युद्ध करने के लिए, हमने पार्टी को सङ्गठित करने का ढाँचा समस्त देश-व्यापी ढँग पर बनाया। देश भर में गुप्त-समितियों और पार्टी के सदस्यों के छोटे छोटे दलों का जाल फैला दिया गया। कुछ लोग किसी ख़ास जगह में ऐसे काम में लग जाते, जो आम-तौर पर क्रान्तिकारी ढँग का हो। दूसरे आदमी किसी विशेष उद्देश से अपने लिए किसी भी तरह का काम चुन लेते। क्रान्तिकारियों के इस जाल का एक केन्द्र था कार्य्यकारिणी कमेटी में। इसी केन्द्र के द्वारा सब लोग एक सूत्र में बँध गये। स्थानीय दल इसी कमेटी का हुक्म बजा लाने, और ज़रूरत पड़ने पर इसे अपनी सारी शक्तियाँ अर्पण कर देने को बाध्य थे। पार्टी के, तथा रूस भर के सब काम इसी केन्द्रस्थ कार्य्य-कारिणी कमेटी की देख-रेख में होने लगे। विद्रोह के समय, यही कमेटी पार्टी की सब शक्तियों को रास्ता बताती, और क्रान्तिकारी कामों के लिए उन्हें बुलाकर इकट्ठा कर सकती थी। परन्तु ऐसे समय के आने तक, इसका ध्यान एक ऐसे षड्यंत्र की रचना करने में लग रहा था, जो एक

ऐसी क्रान्ति की सम्भावना पैदा करदे, जिसके सहारे सरकार, ज़ारशाही से छीनकर जनता के हाथों में सौंपी जा सके। पार्टी की शक्तियाँ प्रायः इसी दिशा में लग रही थीं। बाद में मार-काट करने वाले दल का जो नाम पड़ा, वह बड़ा विचित्र था। इसके प्रत्यक्ष रूप में होने वाले कामों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित हुआ, और इसीसे उसने दल का ऐसा विचित्र नाम रख दिया।

पार्टी का यह उद्देश कदापि न था कि वह अपने लिए मार-काट करे। यह साधन तो केवल आत्म-रक्षा के लिए था, जो आन्दोलन के लिए बड़ा ज़बर्दस्त हथियार समझा जाता था और केवल उसी काम में इसका प्रयोग किया जाता था जिसके पूरा करने में पार्टी लग रही थी। इस काम में ज़ार की हत्या पहली बात थी। सन् १८७९ के अन्त में, हमारे सारे प्रोग्राम में मार-काट की बात ही ख़ास थी। इसीसे ज़ार को हत्या और आम तौर पर मार-काट जारी कर देने का ख़याल पैदा हुआ। इस इच्छा ने कि अब आगे ऐसी प्रतिक्रिया न बढ़े, जिसने हमारे सङ्गठन के काम में रुकावट डाली थी, और जल्दी से जल्दी काम शुरू कर देने की भावना ने हमें पार्टी की कार्य्यकारिणी कमेटी बनाने को प्रेरित किया। फिर कार्य्य-कारिणी ने ही यह निश्चय किया कि एक ही समय में चार स्थानों पर ज़ार को मार डालने का उद्योग किया जाय। साथ ही, कमेटी के मेम्बर पढ़े-लिखे और श्रमजीवी लोगों में व्यावहारिक रूप से प्रचार कर रहे थे। ज़ैल्याबौव खारकौव में प्रचार कर रहे थे और कौलौड्कैविच और मैं ओडेसा में। कुछ लोग मास्को, कौर्बा और सेंटपीटर्सबर्ग में काम कर रहे थे। प्रचार और सङ्गठन का काम सदा मार-काट के काम के साथ ही साथ

होता था। यह काम गुप्त रूप से होता था, परन्तु इसका फलना-फूलना भाग्य में नहीं बदा था।

जो बातें सरकार के विरुद्ध थीं, उनको मिलाकर सरकार के ख़िलाफ़ एक षड़यंत्र की रचना करते हुए, पार्टी यह अच्छी तरह जानती थी कि सरकार को उलटते समय, किसानों के विद्रोह से कितनी सहायता मिलेगी। इसके अनुसार पार्टी ने जनता में काम करने के लिए एक क्षेत्र नियत कर लिया, और जो व्यक्ति इस क्षेत्र में काम करना चाहता था, उसे वह अपना स्वाभाविक मित्र समझती थी।

कार्य्यकारिणी कमेटी के वे सब नियमोपनियम, जिनके अनुसार हमें काम करना पड़ता था, उन लोगों ने बनाये थे, जिन्होंने कि लिपेट्स्क में कांग्रेस की थी। कमेटी के विधान में यह सब बातें थीं:—

"प्रत्येक सदस्य को पारिवारिक बन्धन, व्यक्तिगत सहानुभूति, प्रेम और मित्रता को भुलाकर, अपनी सारी मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति क्रान्तिकारी काम में लगानी पड़ेगी। यदि ज़रूरत हो, तो, बिना किसी बात का ख़याल किये प्रत्येक मेम्बर को अपनी जान भी दे डालनी पड़ेगी। कोई आदमी व्यक्ति-गत सम्पत्ति न रखेगा, और न कोई चीज़ ऐसी रखेगा, जिसमें आम तौर पर पार्टी का हिस्सा न हो। हर एक आदमी अपने आपको बिल्कुल गुप्त समिति के काम में लगा देगा और अपनी व्यक्ति-गत आकांक्षाओं को छोड़ देगा, और बहुमत से पार्टी के जो आर्डिनेंस निकलेंगे उन्हें मानने को बाध्य होगा। पार्टी की स्कीमों, प्रस्तावों, आदमियों, और सब मामलों के सम्बन्ध में सब बातों को गुप्त रखना पड़ेगा। कोई आदमी प्राइवेट, सामाजिक ढँग के, या अधिकारियों के कामों और

घोषणाओं में अपने आपको कार्य्यकारिणी कमेटी का मेम्बर नहीं, बल्कि उसका एजेंट बतावे। जो आदमी पार्टी से अलग हो वह इसके सब मामलों को गुप्त रखे और उन बातों को क़तई ज़ाहिर न करे, जो उसकी आँखों के सामने हुई हैं, या जिनमें उसने भाग लिया है।"

यह बातें सचमुच बहुत बड़ी हैं। परन्तु जिस आदमी के हृदय में क्रान्तिकारी आग जल रही थी, उसने बड़ी आसानी से यह बातें पूरी कर दिखाईं उस भावना के साथ, जो विघ्न-बाधाओं की पर्वा न कर, तथा अपने पीछे और दाएँ-बाएँ भी न देखकर, सदा आगे बढ़ती है। यदि यह बातें कम ज़रूरी होतीं, यदि इनसे हृदय की आग इतनी गहरी न उभड़ती, तो यह हमें कभी सन्तुष्ट ही न कर सकतीं। परन्तु अब, उनकी कड़ी और ऊँची प्रवृत्ति ने हमें ऊँचा उठा दिया और हमें छोटे-मोटे या व्यक्ति-गत ख़यालों से बिलकुल मुक्त कर दिया। हममें से हर एक का यह ख़याल था कि हमारे अन्दर सचमुच एक आदर्श है। यह आदर्श तो रहना ही चाहिए।

९

क्रान्तिकारी उद्योग

ब सिद्धान्तों को अमल में लाने और पार्टी के सङ्गठन का काम पूरा होचुका, तब कमेटी व्यावहारिक काम पर आई। उसने निश्चय किया कि एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय के क्रीमिया से लौटते समय, तीन अलग अलग स्थानों में उसके मारने का उद्योग किया जाय। तुरन्त ही मास्को, खारकौव, और औडेसा जाने के लिए तीन आदमी नियुक्त कर दिये गये। प्रत्येक स्थान पर, डाइनामाइट ही एक ऐसी नाशक चीज़ थी, जिसका इस्तैमाल किया जाने वाला था। उसी समय सेंटपीटर्सबर्ग में कमेटी, विण्टर पैलेस में एक धड़ाका करने की तैयारियाँ कर रही थी। यह बात बहुत गुप्त रखी गई थी। इस काम का प्रबन्ध एक कमीशन के हाथ में था। इस कमीशन में वे तीन आदमी थे, जो, कमेटी ने अपने मेम्बरों में से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मामलों के लिए चुने थे।

इन सब कामों पर मैंने अपनी स्वीकृति तो दे दी थी, किन्तु यह विचार मेरे लिए असहनीय था कि मैं अपने ऊपर केवल नैतिक ज़िम्मे-

दारी ही रखूँ, और व्यावहारिक रूप से, उन कामों के करने में भाग न लूँ, जिनके लिए मेरे साथियों को, भारी भारी सज़ाएँ देकर धमकाया जाता था। मैंने पार्टी को यह समझाने का बहुत उद्योग किया कि उसकी स्कीमों को पूरा करने के लिए मुझे भी व्यावहारिक रूप से काम करने दिया जाय। इस पर मेरे सन्तोष के लिए, रियायत करके, उन्होंने डाइनामाइट लेकर मुझे ओडेसा भेज दिया। पार्टी की इजाज़त से, उसी-के कामों के लिए आवश्यक ठहरने का स्थान ठीक करने को, मैंने अपनी बहिन ईव्जीनिया से कहा कि वह सेंटपीटर्सबर्ग आकर मेरी जगह ले ले। इसके थोड़े ही दिन पहले वह स्याज़ाँ प्रान्त से आकर, पौबैरैस्काया नामसे सेंटपीटर्सबर्ग में रहने लगी। गर्मी के दिन उसने स्याज़ाँ में बिताये थे। इस बात का ख़याल न करके कि, अनुभव न होने के कारण मेरी बहिन ने बहुत से आदमियों को अपने नये नामका परिचय दे दिया, मैंने सलाह दी कि उसे उसी पासपोर्ट में क्याट्कौव्स्की के साथ रहने को भेज दिया जाय। यह एलेक्ज़ेण्डर वासलीयेविच के दुर्भाग्य का अप्रत्यक्ष कारण था।

कालिज की बोगैास्लाव्स्काया नामकी एक लड़की ने, जो उसके भावी पति ने दोषी ठहरायी थी, कह दिया कि मेरे पास पुलिस को जिस मासिक पत्र की प्रतियाँ मिली हैं, वे मुझे पौबैरैस्काया ने दी थीं। शहर के टाउनहाल आदि में तलाशी लेने के बाद, २४ नवम्बर सन् १८७९ को ईव्जीनिया और क्याट्कौवस्की पकड़े गये। सन् १८८० में क्याट्कौव्स्की को फाँसी होगई और ईव्जीनिया निर्वासित करके साइ-बेरिया भेज दी गई। मकान में पुलिस को डाइनामाइट और काग़ज़

का एक ऐसा टुकड़ा मिला, जिसे अचानक गिरफ़्तार होजाने के कारण क्याट्कौवस्की जला नहीं सका था, और मसल कर उसने एक कोने में फेंक दिया था। पुलिस वालों ने काग़ज़ का वह टुकड़ा उठा लिया, परन्तु वे उसका मतलब नहीं समझ सके। काग़ज़ पर एक ढाँचा और एक जगह काटने का चिह्न बना हुआ था। वही काग़ज़ का टुकड़ा क्याट्कौव्स्की की जान का ग्राहक बन बैठा। ९ फ़रवरी सन् १८८० को विण्टर पैलेस में हुए धड़ाके के बाद, पुलिस ने ढूँढ़ निकाला कि उक्त काग़ज़ का ढाँचा इसी भवन का था, और भोजनालय के कमरे के ऊपर कटा हुआ चिह्न बना दिया गया था। यही कमरा विस्फोट के लिए चुना गया था इसलिए कि, सारा शाही परिवार यहीं आकर इकट्ठा होता था।

जितने डाइनामाइट की ज़रूरत थी, उतना लेकर, मैं शायद सितम्बर के आरम्भ में ओडेसा गई। वहाँ मुझे केवल निकोलाई इवानेविच किबैलकिक मिल गये। उन्होंने मुझसे कहा कि पार्टी के कामों के लिए तुरन्त ही एक मकान का इन्तज़ाम करना चाहिए। मकान ऐसा हो, जहाँ मीटिङ्ग और विस्फोटक पदार्थों के प्रयोग कर सकें, तथा विस्फोट के लिए आवश्यक सामान जमा कर सकें। थोड़े दिन के बाद हमें एक अच्छा मकान मिल गया। वहाँ हम सब साथ ही बस गये। मैंने अपना नाम इवानिट्स्की रख लिया। यहाँ हमारे पास तीन आदमी और आगये। हमारा मकान ऐसा था जहाँ आम सभा की जाती थी। सब कान्फ्रेंसें वहीं हुईं। वहाँ डाइनामाइट जमा रहता था और अनेक विस्फोटक पदार्थ तैयार किये जाते थे। अनेक प्रकार के औज़ारों के साथ प्रयोग किये जाते थे। यह सब काम वहाँ किबैलकिक की निगरानी में हो रहा

था, परन्तु अक्सर इसमें और लोग भी काफ़ी सहायता करते थे, जिनमें मैं भी शामिल थी। रेल की पटरी के नीचे डाइनामाइट बिछाकर, रेलों को उड़ाने की स्कीम भी हमारे सामने थी। यह तरकीब सोची गई कि ओडेसा के आस-पास रात में रेल की पटरी के नीचे, एक के बाद दूसरी गाड़ी छूटने के बाद, बीच-बीच में, हम डाइनामाइट बिछा दें, जिससे बाद में खेत में एक तार रखा जा सके। परन्तु इस काम की तैयारी, और उसके पूरा करने में बड़ी असुविधा और कठिनाई हुई। हमने निश्चय किया कि सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि हममें से एक आदमी रेल की पटरी का इन्स्पेक्टर बन जाय, और वह अपनी जाँच की जगह से ज़मीन के नीचे एक तरह का बम रख दे। काम का वक्त बताने के लिए इससे अधिक निश्चित और सुविधा का मार्ग नहीं सोचा जा सका। ऐसी जगह ले लेने का काम मैंने अपने ही ऊपर ले लिया। यदि इसमें मुझे सफलता मिले, तो, निश्चय हुआ कि फ्रौलैनको उस जगह को ले ले, और लैबैडैवा उसकी स्त्री बन कर रहे, जिससे वह विवाहित मालूम पड़े। तहकीक़ात के बाद मैंने गवर्नर जेनरल काउण्ट टौटलबैन के दामाद बैरन् को दरख़्वास्त दी, और उसपर उन्होंने सिफ़ारिश लिख दी। इस समय क़ायदे के मुताबिक़ मैं मखमल की पोशाक पहन कर रेलवे-सुपरिन्टेन्डेन्ट के यहाँ दरख़्वास्त देने के लिए गई। वहाँ मेरे साथ बहुत अच्छा बर्त्ताव हुआ और मुझसे कहा गया कि उम्मेदवार को दूसरे दिन अपने साथ लाऊँ। मैंने फ्रौलैनको का नाम बदल कर, उसे सीमेंन एलेक्ज़ाण्ड्रौव के नाम से ओडेसा से आठ मील दूर, निलियाकौव में जगह दिलवा दी। वहाँ वह टैटियाना इवानौव्ना लैबीडेवा को अपनी स्त्री बनाकर ले गया। वहाँ गोल्डैनबर्ग ने आकर यह

कहा कि अब ज़ार यहाँ न आकर, मास्को-कुर्स्क रेल-रोड पर होकर निकलेगा, इसलिए निलियाकौव का डाइनामाइट मास्को-टूल के पास पहुँचा दिया गया। गोल्डैनबर्ग पकड़ा गया और फ्रौलैनको और लैबीडेवा भी ओडैसा का प्रदेश छोड़ कर चले गये। बाद को हमें पता चला कि शाही ट्रेन खारकौव में होकर सही-सलामत निकल गई और एलेक्ज़ाण्ड्रौव्स्क में जो धड़ाका होने वाला था, वह इस कारण नहीं हुआ कि सब प्रबन्ध ठीक होते हुए भी, विस्फोटक पदार्थों में बिजली द्वारा ठीक समय पर चिनगारी न लग सकी। मास्को-कुर्स्क रेल-रोड पर भी रेल उड़ाने के लिए हमारा प्रबन्ध था। दो शाही गाड़ियाँ १६ नवम्बर को वहाँ होकर निकलीं, जहाँ डाइनामाइट लगा हुआ था। पहली ट्रेन में ज़ार था, लेकिन दुर्भाग्य से, स्टीपैन शिरियायेव बिजली जगाने के लिए पहले सिगनल पर न पहुँच सका, इसलिए दूसरी ट्रेन, जिसमें दरबारी आदि थे, उड़ा दी गई और पहली ट्रेन साफ़ बच गई। यह बात बुरी ज़रूर हुई, किन्तु इसका असर यूरुप भर में—ख़ास कर रूस में—बहुत पड़ा।

अब दमन की बारी आई। क्याट्कौव्स्की और शिरियायेव मार डाले गये! हमारी पार्टी का छापाखाना भी नष्ट कर दिया गया, परन्तु उसके अधिकारी बड़ी बहादुरी के साथ लड़े। दिसम्बर में किबैलकिक ओडैसा से चला गया और जनवरी में कौलोड्केविच प्रभावशाली मेम्बरों को साथ लेकर चला गया। यहाँ के सारे काम का भार मुझ पर, या कुछ दूसरे अप्रसिद्ध आदमियों पर आ पड़ा।

मेरा काम प्रचार करने का था। तीन महीने तक, मुझे अधिकतर घर ही में छिप कर काम करना पड़ा। इससे मैं बाहरी आदमियों से

मिल-जुल न सकी और न अधिक महत्त्वपूर्ण कामों में भाग ही ले सकी। मेरे साथी अयोग्य थे, इस कारण विवश होकर वे मुझे छोड़ देने पड़े।

अब मैंने अपना मेल-जोल ख़ूब बढ़ाया। यहाँ तक कि मेरी मित्रता बड़े और छोटे सब तरह के आदमियों से होगई। उनमें प्रोफ़ेसर, सेनापति, ज़मींदार, विद्यार्थी, डाक्टर, सरकारी अधिकारी, श्रमजीवी आदि सभी दर्जे के लोग शामिल थे। जहाँ मौक़ा मिलता था, वहीं मैं क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करती और अपनी पार्टी के कामों का समर्थन करती थी। मेरा मुख्य कार्यक्षेत्र नवयुवकों में था, क्योंकि स्वभावतः वे जोशीले और सच्चे होते थे।

विण्टर-पैलेस में धड़ाका

सेंटपीटर्सबर्ग में भी काम जारी था। कमेटी के प्रोग्राम में यह भी शामिल था कि यहाँ भी धड़ाका किया जाय। हमें मास्को, एलेक्ज़ाण्ड्रौव्स्की और ओडेसा की कार्रवाइयों से भी काफ़ी बल मिल चुका था।

हमारी पार्टी का एक मेम्बर स्टीपैन हैल्ट्यूरिन था। वह बहुत पढ़ा-लिखा और समझदार था। फ़र्नीचर बनाने का उसका पेशा था। हमारे उद्योग से विण्टरपैलेस में उसे काम करने को मिल गया। हमारा उद्देश यह था कि वह एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय की हत्या कर डाले। हैल्ट्यूरिन शाही महल के कमरों और वहाँ की सारी स्थिति से ख़ूब परिचित होगया। वहाँ के नौकरों का वह मित्र बन गया और पुलिस-जमादार उससे ख़ास तौर पर ख़ुश रहने लगा इसलिए कि, वह उसे अपनी लड़की के लिए उपयुक्त वर समझता था। शाही नौकर-चाकर तथा ख़ुद हैल्ट्यूरिन महल के सबसे नीचे के हिस्से में रहते थे।

हैल्ट्यूरिन ने महल की देख-भाल कर ही ली थी। अब उसने एक बक्स में डाइनामाइट भरना शुरू किया और अपना काम करने का निश्चय कर लिया।

५ फ़रवरी सन् १८८० को बैटिनबर्ग का राजकुमार आने वाला था। उसके सम्मान में शाही महल में एक दावत होने वाली थी। हैल्ट्यूरिन ने यही मौक़ा उपयुक्त समझा, क्योंकि सारा राज-परिवार उस भोज में शामिल होने को था। भोज की तैयारी के वक्त उसने डाइनामाइट सुलगा दिया। इस समय शाही परिवार भोजन के कमरे में घुस ही रहा था। डाइनामाइट की कमी पड़ी। महल के नीचे से डाइनामाइट का जो धड़ाका हुआ, उससे उसके ऊपर का हिस्सा नष्ट होगया, परन्तु भोजन का कमरा, जो और भी ऊपर था, साफ़ बच गया और राज-परिवार के लोगों पर आँच भी न आई! इतना ज़रूर हुआ कि उस कमरे का फ़र्श धक्के से बहुत हिला और मेज पर रखी हुई तश्तरियाँ वग़ैरह सब गिर पड़ीं!

इस घटना के बाद ही ज़ार ने लौरिस मैलीकौव को डिक्टेटर बना दिया। उसपर भी एक क्रान्तिकारी ने गोली चलाई, पर वह पकड़ा गया और तीन-चार दिन बाद उसे फाँसी दे दी गई! फाँसी पर चढ़ते वक्त उस वीर के चेहरे पर बड़ी अद्भुत मुस्कुराहट थी!

समाज के समझदार आदमियों ने हमारे कामों की बड़ी सराहना की। उन्होंने यही नहीं किया, बल्कि हमारे कामों पर अपनी सहमति की मुहर लगा दी। लोगों से हमें आर्थिक सहायता भी ख़ूब मिली। इस दशा में यह कहना अनुचित न होगा कि हम जनता के सच्चे

प्रतिनिधि की हैसियत से अपना क्रान्तिकारी काम चला सकते थे। अदालतों में अब सरकारी वकील भी यह कहने लगे कि जनता क्रान्तिकारियों को सहायता देती है। हमारा आन्दोलन देश-व्यापी असन्तोष पर आधारित था, अब उसे नष्ट करना असम्भव होगया। यह आन्दोलन तभी बन्द हो सकता था जब जनता की माँगें पूरी करदी जातीं और चारों ओर असन्तोष की जगह सन्तोष फैल जाता।

मार्च या अप्रैल सन् १८८० में दो आदमी ओडेसा में मेरे पास कमेटी का हुक्म लाये कि सम्भवतः ज़ार गर्मियों में क्रीमिया को यहाँ होकर जायँगे, इसलिए धड़ाके का प्रबन्ध यहीं होना चाहिए। इधर मैं पैन्यूटिन की हत्या के उद्योग में लग रही थी। यह गवर्नर-जनरल का दायाँ हाथ था और सरकार के भीतरी मामलों में इसीका हाथ था। प्रजा इसको बड़ा ज़ालिम समझती थी। उसने शहर से क्रान्तिकारियों को नेस्तनाबूद करदेने का बीड़ा उठा रखा था। वह अध्यापक, लेखक, विद्यार्थी, अधिकारी, मज़दूरों आदि को पकड़वा कर निर्वासित कर देता, अथवा उनपर बड़े पाशविक अत्याचार करता था। जो लोग पकड़ जाते थे उनके सम्बन्धियों, और स्त्रियों के साथ भी, सैक्रेटरियेट में वह बहुत ही अपमान-जनक बर्त्ताव करता था। एक दिन एक क़ैदी की रोती हुई गर्भवती स्त्री से कहने लगा—यहाँ से भाग, क्या यहीं बच्चा पैदा कर देगी ?

मैंने पैन्यूटिन को मारने का पूरा इन्तज़ाम कर लिया था। उसके मारने वाला, दिन और समय भी नियत कर दिया था। परन्तु कमेटी के हुक्म के मुताबिक़ मुझे अपना यह प्रोग्राम छोड़ देना पड़ा।

सैबिलिन और पैरोव्स्काया, यही दो व्यक्ति कमेटी का हुक्म लाये थे। उनके पास ज़ार पर आक्रमण करने का यह प्रोग्राम था कि यह दोनों एक दुकान लेकर व्यापार करें, तथा स्वामी और स्त्री बन कर रहें। जिस सड़क पर होकर ज़ार निकले, उसके नीचे डाइनामाइट लगा दिया जावे। इस काम की निगरानी के लिए बाद में इज़ाइयैव नामका एक दूसरा आदमी भी आगया।

दुकान किराये पर ले ली गई और काम शुरू होगया। सड़क के नीचे डाइनामाइट रखने का इन्तज़ाम भी होगया। इज़ाइयैव की ग़लती से, डाइनामाइट रखने का इन्तज़ाम करते वक्त उसकी तीन उँगलियाँ उड़ गईं और उसे अस्पताल जाना पड़ा। इस डर से कि, ज़ार के निकलने के रास्ते में मकानों की तलाशी ली जायगी, सब सामान मेरे मकान पर पहुँचा दिया गया। उसी समय यह ख़बर हुई कि शायद ज़ार आवेंगे ही नहीं, इसीलिए हमारे पास काम बन्द कर देने के लिए कमेटी का हुक्म भी आगया। हमने इस सामान का उपयोग करने के लिए गवर्नरजनरल टॅाटिलबैन को उड़ा देने की इजाज़त माँगी। परन्तु कमेटी ने यह कह कर हमारी प्रार्थना को मंज़ूर नहीं किया कि उड़ाने का तरीक़ा केवल ज़ार ही के लिए सुरक्षित रखा गया है। परन्तु कमेटी ने यह इजाज़त दे दी कि टॅाटिलबैन को किसी और तरह से ख़त्म कर दिया जाय।

इसके बाद मैं और सैबलिन, गवर्नरजनरल की रहन-सहन, उठना-बैठना, इधर-उधर आना-जाना आदि बातों पर निगाह रखने लगे। इस कारण कि, वह क्रान्तिकारियों के ख़ून का प्यासा था, और हमारे

बहुत से साथियों का ख़ून कर चुका था, इसका बदला लेने के लिए हम भी, उसके ख़ून के प्यासे थे ! हमारे पास डाइनामाइट के सिवा और कोई चीज़ न थी, और डाइनामाइट का उपयोग करना कमेटी ने रोक दिया था। इधर गवर्नरजनरल का तबादिला होगया, इसी कारण हम उसे मार न पाये। पर साथ ही यह निश्चय कर लिया कि एक के बाद दूसरा जो कोई गवर्नरजनरल आवे, उसीको, हम मार डालेंगे, जिससे कि वह ओहदा ही ख़त्म होजाय ! न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी !

गवर्नरजनरल के चले जाने के बाद वह दुकान तोड़ दी गई और सब लोग यहाँ से चले गये। आगे चल कर मैं जुलाई में सेंटपीटर्सबर्ग चली गई और मेरी जगह ट्रिगोनी ओडेसा आगये।

सेंटपीटर्सबर्ग में ज़ार की हत्या के लिए इन्तज़ाम होरहा था, और यह मामला हमारी पार्टी के कार्य्य-भारी कमीशन के हाथ में पहुँच गया था।

१०
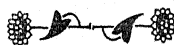
सैनिक-सङ्गठन

सन् १८८० के अन्त, और सन् १८८१ के आरम्भ का, पार्टी के बड़े ज़ोरों से प्रचार और सङ्गठन के काम का समय था। इसी ज़माने में प्रान्तों के साथ काम करने का क्षेत्र और भी विस्तृत होगया। स्थानीय दल पहले की अपेक्षा अधिक सङ्गठित होगये और विभिन्न स्थानों में कार्य्यक्रम अधिकाधिक दृढ़ता के साथ अमल में लाया जाने लगा। कमेटी के एजेंट देश भर में पहले ही से चुनी हुई जगहों पर घूमा करते थे, परन्तु उनके रहने के सदर-मुक़ाम उन स्थानों पर होते थे जो क्रान्तिकारी दृष्टि से साम्राज्य भर के, मुख्य केन्द्र थे। हमारी पार्टी के मुखपत्र की ग्राहक-संख्या बहुत बढ़ गई, और हमारी कमेटी के प्रोग्राम ने जनता को आकर्षित कर लिया। देश भर से कमेटी में प्रतिनिधि आने लगे। वे कमेटी के आदेशानुसार काम करने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित करने लगे और यह ज़ोर डालने लगे कि हमारे आदमी जाकर स्थानीय दलों को सङ्गठित कर दें। कमेटी ने इस अवसर को हाथ से नहीं जाने दिया, क्योंकि अब वह समय आगया था, जबकि वह अपने श्रम और आत्म-

त्याग के फल लगते हुए देखती। अब सब लोगों की यही अकांक्षा थी कि सङ्गठित रूप से सरकार से खुलकर लोहा लिया जाय। सब लोगों के हृदय में वीरता के अंकुर जम गये और इस सैनिक-कार्य्यक्रम ने राष्ट्र की ज़बर्दस्त शक्तियों को अपनी ओर खींच लिया, यहाँ तक हुआ कि लोगों के दिल से मृत्यु का डर भी जाता रहा। ख़ास सेंटपीटर्सबर्ग में सब काम बड़ी सरगर्मी से होरहा था। लौरिस मेलिकौव की ज़ुल्म-ज़्यादतियों और सिपाहियों के साथ लड़ाइयों ने हमारा कार्य्यक्षेत्र ऐसा विस्तृत बना दिया, जिसमें हमें यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों और मज़दूरों में काम करने का ख़ूब मौक़ा मिला। सन् १८७० के बाद हमारे जो उद्योग विफल हुए थे, उनसे लोगों में बड़ा असन्तोष फैल गया था। परन्तु अब नई नई आशाओं के प्रभाव से हम यह अनुभव करने लगे थे कि रूस के युवकों का रक्त व्यर्थ तो कभी बहा ही नहीं। मेलिकौव की नीति को सब समझते थे। उसने किसीको धोखा नहीं दिया। अब लोक-मत की यह माँग ज़ोर पकड़ गई कि ज़ार की हत्या ज़रूर कर दी जाय, और साथ ही, मेलिकौव भी न छोड़ा जाय, क्योंकि वह दिखाने को उदार बनता था, पर कहता कुछ था, और करता कुछ। कमेटी का वैज्ञानिक विभाग बम के प्रयोग को सफल बनाने के उद्योग में लग रहा था।

इन ज्वलन्त कृतियों के समय, कमेटी ने अपना सैनिक-विभाग स्थापित किया। क्रौन्स्टाट में रहने-वाले नौसेना के अफ़सरों से कमेटी ने लेफ्टिनेंट सुखानौव के द्वारा, और सेंटपीटर्सबर्ग के तोपखाने की पल्टन से डिगाइयैव के द्वारा अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया। डिगाइयैव क्रौंस्टाट के क़िले में तोपखाने में, और तोपखाने के विद्यालय में काम कर चुका

था। अपने राजनैतिक विचारों के कारण वह वहाँ से अलग कर दिया गया।

वास्तव में उस समय, जीवन का प्रवाह कुछ ऐसा बह रहा था कि सामयिक घटनाएँ शाही फ़ौजों पर अपना कुछ न कुछ प्रभाव डाले बिना रह नहीं सकती थीं। उस समय का साहित्य, जो जनता की ओर से स्वयं अपील कर रहा था, युवक-आन्दोलन, जिसका मार्मिक चित्र दिलों को फाड़ डालता था, राजनैतिक मुक़द्मे और उनकी अनुचित और पाशविक सज़ाएँ, रूस भर के शहरों की गिरफ़्तारियाँ, सरकार के दमन-चक्र की भीषण मार-काट आदि बातों ने रूस के लोक-मत में आग लगा दी थी। यह असम्भव था कि, फ़ौजी दायरे के बाहर होने-वाली इन सब बातों का प्रभाव फ़ौजों और नौसेना पर न पड़ता। असल में बात यह थी कि सन् १८७८ में क्रौंस्टाट में नौसेना में भी एक सङ्गठित दल क्रान्तिकारी प्रचार के लिए मौजूद था। रूस और टर्की की लड़ाई तथा ग़ुलाम बल्गेरिया के आज़ाद होजाने से भी फ़ौजों पर असर पड़ा था। दिन-दहाड़े जान-बूझ कर सरकार की ओर से जनता को लूटना, वसूल हुए रुपये का दुरुपयोग, सिपाहियों की ओर की गई उपेक्षा तथा उनकी मुसीबतों और ज़रूरतों की ओर से सरकार का आँखें बन्द कर लेना, आदि बातें ऐसी थीं जिन पर फ़ौजी अफ़सर विचार करके उनके दूर करने का उपाय न ढूँढ़ निकालते, तो उनके पास और चारा ही क्या था? सब लोग यह ख़याल करते थे कि ग़ुलाम बल्गेरिया को आज़ाद करने के लिए तो हमने अपना ख़ून बहा दिया, परन्तु हम ग़ुलाम ही बने रहे। सन् १८८४ में एक आदमी ने अपने मुक़द्मे में यहाँ तक कह दिया कि दूसरे

मुल्क को आज़ाद करने की अपेक्षा, यदि हम स्वयं अपने को आज़ाद करलेने का ख़याल करते तो अच्छा होता।

फ़ौज की उच्च शिक्षा के लिए जो स्कूल और कालिज खुले हुए थे, उनसे भी ऐसे आदमी निकले, जिनके दिमाग़ में आज़ादी की बू भरी हुई थी और जिनका यह ख़याल था कि अपने समाज और देश को सुखी और स्वाधीन कर दें।

देशभक्ति की भावना से भरी हुई इन्हीं महान् शक्तियों से हमारे क्रान्तिकारी दल का सैनिक-सङ्गठन हुआ। सैनिक-दल का सङ्गठन भी उसी ढाँचे पर आधारित था जिसपर कि, हमारी पार्टी थी। सैनिक-सङ्गठन, फ़ौजी होने के कारण, वैसे तो हमारी पार्टी से बिल्कुल स्वतन्त्र था, परन्तु उसके प्रधान अधिकारी हमारी कार्य्यकारिणी कमेटी के नामज़द किये होते थे। असल में सैनिक-विभाग का सिलसिला ऐसा बन गया कि देश भर के स्थानीय सैनिक-दल केन्द्रस्थ सैनिक-दल के अधीन होगये और केन्द्रस्थ सैनिक-दल हमारी कार्य्यकारिणी कमेटी के।

जिस समय नौसेना के अफ़सरों ने क्रौंस्टाट में अपना सङ्गठन किया, उसी समय सेंटपीटर्सबर्ग के तोपखाने ने भी अपना सङ्गठन कर डाला। हमारी कमेटी और सैनिक-सङ्गठन दोनों ही में साम्राज्य भर के, चुनेहुए प्रसिद्ध आदमी थे। उन्होंने देहातों में जा-जा कर अपनी शक्ति को देखा, सँभाला और सङ्गठित किया, तथा जाँचकर इस बात का भी पता लगा लिया कि शाही फ़ौज के वे आदमी जिनको हमसे सहानुभूति है, कहाँ कहाँ और कितने कितने हैं।

हमारी पार्टी ने अब यूरुप के दूसरे देशों में भी अपना प्रचार आरम्भ

किया। प्रचार का उद्देश यह था कि रूसी सरकार की घरेलू नीति का भण्डाफोड़ करदें और साथही, बाहर के लोगों को यह भी बतादें कि सरकारी दमन के प्रतिकार के लिए हम क्या कर रहे हैं। सरकार की काली करतूतों को दिखाकर हम बाहरी लोगों की सहानुभूति प्राप्त करना चाहते थे। इस प्रकार हमारा मतलब यह था कि देश में बम से शाही तख़्त हिला दें, और देशों के बाहर अपने प्रचार द्वारा उसे अपमानित कर दें, और जिन देशों में उसे घृणित बनावें, ज़ारशाही के विरुद्ध अपने लाभ के लिए उनका हस्तक्षेप भी करा सकें। इस काम में वे लोग हमारी सहायता करने को तैयार थे, जो अपने राजनैतिक विचारों के कारण रूस से यूरुप के अन्य देशों में निर्वासित कर दिये गये थे।

इस काम के लिए हार्टमेंन और लैबरौव विदेशों में हमारे एजेंट नियुक्त हुए। उनके सामने मुख्य काम यह था कि रूस की आर्थिक और राजनैतिक दशा पर छोटे छोटे पर्चे निकालें, लेक्चर दें और अख़बारों में लेख लिखें। हार्टमेंन अमेरिका भी जानेवाला था। पश्चिमी यूरुप के सब साम्यवादी नेताओं ने इस काम में सहयोग करने का वादा किया। हमारी कमेटी ने रौकफोर्ट के कार्लमार्क्स से लिखकर प्रार्थना की कि वह हार्टमेंन को रूसी राज-सत्ता के विरुद्ध प्रचार करने में हर तरह की सहायता दें। कार्लमार्क्स ने यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार करली और उन्होंने क्रान्तिकारी आन्दोलन की बड़ी प्रशंसा की। अब यूरुप के अख़बार रूस की क्रान्तिकारी ख़बरों को एक दम ले उड़े। जर्नेलिस्टों के लिए रूस की वर्त्तमान दशा पर कुछ भी लिखना बड़ा महत्त्वपूर्ण होगया।

अब हमारे लिए यह ज़रूरी होगया कि अप्रमाणित ख़बरों को छपने

से रोकने, और प्रमाणित ख़बरों को इस भारी माँग के अनुसार अधिक संख्या में भेजते रहने के लिए, रूस के ताज़ा से ताज़ा समाचार बाहर भेजते रहें। इसलिए सन् १८८० के अन्त में कमेटी ने पत्र-व्यवहार के काम के लिए मुझे अपना वैदेशिक मंत्री नियुक्त कर दिया। मैंने हार्टमेन से पत्र-व्यवहार जारी कर दिया। उनके पास मैंने पत्रों की नक़लें, फाँसी पाये हुए, अथवा गिरफ़ार हुए आदमियों के जीवन-चरित्र और चित्र, क्रान्तिकारी पुस्तकों के नये संस्करण, रूसी पत्रिकाएँ, अख़बार आदि चीज़ें भेजीं और आमतौर पर वह सब माँग पूरी कर दी, जो अपनी शक्ति के अनुसार मैं कर सकती थी।

पनीर की दुकान

सेंटपीटर्सबर्ग में मानेज़ एक जगह है। वहाँ ज़ार अक्सर सैर करने जाया करता था। यह निश्चय हुआ कि उसके रास्ते में सड़क के सहारे एक दुकान ले ली जाय। वहाँ बैठकर डाइनामाइट रख दिया जाय। जब शाही सवारी सड़क पर होकर निकलेगी, तभी धड़ाका कर दिया जायगा। पनीर की दुकान खोलने की बात तय हुई। मैंने राय दी कि उसपर बौग्डानोविच बैठाया जावे। वर्ष के आरम्भ में बौग्डानोविच और याकिमोवा उसकी स्त्री बनाकर, दुकान पर नियुक्त कर दिये गये। उन्होंने डाइनामाइट रखने को ज़मीन खोदना शुरू कर दिया।

११
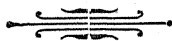
ज़ार की हत्या

च फरवरी में, एक दिन ज़ार मानेज़ जाने के लिए उसी सड़क पर होकर निकला, जहाँ हमारी दुकान थी। परन्तु दुःख की बात यह थी कि सड़क के अन्दर ज़मीन खुद चुकने पर भी, वहाँ डाइनामाइट नहीं रखा गया था। अब न जानें, ज़ार के दुबारा वहाँ होकर निकलने के लिए, कितने दिन तक इन्तज़ार करना पड़ता!

ज़ार की हत्या के लिए छै बार असफल उद्योग होचुका था। कमेटी ने यह निश्चय किया कि अबकी बार जो उद्योग हो, वह अन्तिम और ऐसा हो कि किसी भी हालत में ज़ार के प्राण न बचें! कमेटी ने यह आदेश दिया कि पहली मार्च तक सारा इन्तज़ाम पूरा कर लिया जाय, और डाइनामाइट, बम वग़ैरह सब चीज़ें यथा-स्थान पहुँचा दी जायँ। इस सातवें अन्तिम उद्योग के लिए एक ही समय में ज़ार पर तीन तरह से वार करने का निश्चय हुआ। पहला तरीक़ा यह था कि जिस वक्त

शाही सवारी सड़क पर डाइनामाइट वाली जगह पर होकर निकले, उसी वक्त पनीर की दुकान से, धड़ाका कर दिया जाय। दूसरा ढँग यह था कि यदि किसी तरह धड़ाका ज़ार की सवारी के निकलने के पहले या बाद में हो, तो फिर, रीसाकौव, ग्रीनैविट्स्की, टिमौफे और इमैलिया-नौव नामके चारों व्यक्ति, सड़क के दोनों ओर से ज़ार के ऊपर बम बरसाना आरम्भ करदें। यदि इसमें सफलता न मिले, तो, तीसरा उद्योग यह था कि ज़ैल्याबौव छुरे से ज़ार का काम तमाम कर दें!

बौग्डानोविच और याकिमोवा व्यापार के काम में दक्ष नहीं थे। इससे उनके वहाँ दुकान करने से, पड़ोस के दुकानदार प्रतिद्वन्द्विता के भाव से जलते नहीं थे। हमारे पास रुपया भी इतना नहीं था जिससे दुकान में व्यापार के लिए हम काफ़ी माल भर सकें। दुकान में जो पीपे रखे हुए थे, उनमें माल की अपेक्षा, सड़क के नीचे की खुदी हुई मिट्टी भरी हुई थी। हमारा साथी ट्रिगौनी, संयोग से, नैव्स्की मुहल्ले में एक ऐसे मकान में रहता था, जहाँ ख़ुफ़िया पुलिस का एक जासूस भी रहा करता था। इसके साथ ही हमारे आदमियों में अनुभव की कमी, और सड़क के नीचे किसी सुरङ्ग में रात को काम करने वाले मज़दूरों में पैदा हुए सन्देह के कारण, पुलिस की निगाह हमारी दुकान पर पड़ गई। २७ फ़रवरी को अपने मकान पर, ट्रिगौनी और ज़ैल्याबौव पकड़े गये। उसी वक्त यह ख़बर उड़ी कि जिस मुहल्ले में हमारी दुकान है, वहाँ पुलिस को किसी महत्त्वपूर्ण बात का पता चल गया है। इसी बीच में बौग्डानोविच ने, जो कौबोज़ैब के नाम से काम कर रहा था, आकर कहा कि हमारी दुकान पर सैनिटरी कमीशन (स्वास्थ्य-सम्बन्धी जाँच-पड़ताल

करने वाला कमीशन) के बहाने से कुछ लोग आये थे, और उनमें से एक आदमी ने यह भी पूछा था कि दुकान में तरी क्यों है? इसका जवाब यह दे दिया गया कि मेले के दिनों में यहाँ बहुत सा दही फैल गया था। ख़ैर यह हुई कि उन लोगों ने पीपे खुलवाकर नहीं देखे। यदि वे पीपों को खुलवाकर देखते तो हमारे दो वर्ष के उस काम पर पानी फिर जाता, जिसे हमने अपनी जान ख़तरे में डाल कर बड़ी मिहनत से किया था, और कब, जबकि, उस काम की सफलता देखने का समय आगया था। हमें अपने आदमियों की रक्षा की चिन्ता नहीं थी, बल्कि चिन्ता तो यह थी कि उस समय, जबकि, हम उन सब बातों का अन्त कर रहे थे, जिनके कारण हमारे २१ आदमी फाँसी पर चढ़ चुके थे, और हमें अपरिमित कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थीं, हमारा रहस्य न खुले। आज शनिवार का दिन था, और पहली मार्च इतवार के लिए यह सब तैयारियाँ थीं।

खुफ़िया पुलिस के महकमे में हमारा एक मित्र क्लैटौचनिकौव क्लर्क था। वह हमें अपने महकमे की सब ख़बरें लाकर देता था। ऐसे मौक़े पर उसकी अनुपस्थिति और जैल्याबौव की गिरफ़्तारी से हमारे काम को बड़ा धक्का लगा। जैल्याबौव उक्त चार बम फेंकने-वालों का मुखिया था। उसके मकान से हमें विस्फोटक पदार्थ तुरन्त ही हटा देने पड़े, और उस जगह को भी छोड़ देना पड़ा, जहाँ पर बम फेंकने-वाले इकट्ठा होकर अपनी तैयारियाँ करते थे। यह जगह छोड़ देने का कारण यह था कि वहाँ पुलिस पहुँच चुकी थी। इन दो बातों के अतिरिक्त, हमारे दुःख की सीमा न रही उस वक़्त, जब हमें यह मालूम पड़ा कि कल पहली मार्च को ज़ार निकलेगा, और यहाँ अभी तक, न तो यथा-स्थान

डाइनामाइट ही रखा गया है और न उसके सुलगाने के लिए चारों में से एक भी तार तैयार है।

इन कठिनाइयों का सामना करते हुए, हमने उस दिन २८ फरबरी शनिवार को, कमेटी की बैठक की। सूचना न मिलने के कारण उसमें सब मेम्बर न आ सके। मीटिङ्ग मेरे मकान पर ३ बजे हुई। सब मेम्बरों के हृदय में एक ही भावना थी। जब पैरौव्स्काया ने पूछा कि यदि कल ज़ार, दुकानवाली सड़क से होकर न निकले और दूसरे रास्ते से चला जाय, तब क्या किया जाय, तब सब लोगों ने एक स्वर से कहा—कुछ भी हो, कल काम ज़रूर कर डालना चाहिए। रात ही में डाइनामाइट भी लग जाय और बम भी तैयार कर लिये जायँ, क्योंकि धड़ाके के साथ, सम्भवतः बम का प्रयोग करना भी ज़रूरी हो सकता है।

इज़ाइयैव डाइनामाइट रखने और सुलगाने को तार लगाने के लिए तुरन्त ही दुकान पर भेज दिया गया। यह निश्चय हुआ कि अब हम सब लोग दूसरे दिन इतवार को सुबह मिलेंगे, तभी हर एक का निश्चित काम बतला दिया जायगा। मेरे मकान पर सुखानौव, किबैलकिक, ग्राचैव्स्की, पैरौव्स्काया और मैं, बम बनाने में जुट गये। मुझे वैज्ञानिक अनुभव न था, किन्तु जहाँ ज़रूरत पड़ती थी, वहीं मैं हाथ लगा देती थी। पैरौव्स्काया बहुत थक गई थी, उसे सुला दिया और रात के २ बजे मैं भी इसलिए सोगई कि साथियों को मेरी ज़रूरत न थी। बाक़ी तीनों आदमियों ने सुबह तक दो बम पूरे तैयार कर डाले और पैरौव्स्काया उन्हें सैबलिन के मकान पर ले गई।

फिर सुखानौव भी चला गया। बाक़ी हम तीनों ने सुबह ८ बजे

तक दो बम बनाकर और तैयार कर लिये। इस प्रकार तीन आदमियों ने १५ घंटे में ४ बम तैयार कर लिये। १० बजे चारों बम फेंकने वाले सैबलिन के यहाँ जाकर इकट्ठे हुए। पैरोव्स्काया ने .जैल्याबौव की जगह लेकर सबको काम बतला दिया और यह भी समझा दिया कि काम पूरा करने के बाद वे कहाँ मिलें।

रविवार

मेरा यह काम था कि मैं २ बजे तक मकान पर रहूँ और दुकान से लौटे हुए आदमियों को वहीं मिलूँ। बौग्डानोविच का काम था कि .जार की सवारी आने से एक घंटे पहले दुकान छोड़ दे और याकिमोवा उस वक्त दुकान छोड़े, जबकि, सिगनल से उसे यह मालूम होजावे कि शाही सवारी नैव्स्की मुहल्ले में आगई। फ्रौलैङ्को के ज़िम्मे यह था कि दुकान में यथा समय डाइनामाइट की बिजली के तार का बटन दबा दे, और अगर ज़िन्दा रहे तो, एक ग्राहक की तरह दुकान से धीरे धीरे खिसक जावे।

१० बजे फ्रौलैङ्को मेरे मकान पर आया। उसके पास लाल शराब की एक बोतल और खाने का कुछ सामान था। वह मेज पर खाने-पीने में लग गया। मैंने पूछा कि हज़रत, क्या कर रहे हो? उसने हँसते हुए कहा कि मैं मजे, में खाना खा रहा हूँ, जिससे काम करने के लिए वक्त पर मुझमें पूरी शक्ति रहे। मैंने मन हीं मन उस वीर को प्रणाम किया इसलिए कि, उस दिन वह जो काम करने जा रहा था, उसमें उसका बचना प्रायः असम्भव था। मैं रात को २ बजे तक जगी थी, इसके सिवा

मैंने और कोई अधिक ख़तरे का काम भी नहीं किया था, परन्तु उस दशा में भी, मुझे खाना-पीना कुछ न सूझा। मुझे ताज्जुब तो यह था कि जो आदमी अभी हाल मौत से खेलने जा रहा है, उसे मज़े में खाने-पीने की सूझ रही है !

मेरे यहाँ दुकान से कोई नहीं आया। इज़ाइयेव ज़रूर लौटा और यह ख़बर लाया कि ज़ार दुकान की ओर आया ही नहीं, बल्कि सीधा मानेज़ से घर लौट गया। परन्तु मैं यह बिल्कुल ही भूल गई कि इज़ाइयेव को ज़ार के लौटने के रास्ते के हाल का पता नहीं है, और कल की कमेटी की तय की हुई यह बात भी मुझे याद न रही कि कहीं भी हो, ज़ार मार ज़रूर डाला जायगा। मैं यह ख़याल करके घर से निकल पड़ी कि शायद किसी कारण यह उद्योग हुआ ही नहीं।

असल में ज़ार सैडोवाया सड़क पर, जहाँकि दुकान थी, आया ही नहीं। इस अवसर पर सोफ़िया पैरौव्स्काया ने अपनी सूझ-बूझ का अच्छा चमत्कार दिखाया। वह फ़ौरन ताड़ गई कि ज़ार ईकैटैरिनिन्स्काया नहर के बाँध के रास्ते लौटेगा, इसलिए उसने पहला सारा प्रोग्राम बदल कर, केवल बम का प्रयोग करने का निश्चय किया। उसने बम फेंकने-वाले चारों आदमियों को दूसरे रास्ते पर लाकर नई जगहों पर खड़ा कर दिया और हुक्म दे दिया कि जैसे ही उसका रूमाल हिले, वैसे ही ज़ार पर बम बरसा दिये जायँ !

दो बज ही पाये थे कि एक के बाद दूसरी तोप छूटने की सी आवाज़ हुई। यह आवाज़ बमों की थी। रीसाकौव के बम ने शाही गाड़ी को चूर चूर कर डाला और ग्रीनियेविट्स्की का फेंका हुआ बम ज़ार के

लगा ! इससे वह और ज़ार दोनों ही बुरी तरह घायल हुए और कुछ ही घंटों में दोनों मर गये !

चारों ओर ख़बर फैल गई । मुझे भी यह मालूम हुआ कि लोग गिरजों में जाकर नये ज़ार एलेक्ज़ेण्डर तृतीय के प्रति राजभक्ति की शपथ ले रहे हैं ।

मैं तुरन्त ही घर लौट आई । बाज़ारों में चारों ओर ज़ार की हत्या, उसके ख़ून, घाव आदि बातों की चर्चा हो रही थी । मैं भी ख़ूब रोयी ! परन्तु मेरे आँसू हर्ष के आँसू थे । वे आँसू ऐसे थे जैसे कि बड़े भयानक स्वप्न के बाद ख़तरे से छुटकारा पाकर आदमी हर्ष से गद्गद् होकर रो पड़ता है । दस वर्ष से हमारी आँखों के सामने रूस के लाखों नौजवानों पर, ज़ारशाही के पाशविक और बर्बरतापूर्ण अत्याचार हो रहे थे, हज़ारों आदमी निर्वासित होचुके थे, बहुत से देशभक्त जेलों की चहारदीवारी में बन्द थे और बहुत से शहीदों का ख़ून बह चुका था ! इन सब बातों का ख़याल करके ही, हम आज अपने हाथों से उसका बदला चुका कर हर्ष के मारे गद्गद् हो उठे । यह भी कुछ कम सन्तोष की बात नहीं थी कि हमारे इन्हीं कामों के फलस्वरूप रूस के नव्य राष्ट्र का नये सिरे से निर्माण होने की आशा थी ।

सुखानौव जब लौट कर हमसे मिला तब उसके हर्ष और जोश की सीमा नहीं थी । उसने हमें रूस के उस भविष्य के नाम पर बधाई दी, जिसके लिए यह सब उद्योग किये जा रहे थे ।

हमारी कमेटी ने कुछ दिन बाद एलेक्ज़ेण्डर तृतीय के नाम एक चिट्ठी भेजी । उसमें हमारी पार्टी की मनोवृत्ति स्पष्ट रूप से झलकती थी ।

वह चिट्ठी इतनी विनम्रता, राजनैतिक नैपुण्य और सहानुभूति के साथ लिखी गई कि रूस भर की जनता ने उसका समर्थन किया। विदेशों में उसके छपने पर बड़ी सनसनी फैल गई। यहाँ तक हुआ कि, उदार और दकियानूसी विचार के पत्र-पत्रिकाओं ने भी रूसी क्रान्तिकारियों की माँगों का पूर्णतया समर्थन किया। उन्होंने यह भी लिखा कि वे माँगें उचित, न्याय-पूर्ण और ऐसी हैं जो पश्चिमी यूरुप में लोगों के दैनिक जीवन का अङ्ग बन गई हैं।

कमेटी की चिट्ठी इस प्रकार थीः—

"राजन्,

आपके दुःख को पूर्णतया अनुभव करते हुए भी, हमारी कार्यकारिणी कमेटी आपको पत्र द्वारा वर्त्तमान स्थिति बतलाने में समय बर्बाद न करती, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति का देश के प्रति कर्त्तव्य, मानवीय भावनाओं के भी ऊपर है। इस कर्त्तव्य को पालन करने में मनुष्य को अपनी, अथवा दूसरों की भावनाओं और सुविधाओं की आहुति देनी पड़ती है, इसलिए हमने आपको तुरन्त ही लिख देने का निश्चय कर लिया है, क्योंकि ऐतिहासिक घटना-चक्र के गर्भ में रूस के लिए ख़ून की नदियाँ और बड़ी भयानक क्रान्तियाँ दिखाई दे रही हैं!

आपके पिता की हत्या न तो आकस्मिक ही थी, और न आश्चर्यजनक। जो कुछ विगत दस वर्षों में होचुका है, उसके बाद यह हत्या अनिवार्य थी, और इसका वास्तविक आशय उस व्यक्ति के लिए अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है, जो रूसी साम्राज्य का मुकुट है। यदि कोई इस हत्या का यह अर्थ लगावे कि यह किसी एक व्यक्ति, अथवा किसी ख़ास समुदाय

का काम है, तो यह कहना पड़ेगा कि वह देश के जीवन-प्रवाह को समझता ही नहीं। दस वर्षों में सरकारी दमन के द्वारा, देश में बेहद अत्याचार हुए, उद्योग-धन्धों और लोगों की आज़ादी को कुचला गया, और साथ ही, इन सब कामों से आपके पिता ने अपने गौरव से भी तिलाञ्जलि दे दी। इसका नतीजा यही हुआ कि लोगों के मन में क्रान्ति की भावना जम गई और उसने देश की जीवनोपयोगी शक्तियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। आपके पिता की सरकार को अकर्मण्यता का दोष नहीं लगाया जा सकता। उसने हमारे उन साथियों को, जो अपराधी थे, और उन्हें भी, जो बिल्कुल निर्दोष थे, फाँसी पर लटका दिया, जेलों और साइबेरिया प्रान्त को क़ैदियों और निर्वासित लोगों से भर दिया, और उन्हें बहुत बड़ी संख्या में पकड़ कर, उनके साथ ऐसा व्यवहार किया गया जो दुनियाँ की नज़र में, ज़ारशाही के मुँह पर कलङ्क की कालिमा थी!

राजन्, आप यह समझ लें कि क्रान्तिकारी आन्दोलन व्यक्ति-गत रूप में नहीं चल रहा, बल्कि यह तो, समूचे राष्ट्र का एक अङ्ग है। पतित समाज के आत्मोद्धार के लिए जब ईसा को शूली पर प्राण देने पड़े थे, तब उससे, उस महात्मा का समाज-सुधार का काम बन्द नहीं होगया था। इसी तरह, आपकी सरकार के दमन, फाँसी आदि से हमारे क्रान्तिकारी आन्दोलन का बाल भी बाँका नहीं हुआ।

हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि आप क्रान्तिकारियों को पकड़ सकते हैं, उन्हें फाँसी पर चढ़ा सकते हैं, और सम्भवतः मुख्य से मुख्य क्रान्तिकारी दलों को नेस्तनाबूद भी कर सकते हैं। यह आन्दोलन

जनता के असन्तोष तथा सरकार के अनुत्तरदायित्वपूर्ण शासन पर निर्भर है, और यही क्षेत्र है जिसमें नये नये क्रान्तिकारी पैदा होते चले जारहे हैं। इसलिए क्रान्तिकारी आन्दोलन को बिल्कुल नष्ट कर देना, तमाम रूसी जाति को मार डालने के बराबर है। परन्तु यह दोनों ही बातें बिल्कुल असम्भव हैं। सरकार के अधिकाधिक दमन से, क्रान्तिकारियों के प्रबल वेग से बढ़ने के साथ ही उनका कार्य्यक्षेत्र भी बढ़ता ही चला जाता है। सन् १७८४ का इतिहास, सन् १८७८ से अबतक की घटनाएँ और हमारी कार्य्यकारिणी का जन्म इसका प्रमाण है।

यदि सरकारी कूटनीति का यही हाल रहा, तो, क्रान्तिकारी आन्दोलन भविष्य में मार-काट और ख़ून--ख़राबी से कितना विकराल रूप धारण करेगा, यह हम धमकी के तौर पर आपसे नहीं कहते, बल्कि इतिहास आपको बता देगा, और आप स्वयं ही समझ लेंगे। हमारे देश की भावी स्थिति की वह कल्पना बड़ी दुखदायी है। यह ख़याल हमारे हृदय को इसलिए टूक टूक कर रहा है कि हमारे देश की जीवनोपयोगी और अनोखी उस क्रियात्मक शक्ति का, जो देश के विकास के लिए रचनात्मक कामों में लगाई जा सकती है, विप्लव में संहार होगा। आप ख़ुद ही विचार कर लीजिए कि इस दुखद दृश्य को देखने की क्या ज़रूरत है?

यह कहने के लिए हमें क्षमा कीजिए कि इस समय देश में कोई सरकार नहीं है। क्योंकि, सरकार ऐसी होनी चाहिए जो जनता के सच्चे भावों को प्रकट करे और उसके कामों में जनता की आकांक्षा का प्रतिबिम्ब झलकता हो। सरकार ने जनता को ग़ुलामी की ज़ञ्जीर में जकड़ दिया है, और वह ज़ञ्जीर ज़मींदारों के हाथ में दे रखी है। अब जनता को और भी

ज़्यादा चूसने के लिए वह पूँजीपतियों की एक जाति अलग बना रही है। फलस्वरूप चारों ओर दरिद्रता फैल गई है और बर्बादी का बोलबाला है। घरों से भी आज़ादी का नामोनिशान मिट चुका है, और वह अब अपमानजनक निगरानियों में परिणित होगई है। गाँव के पञ्चायती मामलों में भी लोग पराधीन हैं। क़ानून और सरकार केवल उन्हीं लोगों की रक्षा करती है जो सार्वजनिक दोहन और नाश के लिए ज़िम्मेदार हैं। जो आदमी सार्वजनिक हित के पक्ष में आवाज़ उठावे, उसके लिए निर्वासन और फाँसी के सिवा और है ही क्या ? इस दशा में, हुज़ूरवाला ही समझ लें कि ऐसी सरकार, बदमाशों और लुटेरों का गरोह नहीं है, तो है क्या ? यही कारण है कि रूसी सरकार जनता का एक अङ्ग नहीं है, और न उसमें उसका विश्वास ही है। इसीलिए यहाँ क्रान्तिकारी इस बड़ी संख्या में उपजते हैं, और ज़ार का प्राण-घातक बड़ा लोकप्रिय और आदरणीय व्यक्ति माना जाता है ! आप चापलूसों की बातों में आकर धोखा न खाजावें।

केवल दो ही मार्ग हैं। या तो आपकी सरकार जनता की ओर झुके, या फिर, आप देश को अनिवार्य क्रान्ति के गहरे गर्त्त में गिरने दें। देश के हित को ध्यान में रखते हुए, और उसे विप्लव के भयङ्कर परिणामों से बचाने के लिए, कार्य्यकारिणी कमेटी आपको यह सलाह देती है कि आप पहले मार्ग का अनुसरण करें। उस दशा में, सरकार जनता के आगे उत्तरदायी होजायगी, आपको दमन-चक्र चलाने की ज़रूरत न रहेगी, और हम भी, हिंसात्मक मार्ग को छोड़कर, देश की उन्नति के लिए रचनात्मक कामों में लग जायँगे। विश्वास रहे कि हम इस

काम को आपके नौकरों की अपेक्षा, अधिक दुःख के साथ अनिवार्य्य समझ कर करते हैं।

सरकार के अत्याचारों को भुलाकर, तथा आपको उस सत्ता का राज-मुकुट भी न समझ कर, जिसने लोगों को अब तक धोखा दिया, और उनका बहुत नुक़सान किया, हम, आपको एक रूसी नागरिक और प्रतिष्ठित व्यक्ति समझ कर, आपसे अपील करते हैं। आप कर्त्तव्य के सामने अपने पिता की हत्या से पैदा हुई व्यक्ति-गत कटुता को भुला दें। आपने तो केवल अपने पिता को ही खोया है, किन्तु हम न केवल अपने पिताओं से ही हाथ धो बैठे हैं, बल्कि अपने भाइयों, पत्नियों, बच्चों और प्रिय मित्रों से भी। हम मातृभूमि की आवश्यकता को अनुभव करके अपनी कटुता को भुलाते हैं, और यही, आपसे भी आशा करते हैं।

यह न ख़याल कीजिएगा कि हम कोई शर्त्तें पेश कर रहे हैं। क्रान्तिकारी आन्दोलन की प्रवृत्ति शान्ति की ओर मोड़ देने के लिए जिन बातों की ज़रूरत है, वे हमारी शर्त्तें नहीं, बल्कि यह तो एक ऐतिहासिक आवश्यकता है। वे ज़रूरी बातें दो हैं—(१) समस्त राजनैतिक क़ैदी छोड़ दिये जावें, इसलिए कि, उनके काम जुर्म नहीं थे, बल्कि नागरिक कर्त्तव्य का पालन था। (२) रूसी जनता के प्रतिनिधियों की एक एसेम्बली स्थापित की जाय, और वह, देश के वर्त्तमान राजनैतिक और सामाजिक ढाँचे की जाँच-पड़ताल करके, उसे, लोगों की इच्छा के अनुसार बना दे।

हम नये शासन-विधान पर, सार्वजनिक अधिकार की छाप लग जाने के लिए, यह ज़रूरी समझते हैं कि व्यवस्थापिका सभा के प्रतिनिधियों के

चुनाव में किसी प्रकार का अड़ङ्गा न डाला जावे। चुनाव के लिए नीचे लिखी बातों का पूरा किया जाना आवश्यक है :—

(१) एसेम्बली में मेम्बर सब तरह के लोगों में से उनकी संख्या के अनुसार चुने जावें।

(२) मेम्बरों और उनके चुननेवाली जनता के काम में किसी तरह की रुकावट न हो।

(३) चुनाव की तैयारी, और चुनाव बिल्कुल स्वाधीन वातावरण में किया जाय। और जब तक एसेम्बली बैठकर तय न करदे, तब तक सरकार अस्थायी रूप से लिखने, बोलने, मीटिङ्ग करने और चुनाव के कार्य्यक्रम के विषय में लोगों को पूरी आज़ादी देदे।

केवल यही एक साधन है जिससे अब रूस शान्तिमय जीवन व्यतीत करके उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होसकता है। हम अपने देश और संसार के सामने घोषणा करते हैं कि जो एसेम्बली ऊपर बताये हुए ढँग से चुनी जायगी, उसका हुक्म मानने के लिए, हम बिना किसी शर्त को बाध्य होंगे। जो सरकार ऐसी एसेम्बली स्थापित करेगी, हम कभी उसका विरोध न करेंगे। अब आप दोनों में से किसी भी एक मार्ग का अनुसरण कर लीजिए, पसन्द करने का भार आपके ऊपर है। हम तो विधाता से प्रार्थना करते हैं कि आप देश के प्रति अपना कर्त्तव्य समझ कर उस मार्ग को ग्रहण करें, जिसमें रूस की भलाई हो, और आपका गौरव बढ़े।

१० मार्च १८८१ }   “कार्य्यकारिणी कमेटी।”

ज़ार की हत्या के बाद धर-पकड़ शुरू होगई। हमारे बहुत से कार्य्य-कर्त्ता पकड़े गये, जिनमें सोफिया पैरोव्स्काया, किबैलचिह, फ्रौलैङ्को, और पीसारेव का नाम उल्लेखनीय है। सैबलिन ने स्वयं गोली से आत्म-हत्या कर डाली! बौग्डानोविच और याकिमोवा के लिए यह तय हुआ कि वे फौरन दुकान छोड़ कर, सेंटपीटर्सबर्ग से चले जावें।

हमें यह भी मालूम होगया कि सरकार के पास ऐसा ज़रूर कोई आदमी* है जो हम लोगों को नाम से नहीं, किन्तु शक्ल से पहचानता है और जो सड़क पर हमारे आदमियों की ओर इशारा करके पकड़वा देता है। यहाँ रहने के ख़तरे की वजह से, कमेटी ने, हममें से कुछ लोगों को सेंटपीटर्सबर्ग से चले जाने का हुक्म दे दिया। मैं भी उनमें से एक थी। हम सब इन्हीं भावों से प्रेरित थे कि अब इस अवसर को, अपनी पार्टी को फिर से सङ्गठित किये बिना न जाने दें। यह मौक़ा इस लिए और भी अच्छा था कि अब लोगों में उत्साह बहुत बढ़ गया था, और हमारे कार्य्यक्रम से अधिकाधिक लोग सहानुभूति दिखाने लगे थे और चाहते थे कि उन्हें भी काम दिया जावे। विभिन्न राजनैतिक समितियों ने हमारे प्रतिनिधियों को माँगा और हमसे सम्बन्ध जोड़ना चाहा, तथा वे हमें अपनी सेवाएँ अर्पित करने लगीं। इन सब बातों ने हमें बहुत उत्साहित कर दिया। कार्य्यकर्त्ताओं को उस समय, सेंटपीटर्सबर्ग छोड़ना अखरता था। सुखानौव की सहायता से मैं कुछ दिन और वहाँ रह सकी।

---

* यह मजदूर ओकलाड्स्की था, जो सन् १८८० में क्यार्टकौव्स्की के मुक़दमे में निर्वासित किया गया था।

एक विश्वासघाती ने इज़ाइयेव को भी पकड़वा दिया। जो लोग पहले पकड़े जा चुके थे, उनमें बहुत से मार्च के अन्त तक मार दिये गये! हम लोगों ने सेंटपीटर्सबर्ग में एक दूसरे की ख़ैर-ख़बर के लिए यह समझ रखा था कि जो रात को घर लौट कर न आवे, वह किसी तरह सरकार के पञ्जे में फँस गया।

सेंटपीटर्सबर्ग के जिस मकान में मैं रहती थी, वह अब सामान का एक गोदाम-सा बनता जा रहा था। जो लोग पकड़े जाचुके थे, उनके चार्ज के डाइनामाइट और बम के सामान से लेकर क्रान्तिकारी साहित्य, अख़बार, प्रेस, टाइप आदि सामान सब कुछ मेरे मकान में आगया। मैंने भी सोच लिया कि मकान छोड़ने से पहले यह सब उपयोगी सामान कहीं इधर-उधर कर दूं।

मैं दूसरी अप्रैल को सामान बाँधने में लगी रही, जिससे उसके हटाने में सुविधा हो। ग्राचैव्स्की १ बजे आया और वह भी इस बात से सहमत था कि सामान किसी भी तरह खो न दिया जाय। मैंने उससे कह दिया कि सुखानौव को ख़बर दे दो, वह बड़ा दक्ष है, सब काम बहुत ख़ूबी से कर लेगा। ग्राचैव्स्की से मालूम हुआ कि पुलिस बड़ी सरगर्मी से जाँच-पड़ताल में लग रही है।

कुछ घंटे बाद, सुखानौव नौसेना के दो अफ़सरों को लेकर आगया और शाम के ८ बजे तक सारा सामान ढोकर लेगया। केवल दो बक्स रह गये, जिनमें कोई ख़ास सामान न था। सवेरे आकर दो औरतें उन्हें भी उठा लेगईं। सुखानौव ने मुझसे रात ही को यह मकान छोड़ देने को कहा था। परन्तु मैंने उसकी अनुमति से सवेरे जाने का निश्चय

किया। सवेरे जैसेही मैंने मकान छोड़ा वैसेही एक घन्टे में पुलिस वहाँ आ पहुँची।

तीसरी अप्रैल को ज़ार की हत्या करने वालों की फाँसी का दिन था। उस दिन आसमान साफ़ था, बर्फ़ गल रही थी, और सूरज की सुनहली किरणें चारों ओर छिटक रही थीं। मेरे मकान से बाहर आने के वक़्त तक खुले-आम फाँसियाँ लग चुकी थीं और चारों ओर उन्हीं की चर्चा थी। लोग उस चौराहे से, जहाँ फाँसियाँ लगी थीं, लौट रहे थे। मेरा दिल पैरौव्स्काया और ज़ैल्याबौव के लिए दुखित हो रहा था।

सोफिया पैरौव्स्काया

सोफिया पैरौव्स्काया के जीवन और उसके अन्त की एक ऐतिहासिक घटना थी। उसके क्रान्तिकारी काम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। वह पहली स्त्री थी जो राजनैतिक जुर्म के कारण फाँसी पर चढ़ा दी गई!

यह उस व्यक्ति की लड़की थी, जो ज़ार एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय के समय में सेंटपीटर्सबर्ग का गवर्नर था, उस व्यक्ति की पोती थी जो प्रथम एलेक्ज़ेण्डर के समय में क्रीमिया का गवर्नर था, और उस व्यक्ति की पन्तिनी थी, जो रूस के कई प्रान्तों का गवर्नर रह चुका था। संयोग से इसके मुक़दमे में सरकारी वकील वह आदमी था, जो बचपन में इसके साथ खेला करता था, और प्स्कौव (Pskov) में इन दोनों के पिता पड़ोसी थे। सरकारी वकील मुराइयैव था, जो बाद में न्याय-विभाग का मिनिस्टर होगया। यह बड़ा ज़ालिम और पतित आदमी था, और हमेशा जनता के विरुद्ध क़ानूनी दाव-पेचों का उपयोग करने में लगा रहता था।

पैरोव्स्काया के हृदय में बचपन ही से मानव-समाज के प्रति बड़ा प्रेम था और उसे अपने देश के गौरव का बड़ा अभिमान था। मेरी गिरफ़्तारी के बाद, ख़ुद मुराइयेव ने उसके बचपन का हाल मुझे बताया था। बाप-दादों के ज़माने में ग़ुलामी की जो प्रथा पड़ गई, पैरौव्स्काया उसके बहुत ख़िलाफ थी, क्योंकि उससे मानवीय व्यक्तित्त्व का अनादर होता था। यह प्रथा बचपन ही से उसे घर में देखने को मिली। इसका पिता पैरोव्स्की बड़ा निरंकुश था। वह अपनी स्त्री को स्वयं ही अपमानित नहीं करता था, बल्कि अपने ज़रा से लड़के से भी, ज़बर्दस्ती उसका अपमान कराता और गालियाँ दिलवाता था। परन्तु वह देवी धार्मिक सौम्यता और मृदुलता की प्रतिमूर्त्ति थी। घर के इस अत्याचारपूर्ण वातावरण ने सोफिया में मानव-समाज के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया। और माँ की मुसीबतों ने पीड़ितों और सताये हुए लोगों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न कर दी।

सोफिया को अपने घर का वायुमण्डल बहुत ही विषैला जान पड़ा। इसलिए वह पिता की, पुलिस के द्वारा पकड़वा लेने की धमकी के बाद भी, घर छोड़कर बाहर निकल आई।

सोफिया में सुशीलता और दयालुता के गुण अपनी माँ से आये थे। चैकौव्स्की के साथ काम करने में उसने किसानों के साथ बड़ी सहानुभूति दिखाई और उनके आत्मोद्धार के कामों में बहुत हाथ बँटाया। जब मैं और वह देहात में डाक्टर की हैसियत से काम कर रही थीं, तब वह किसानों की सेवा में इस प्रकार तल्लीन होगई, और कृषक-जीवन में इस प्रकार घुल-मिल गई, मानों किसानों के त्राण ही के लिए संसार

में वह अवतरित हुई थी। जब कमेटी के हुक्म से हम दोनों को सेंट-पीटर्सबर्ग से चले जाने का हुक्म हुआ तब हमारे दिल तो देहात ही में रह गये, क्योंकि, हमारा विचार था कि रूस के आत्मोद्धार का श्रीगणेश देहात ही से होगा।

कार्य्यकारिणी कमेटी की मार-काट की जितनी स्कीमें थीं, उनको पूरा कर दिखाने में यह सबसे आगे थी। सोफिया एक आदमी की पत्नी बनकर रेल-रोड-वाले झोंपड़े में रही थी। इसीने ज़ार की ट्रेन को डाइनामाइट से उड़ाने के लिए सिगनल दिया था, और शाही महल के धड़ाके के बाद इसीने ओडेसा जाकर सड़क के नीचे डाइनामाइट रखने का इन्तज़ाम किया था। सन् ८१ में ज़ैल्याबौव के साथ यही ज़ार की दिन-चर्य्या की निगरानी के लिए नियुक्त की गई थी, और इसीने आत्म-नियंत्रण द्वारा कमेटी का सारा प्रोग्राम एक क्षण भर में बदल कर, कुछ ही मिनटों में नये सिरे से ज़ार की हत्या का प्रबन्ध कर डाला। सोफिया ही ने मौक़े पर अपने रूमाल से वह सिगनल दिया था, जिससे ज़ार के ऊपर बम-वर्षा हुई थी! इसीकी कर्मव्यता, तात्कालिक निर्णय और प्रबन्ध-कौशल का यह नतीजा था कि पहली मार्च को ज़ार की हत्या होसकी, और कमेटी को सफलता मिली। यही वीराङ्गना थी जिसने अपने प्राण देकर विजय की क़ीमत चुकाई!

सोफिया दयालु तो थी ही, परन्तु सरकार के प्रति जो अत्यन्त निर्दयतापूर्ण उसका रोष-भाव था, वह माँ से नहीं, बल्कि अपने पिता से उसे मिला था। इसकी निष्ठुरता के सामने सुखानौव ऐसे विकट क्रान्तिकारी भी काँप जाते थे।

सोफिया का प्रेम दो आदमियों से—ज़ैल्याबैाव और फ्रौलैंको से—विशेष था। वे दोनों ही आध्यात्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे। सोफिया स्वयं भी बड़ी साध्वी थी। बनावट और दिखावा उसे छू तक नहीं गया था। उसका जीवन हर तरह से बहुत सादा था।

ईमानदारी का गुण तो उसमें पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। एक बार वह बीमार पड़ी। बीमारी में कमेटी के १५ रूबल (रूसी सिक्का) उसने दवा में ख़र्च कर डाले। यह उसने कमेटी के खर्च में नहीं डाले, और अपना एक कपड़ा बेचकर इस रक़म को पूरा कर दिया।

फिर उसकी फाँसी का दिन आया। ज़ैल्याबैाव किसान, पादरी का लड़का किबैलचिह, टिमोफे मज़दूर, मध्यस्थिति का एक नागरिक रीसाकैाव और एक रईस युवती पैरौन्स्काया, यह सब सिमैनौव्स्की चैाराहे पर फाँसी के लिए लाये गये। ये आदमी रूस के साम्राज्य भर के सब श्रेणियों में से थे, और यही हमारी क्रान्तिकारी आन्दोलन की देश-व्यापी शक्ति थी। रीसाकैाव के सिवा, फाँसी के तख़्ते पर सोफिया ने सब को छाती से लगाया। रीसाकैाव से वह इसलिए नहीं मिली कि अपने-आपको बचाने के लिए, उसने वह मकान बतला दिया जिसमें वह रहा करता था, और जिसके फलस्वरूप सैबलिन गोली खाकर मर गया, हैल्फ़मैंन पकड़ा जाकर जेल में मर गया और टिमोफे पकड़ा जाकर फाँसी पर चढ़ गया!

सोफिया फाँसी पर भी विचलित न हुई। जीवन-मरण में वह अपने-आपके प्रति सच्ची बनी रही। अपने अद्भुत बलिदान के कारण वह रूस के इतिहास में अमर हो गई! आज स्वतंत्र रूस में उसके बलिदान के अमर गीत बड़ी श्रद्धा के साथ गाये जाते हैं!

सन् १८७७ में, मेरी भेंट सोफिया से सेंटपीटर्सबर्ग में उस वक्त हुई थी, जब १९३ अभियुक्तों के मामले में वह ज़मानत पर छूटी हुई थी।

हत्या के परिणाम

अपने मारे जाने के समय तक, ज़ार २६ वर्ष तक शासन कर चुका था। उसकी हत्या का प्रभाव बहुत बड़ा था। उसके शासन-काल में तीन मुख्य बातें हुईं—ग़ुलामों का छुटकारा, लोकल गवर्नमेंट के नये विधान, की रचना, और अदालतों का सुधार। ग़ुलामों के छुटकारे से समाज सन्तुष्ट नहीं हुआ। आमतौर पर यह कहा जाने लगा कि ज़मींदारों के दबाव से यह एक ऐसा समझौता है जिससे वास्तविक उद्देश पूरा नहीं होता। मुख्य उद्देश था किसानों की आर्थिक दशा का ऐसा सुधार, जिससे वे नागरिकों के अधिकार और ज़िम्मेदारियाँ अपने ऊपर लेसकें। जिन लोगों ने रूस की आर्थिक दशा, और किसानों के रहन-सहन की जाँच-पड़ताल की, वे, तथा सरकारी कमीशन भी, इस नतीजे पर पहुँचे कि किसान के पास ज़मीन काफ़ी नहीं है और उसकी आमदनी और उगाही में ज़मीन आसमान का अन्तर है। यह अन्तर ऐसा है कि सुख और सन्तोष का जीवन व्यतीत करना उनके लिए बिल्कुल असम्भव है। प्रिंस वैसिलचिकौव ने तो यहाँ तक कह डाला कि रूस के किसानों की दरिद्रता और असहाय अवस्था ऐसी है, जैसीकि, फ्रांस की सन् १७८९ की बड़ी राज्यक्रान्ति से पहले, वहाँ के किसानों की थी।

इस प्रकार रूस में ग़ुलामों के छुटकारे की प्रथा का अन्त अभी दिखावटी ही था। इससे ग़ुलामों की आर्थिक दशा पर कुछ असर नहीं पड़ा।

राजनैतिक बन्धनों से वे छूट गये। अब क़ानूनन उनके साथ ग़ुलामों का सा बर्ताव तो न हो सकता था, और न वे ज़मीदारों की निजी जायदाद ही के रूप में रहे थे, परन्तु आर्थिक मामलों में वे पहले ही की तरह जकड़े हुए थे।

बाक़ी के दोनों सुधार भी इसी तरह खोखले थे। सुधार के विरोधियों, ज़ार की मानसिक वृत्ति के परिवर्त्तन, क़ानून की काट-छाँट और उसकी प्रतिक्रियात्मक व्याख्या ने सुधारों को केवल ढकोसला ही नहीं बना दिया, बल्कि सामाजिक शक्तियों और सरकार को एक दूसरे से अधिकाधिक दूर कर दिया। इससे सरकार लोकमत के और भी प्रतिकूल होगई।

सन् १८६० के बाद विद्यार्थी-समुदाय की हलचल, उसके फलस्वरूप चले हुए मुक़दमे, और सन् १८६३ की पोलैण्ड के विद्रोह से पैदा हुई अशान्ति की बातों ने सरकार और जनता को एक दूसरे से बिल्कुल अलग कर दिया। ज्यों ज्यों सरकार का दमन बढ़ता गया, त्यों त्यों जनता की विरोधाग्नि तीव्र होती गई। सन् १८८० तक यह हालत होगई कि रूस का आन्तरिक जीवन और राजनीति पारस्परिक सङ्घर्षण में लिप्त होगई।

पहली मार्च की घटना ने जनता की विचार-शक्ति को जागृत कर दिया, क्योंकि स्वभावतः वह यह सोचने लगी कि यह क्या हुआ और क्यों हुआ? पिछली बात ने उसका ध्यान रूस की सामयिक स्थिति की ओर आकर्षित किया। क्रान्तिकारी प्रचार का भी तो यही अर्थ था कि जनता का ध्यान देश की वर्त्तमान स्थिति की ओर आकर्षित करे, तथा लोगों में असन्तोष फैलावे। अतः पहली मार्च ने हमारी दोनों बातें पूरी कर दीं, वे यह कि, मार-काट की दृष्टि से ज़ार की हत्या होगई और प्रचार की दृष्टि से जनता में जागृति फैल गई।

रूस, कृषि-प्रधान देश है। वहाँ की आबादी का बड़ा भाग किसानों का है। इस हत्या से किसानों के ग्रामीण वायुमण्डल में हलचल मच गई। वहाँ भी यह प्रश्न उठा कि ज़ार को किसने और क्यों मारा? अपनी अपनी समझ के अनुसार, इस बात के केवल दो ही तरह के जवाब थे। पहला यह कि, ज़ार को साम्यवादियों ने इसलिए मार डाला कि वे किसानों का भला चाहते हैं और साथ ही यह भी कि, किसानों के पास ज़मीन उनकी ज़रूरतों के अनुसार काफ़ी हो, और अधिकारी आदि के पञ्जे से वे आज़ाद होजावें। दूसरा यह था कि, रईस और ज़मीदारों ने यह हत्या की है इसलिए कि, वे अपने हक़ के लिए ज़ार से लड़ रहे थे और जो ग़ुलामी की प्रथा बन्द कर दी गई थी, वे फिर उसे जारी कराने के पक्ष में थे। ऊपर कही हुई दोनों ही सूरतों में, किसान हमारे पक्ष में थे, क्योंकि हमारे और उनके स्वार्थ मिल गये थे। इस प्रकार इस हत्या ने वह काम कर दिखाया जो हमारे प्रचार की कई दशाब्दियों से पूरा न होसकता था। लोग खुल्लमखुल्ला हमारी कमेटी से कहते थे कि आकर हमारे ऊपर शासन करो। दुःख है कि फ़सल इस प्रकार पकी हुई खड़ी थी, किन्तु हमें उसके काटने-वाले पैदा न थे। मतलब यह है कि सरकार के मुक़ाबले में, हमें अपनी सरकार क़ायम करने के लिए, विश्वस्त और अनुभवी कार्य-कर्त्ताओं की कमी थी। किसानों के इस ख़याल ने कि रईस और ज़मींदारों ने मिलकर उन्हें फिर से ग़ुलामी के पञ्जे में जकड़ने के लिए ज़ार की हत्या की है, वह वायुमण्डल पैदा कर दिया जिसमें, रईसों और ज़मीदारों का ऐसा क़त्लेआम भी सम्भव होगया, जैसा कि, इटली पर चढ़ाई करते वक्त लौम्बार्डों ने रोमन रईसों

का किया था। अब हमें केवल इन महान शक्तियों का उपयोग करना था।

पहली मार्च को रूसी सत्ता पर पायी हुई विजय ने यह सिद्ध कर दिखाया कि एक सुसङ्गठित दल बड़े से बड़े साम्राज्य पर विजय प्राप्त करने का साधन होसकता है। इस हत्या के बाद देश-व्यापी विद्रोह इसलिए नहीं हुआ कि उसके लिए अभी और भी अधिक परिश्रम और उद्योग की ज़रूरत थी और इस समय ऐसा करना हमारी पार्टी के प्रोग्राम में भी नहीं था।

इस घटना से रूस का सामाजिक और राजनैतिक निर्माण नहीं हुआ। हम इस स्थिति में नहीं थे, और सरकार सचाई से ऐसा करती ही क्यों? इतनी आशा ज़रूर थी कि दमन, और शासन-प्रणाली में कुछ फ़र्क़ पड़ेगा और थोड़ी बहुत रियायतें तथा कुछ आज़ादी भी मिल जायगी, जिससे देश के जीवन में शान्ति रहे। यह ख़याल जनता, देश, नौकर-शाही और स्वयं ज़ार, सभी के लिए झूठा साबित हुआ। न शान्तिमय जीवन के ही कोई आसार थे और न ज़ार ही के सही-सलामत बचे रहने के। घटना-चक्र भविष्य के गर्भ में निहित था और भविष्य निराशा-पूर्ण था।

हमारे पारस्परिक सङ्घर्षण से समाज अधोगति के गर्त्त में जा पड़ा। विप्लव के दिनों में समाज में मनुष्यता और उदारता नहीं रहती। हिंसा, राष्ट्रीय जीवन के विकास को धक्का पहुँचाती है और उसमें अराजकता के साथ पशुता और क्रूरता के भावों को जागृत करती है। हत्यारे को डाइ-नामाइट, पिस्तौल और फाँसी के सिद्धान्त प्रोत्साहन देते हैं। क्रान्तिकारी

इतना जल्दबाज, होजाता है कि अपने जीवन ही में किये हुए कामों का प्रतिफल देखने के लिए हत्या ऐसे भयङ्कर कामों को कर बैठता है। इस दशा में दोनों ओर के अत्याचार सामाजिक जीवन का अङ्ग बन जाते हैं।

क्रान्तिकारियों में यह बहुत अच्छी बात थी कि उनमें आपस में बहुत मेल था। लोगों में यह ख़याल था कि हम जो कुछ करते हैं वह उनकी उन्नति के लिए करते हैं। जनता हमारे मार-काट के कामों से इस-लिए और भी सहमत थी कि इन बातों से हमारा कोई व्यक्तिगत लाभ न था और फिर भी, हम देश के हित के लिए अपना सर हथेली पर लिये फिरते थे और जेल, कालापानी, फाँसी आदि सभी कुछ सहन करते थे। लोग हमें दुर्लभ नागरिक गुणों के लिए आदर्श समझते थे और हमारे आत्म-बलिदान और अद्भुत वीरता की सराहना करते नहीं अघाते थे।

दमन-चक्र

उधर सरकार के हिंसात्मक कार्यों ने कहीं अधिक भयानक रूप धारण कर लिया था। लिखना और बोलना बड़ी सख़्ती से बन्द कर दिया गया था और रूसी क़ौम आज़ादी से वञ्चित कर के बिलकुल मुर्दा बना दी गई थी। दर्जनों आदमी फाँसी पर चढ़ा दिये गये, जेलें भर दी गईं, और अगणित आदमी इन्तज़ामिया तौर पर निर्वासित कर दिये गये। साइबेरिया की खानों और सेंट्रल जेलों में मज़दूरों को बुरी-बुरी गालियाँ देकर बहुत अपमानजनक व्यवहार किया जाता था। वहाँ मार-पीट एक मामूली बात होगई थी। हवालात में कोड़े

लगना और मर्दों के सामने स्त्रियों को नङ्गा कर देना भी एक साधारण बात थी। इन सब बातों से जनता सरकार के विरुद्ध प्रति-हिंसा के भाव से प्रेरित होकर बहुत भड़क गई और चारों ओर से आवाज़ आने लगी—घूँसे का जवाब घूँसे से दो, और लाठी का जवाब लाठी से! खुले-आम दी गई फाँसियों ने भी लोगों के उभड़ने में सहायता पहुँचाई। सरकार को वर्त्तमान ख़तरों से बचाने के लिए एक बड़ी संख्या में ख़ुफिया पुलिस नियुक्त करनी पड़ी। शाही रुपये से जासूसों की एक फ़ौज बन गई। उसमें समाज की सब श्रेणियों के आदमी मौजूद थे। सेनापति, शाही घराने की औरतें, अफ़सर, वकील, अख़बार-नवीस, छात्र, छात्राएँ और बहुत कम उम्र के बच्चे भी उसमें शामिल थे। हम यह जानते थे कि धन की लिप्सा आदमी से नीच से नीच कर्म करा बैठती है। फारस के सोने के जूते ने, ग्रीस के बड़े-बड़े व्यक्तियों को अपनी मातृ-भूमि बेच देने को प्रेरित कर दिया था! मानव-स्वभाव में स्वभावतः जो धन की लिप्सा मौजूद है, हमारी सरकार ने यथाशक्ति प्रत्येक अवसर पर उसका पूरा उपयोग किया। बड़ी-बड़ी सुन्दरियों ने पहले तो युवकों को अपने माया-जाल में फँसा लिया, फिर उनके साथ विश्वासघात किया। जासूसों द्वारा क्रान्तिकारी समितियां स्थापित कराई गईं, उनका सङ्गठन कराया गया, और बाद में विश्वासघात करके उनका ख़ात्मा कर डाला गया! बहुत ही कमीनेपन से लोगों के साथ दग़ा की गई, लोगों को फँसाने के लिए झूठे मुख़बिर बनाये, और उनसे मन-चाहे बयान कराये गये; विश्वासघातियों को बड़े-बड़े ओहदे दिये गये; यह काली करतूतें चाँदी के जूते के बल पर की गईं! अधकचरे क्रान्तिकारियों को,

रुपये-पैसे, सज़ा मुआफ़ करने, जेल से छोड़ देने आदि के प्रलोभन देकर फोड़ लिया गया। यही सबसे ज़बर्दस्त धक्का था, जो हम लोगों को लगा। हमारे लिए आज़ादी खोदेना तो सह्य था, किन्तु यह बात सच-मुच असहनीय थी कि जिस आदमी के लिए हम कल तक जान देते रहे हैं, और अपने सगे भाई की तरह हृदय से प्यार करते रहे हैं, वही आज हमें गिरफ़्तार कराते हुए हमारा उपहास करता है!

यह सब बातें न्याय के नाम पर की जा रही थीं! इन सब बातों से ज़ारशाही और समूचा अधिकारीवर्ग मनुष्यता की नीचतम पराकाष्ठा को पहुँच चुका था!

हमारे ऊपर एक गहरी मार और पड़ी। हमें अस्त-व्यस्त करने के लिए, क्रान्तिकारी-क्षेत्र में फूट डलवाने के अभिप्राय से, सरकार ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। एक ओर तो पुलिस का षड्यंत्र और जासूसों के हाथ, और दूसरी ओर हममें से कुछ लोगों की अदूरदर्शिता और लाप-र्वाही ने हमारे क्रान्तिकारी वायुमण्डल को ऐसा बना दिया जिससे सच-मुच ही हममें आपस में जूता चल जाता और बिगाड़ होजाता! परन्तु तपे हुए क्रान्तिकारी इन चालबाज़ियों में न फँसे। इसका कारण यह था कि हम सब साम्यवाद के विशुद्ध सिद्धान्तों में रँगे हुए थे, और हमारी कोई व्यक्ति-गत आर्थिक आवश्यकताएँ न थीं। दूसरे, हम लोग साधुता के वायुमण्डल में पले और चरित्र की नैतिक कसौटी पर कसे हुए थे।

१२
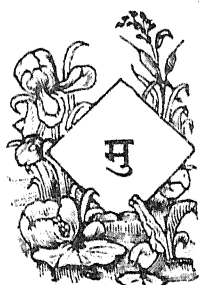
फ़ौजी अफ़सरों में

मुझे कमेटी के हुक्म से स्थानीय प्रबन्ध के लिए सेंट-पीटर्सबर्ग से ओडेसा जाना पड़ा। वहाँ मुझे बहुत विश्वासपात्र और कार्य्यशील व्यक्ति मिले। एक ऐसे व्यक्ति के द्वारा, जो पहले फ़ौज में रह चुका था, बहुत से फ़ौजी अफ़सरों से मेरा परिचय हुआ। जब उनसे मेरी मित्रता होगई, तब मुझे मालूम हुआ कि वे लोग बड़े अच्छे आदमी हैं, उनके विचार और आदर्श ऊँचे हैं, और काम भी करना चाहते हैं, परन्तु उनमें सङ्गठन और प्रचार करने की शक्ति नहीं है। उन लोगों ने कभी असली क्रान्तिकारी ढंग पर काम नहीं किया था। जब मैंने उनसे मित्रों में अपना कार्य्यक्षेत्र बढ़ाने को कहा तब उन्होंने कह दिया कि अफ़सरों में इस तरह के आदमी ही नहीं हैं। परन्तु वास्तव में बात यह थी कि नौसेना के बहुत से अफ़सर ख़ूब काम कर रहे थे और फ़ौज से उनका पारस्परिक सम्बन्ध बहुत अच्छा था। उन्होंने अपने यहाँ काम करने के लिए हमारी कमेटी के सैनिक-विभाग से एक आदमी माँगा। इसलिए

हमारे यहाँ से बुटसेबिच ओडेसा भेज दिया गया। बुटसेबिच ने वहाँ जाकर ख़ूब काम किया, सब अफ़सरों का बहुत मज़बूत सङ्गठन बना दिया और उन्हें सशस्त्र विद्रोह के लिए तैयार कर दिया, और साथ ही उनसे यह भी तय कर लिया कि हमारी कमेटी के आदेशानुसार उस विद्रोह में वे अपनी फ़ौजों सहित शामिल होंगे। अब उत्तर और दक्खिन के उन फ़ौजी अफ़सरों में पारस्परिक सम्बन्ध होगया जिनके विचार क्रान्तिकारी थे। इस वक़्त केन्द्रस्थ फ़ौजी विभाग में ५० मेम्बर होचुके थे।

१३

केन्द्र

र की हत्या के बाद क्रान्तिकारी दल का केन्द्र सेंट-पीटर्सबर्ग से हटाकर मास्को में बना दिया गया। ६ महीने ओडेसा में काम करने के बाद मैं भी वहाँ पहुँच गई। मेरे जो साथी दमन में पिसने से बच गये थे, उनसे मिलने को मैं बहुत उत्सुक थी। हमारी कार्यकारिणी कमेटी को जो नुक़सान हुए, वहाँ उन्हें देखकर मुझे बहुत चोट लगी। हम यहाँ किसी विशेष सुविधा के अभिप्राय से नहीं, बल्कि इसलिए चले आये थे कि सेंटपीटर्सबर्ग में अब हमारा पुलिस से सुरक्षित रह सकना असम्भव था। सेंटपीटर्सबर्ग देश की राजधानी होने के कारण साम्राज्य भर के जीवनोपयोगी कामों का केन्द्र था और इसीलिए वहाँ क्रान्तिकारी आन्दोलन का भी केन्द्र था। हम यह अच्छी तरह जानते थे कि यह जगह छोड़कर मास्को चला आना हानिकारक है, क्योंकि यहाँ हम पार्टी के काम के लिए देश की उत्कृष्ट और प्रातिनिधिक शक्तियों का उपयोग कर सकते थे। यहीं से देश के सभी प्रान्तों को, सामाजिक और राजनैतिक सुधारों में प्रोत्साहन

मिलता था। देश भर की क्रान्तिकारी समितियों का उद्गम-स्थान यहीं था। प्रचार के लिए देश के कोने कोने में पहुँचनेवाले हमारे अख़बार केवल यहां से निकलते थे। बड़ी से बड़ी साहित्यिक शक्तियाँ यहीं केन्द्रित थीं। हमारे सब मुक़द्मे यहीं आते थे। इन्हीं सब कारणों से हमें अपने दल की भरती के लिए यहाँ बहुत बड़ी संख्या में आदमी मिल जाते थे। रूस भर के शहरों की अपेक्षा सेंटपीटर्सबर्ग में उद्योग-धन्दे, कारखाने आदि बहुत थे, और यहाँ के मज़दूरों में प्रचार के लिए क्षेत्र बहुत उपयुक्त था। यहाँ के विद्यार्थी-समुदाय में काम करने का भी उतना ही अच्छा अवसर था। इसीलिये यह जगह छोड़ देने से ऐसा मालूम पड़ता था कि मानों हमारा क्रान्तिकारी आन्दोलन मास्को में निर्वासित कर दिया गया है।

मास्को में क्रान्तिकारी आन्दोलन कभी लगातार जारी नहीं रहा, किन्तु सेंटपीटर्सबर्ग में उसकी श्रृङ्खला कभी टूटी ही नहीं। मास्को में जब यह आन्दोलन उमड़ा, तभी दमन ने उसे ख़त्म कर डाला, किन्तु सेंटपीटर्सबर्ग में दमन से यह अधिकाधिक बढ़ता ही गया।

कमेटी की वर्त्तमान दशा

कमेटी के २३ मेम्बरों में से अब केवल ८ बचे थे और उनमें भी हम तीन स्त्रियाँ थीं। मेरे सिवा, ओशनाना और कौर्बा भी थीं। जो लोग हमारी पार्टी के आधार-स्तम्भ थे और जो अपनी उज्ज्वल कृतियों के कारण, संसार में बहुत प्रसिद्ध होचुके थे, वे फाँसी पर चढ़ चुके थे, या चढ़ने को थे। हमारे अन्य ऐसे साथी भी, जो प्रत्येक दिशा में देश के पथ-दर्शक थे, अब कार्य-क्षेत्र में नहीं थे। सन् १८७९ की अपेक्षा अबकी स्थिति में

ज़मीन आसमान का अन्तर था। न वे दिमाग़ ही रहे और न काम करने वाले वे हाथ ही।

इस प्रकार पुरानी कमेटी तो ख़त्म होचुकी थी, और वर्त्तमान केन्द्रस्थ कमेटी अपना पुराना चरखा चलाने में असमर्थ थी। अब हममें से ऐसा कोई आदमी नहीं था जो देश का सर्वमान्य नेता होता। हम देश-व्यापी सशस्त्र विद्रोह खड़ा करने में असमर्थ थे। किसी भी तरह से क्रान्तिकारी क्षेत्र को विस्तृत और सुदृढ़ बनाने के लिए प्रचार और सङ्गठन की ज़रूरत थी। प्रान्तों और देहात में काम करने के लिए हमें बहुत से नौजवान मिल गये और हमें किसी भी प्रकार की कमी न रही। सरकार के दमन, चाँदी के जूते के प्रयोग, अथवा जासूसों की हरकतों से, हमें केन्द्र और कमेटी में काम करने को आदमी चुनने के नियम बहुत ही कड़े और आदर्श बहुत ऊँचा कर देना पड़ा। मतलब यह कि हमें अब ऐसे आदमियों की ज़रूरत पड़ी जो बहुत अनुभवी और उपयुक्त हों।

जनता की आशा

ज़ार की हत्या से चारों ओर खलबली तो मच ही उठी थी, परन्तु जनता हमारी वास्तविक शक्ति से परिचित नहीं थी। उसे आशा थी कि अभी हमारी ओर से ज़ारशाही पर बहुत से आक्रमण होंगे, क्योंकि, हम अपने अख़बारों में यह घोषणा कर चुके थे कि हम एक के बाद दूसरे ज़ार की हत्या तब तक करते रहेंगे, जब तक कि निरंकुश सत्ता की जगह देश में बिल्कुल स्वतन्त्र संस्थाएँ न स्थापित होजायँगी।

असल बात यह है कि एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय की हत्या के बाद, मेरा

विचार नये ज़ार को मारने का भी हुआ था। अपने बाप के मारे जाने के एक-दो दिन बाद नया ज़ार हमारी उस पनीर-वाली दुकान की सड़क से निकला था। इससे पता चलता है कि पुलिस को हमारी दुकान के गुप्त रहस्य का पता न था। कमेटी ने मेरी यह सलाह अस्वीकार करदी। दुकान तोड़ दीगई और साथ ही इस ख़याल का भी ख़ात्मा होगया। जनता और सरकार ने यह समझा कि हम लोग किसी नये आक्रमण की तैयारी में लग रहे हैं, इसीसे वातावरण शान्त है। चारों ओर हमारी कार्यकारिणी कमेटी की धाक जम गई। लोग यह देखने लगे कि अबकी बार हमारी ओर से किस प्रकार का आक्रमण होता है। जनता यह समझ गई थी कि हमारी कार्यकारिणी कमेटी ही रूस के भाग्य का अन्तिम निपटारा करनेवाली महान शक्ति है।

इधर नौकरशाही ने घोषणा कर दी कि कम से कम २५ वर्ष तक रूस में भयङ्कर दमन के बिना काम न चलेगा। अप्रैल की शाही घोषणा से शासन-सुधार का स्वप्न मिट्टी में मिल गया। लौरेस मेलिकौव ऐसे केवल दिखावटी उदार आदमी भी, निकाल दिये गये।

हमारे डर से नये ज़ार का राज-तिलक नहीं हुआ। अपनी गिरफ़्तारी के समय तक पैरौव्स्काया ने ज़ार के ऊपर निगाह ज़रूर रखी। ज़ार भी अपने महल में छिपा हुआ क़ैदी की तरह रहता था, और उसके पास लोगों के आने की मनाही थी। यह सब होते हुए भी, हमारे पास उसकी हत्या के लिए कोई साधन नहीं था। अब कमेटी में इस प्रश्न पर कभी विचार तक न होता था। नये ज़ार एलेक्ज़ेण्डर तृतीय के नाम हमारी कमेटी का जो पत्र भेजा गया, उसके मुताबिक़ कोई कार्रवाई नहीं हुई।

इसलिए जनता इस बात के लिए उत्सुक थी कि हमारा काम बराबर जारी रहे ।

मास्को-दल का अन्त

मास्को पहुँचने पर हमारे रहने और काम करने की उचित व्यवस्था न हो पाई । पकड़-धकड़ के मारे सारे वायुमण्डल में खलबली मच रही थी, और हममें से किसी को भी, किसी क्षण पकड़े जाने की सम्भावना थी । उधर यह भी अफ़वाह फैल गई कि स्थानीय कार्य्यकर्त्ताओं में से कोई पुलिस से मिला हुआ है । इधर हमारी कमेटी की यह घोषणा हुई कि १८ मार्च को एक मुख्य अधिकारी मार डाला जायगा । इससे पुलिस के और भी कान खड़े होगये । मुझे भी यह सलाह दीगई कि अपने दल के किसी मेम्बर से मिलने में भी, ज़रा भी देर किये बिना तुरन्त ही मास्को छोड़ देना चाहिए । इसलिए यह निश्चय हुआ कि मैं ख़ारकौव जाकर काम करूँ, क्योंकि वहाँ काम करने वाली मेरिया अपने स्वामी के निर्वासित होजाने पर, ख़ुद भी साइबेरिया चली गई थी ।

मास्को में ख़ूब पकड़-धकड़ हुई । पार्टी का छापाखाना बन्द होगया । उसमें काम करने-वाले सब आदमी तितर-बितर होगये । इस प्रकार मास्को के दल का अन्त होगया !

१४

खारकौव में

रकौव में मुझे योग्य और कार्यशील आदमियों की एक छोटी सी समिति मिली। उसके आदमियों का काम था जनता में प्रचार तथा मज़दूरों में साम्यवाद की शिक्षा फैलाना। उद्योग-धन्दों, शिक्षा और संस्कृति की दृष्टि से खारकौव कोई महत्त्वपूर्ण जगह नहीं थी। इसलिए यहाँ के युवक-समुदाय में हमारे लिए कोई उपयोगी क्षेत्र न था। यहाँ की समिति के पास कोई आर्थिक साधन नहीं था, इसलिए आस-पास के शहरों में प्रचार के लिए जाना भी बहुत कम हो पाता था।

जून में यह ख़बर आई कि हमारी कार्य्यकारिणी कमेटी के बाक़ी मेम्बर पकड़े गये और हमारे केन्द्रों तथा वैज्ञानिक प्रयोगशाला पर पुलिस का क़ब्ज़ा होगया। ओशनीना और टीखोमीरोव देश के बाहर थे, इसलिए अब कमेटी के प्रतिनिधियों में रूस में केवल मैं ही अकेली थी।

पुलिस के प्रयत्नों से हमारी पार्टी मृतक प्रायः होचुकी थी। अतः मैंने केन्द्रस्थ शक्ति को पुनस्सङ्गठित करने के लिए, अधिक से अधिक उप-

युक्त और शक्तिशाली शक्तियों को एकत्रित करने में अपनी जान लड़ादी। सेंटपीटर्सबर्ग, मास्को, और ओडेसा में हमारे कामों का खात्मा होचुका था। कियेव और खारकौव के स्थानीय दल अनुभव-हीन थे। मैंने सोचा कि क्रान्तिकारी आन्दोलन के उन नेताओं, को, जो कार्य्यकारिणी कमेटी के मेम्बर नहीं हैं, किन्तु देश भर में तितर-बितर होचुके हैं, और जो, दमन के पञ्जे से अछूते बच गये हैं, एकत्रित करके एक मीटिङ्ग कर डालूँ और उसमें नये सिरे से काम करने के लिए एक कार्य्यक्रम बनवालूँ। यह काम मैंने अपने ऊपर ले लिया। जो सामग्री तैयार थी, उसका उपयोग करके, तथा नये आदमियों की भरती करके मैंने जो केन्द्रस्थ कमेटी बनाई, उसमें शायद कुछ कमी थी। इसका कारण यह था कि हम सबने अपने काम को वहीं से आरम्भ कर दिया, जहाँ कि पहली कमेटी ने उसे छोड़ा था। यह न करके, यदि हमने किसी दूसरी तरह से काम शुरू किया होता, तो सम्भवतः अधिक अच्छा होता।

पुरानी पार्टी को काम करने के लिए जो सामग्री मिली थी, वह उस समय के अनुसार उपयोगी थी, क्योंकि ज़ारशाही और पुलिस के ज़ुल्मों के होते हुए भी, वह मुर्दा और अकर्मण्य रूस के जगाने के अपने उद्देश में सफल हुई, और उसने देश की भावी सन्तति की नस नस में क्रान्ति-कारी भाव भर दिये। इस प्रकार देश के उद्धार पथ-प्रदर्शकों के इतिहास में पार्टी का नाम सदा के लिए अमर होगया। पहली मार्च के बाद, हमारी पार्टी ने सोच रखा था कि ज़ार की हत्या के फलस्वरूप, आर्थिक कठिनाइयों से प्रेरित होकर जनता राजनैतिक मैदान में कूद पड़ेगी, और सरकार के सामने अपने राजनैतिक अधिकारों की माँग पेश करेगी।

परन्तु जनता कान में तेल डालकर चुपचाप बैठी रही, और उसकी यही चुप्पी हमारी पार्टी के अन्त का कारण होगई। यही कारण है कि पुरानी पार्टी का रास्ता अख़्त्यार करके, हमने भूल की; हमें अब मार-काट के काम से अलग रह कर, रचनात्मक काम में लग जाना चाहिए था। वह कार्य्यक्रम रूस की दरिद्रता के निवारण के लिए बनना चाहिए था। देश के किसानों के पिछड़े रहने और अपने आर्थिक साधनों में पंगु बने रहने, अथवा घोर दरिद्रता में जकड़े रहने, उद्योग-धन्दे न होने के कारण प्रभावशाली मज़दूर-सङ्घों के अभाव, और पुलिस के नियंत्रण से हमारे निज के अख़बारों के बन्द होने से हमारी पार्टी शक्तिहीन होगई। इस-लिए जुरूरत इस बात की थी कि अब काम करने-वाली पार्टी आर्थिक समस्या के नाम पर राजनैतिक काम करे। सन् १८८३ में एक ऐसा दल बना भी, जिसका उद्देश था मज़दूरों की तकलीफों को दूर करना। यही दल सन् १८९८ में सामाजिक प्रजातंत्रवादी मज़दूर-सङ्घ (Social Democratic Labour Party) के नामसे प्रसिद्ध होगया और उसने श्रमजीवियों में काम करना आरम्भ कर दिया। आगे चल कर इसीमें से वह कम्युनिस्ट पार्टी निकली, जो कि आज समस्त रूसी साम्राज्य पर शासन कर रही है।

पुरानी पार्टी ने, जो ज्वलन्त और साहसिक काम किये थे, उससे हमारे कार्यकर्त्ताओं का मानसिक क्षितिज बहुत विस्तीर्ण होगया। उनके लिए अब ऐसे कामों को छोड़कर, अधिक श्रम और देर में लाभ पहुँचाने वाले रचनात्मक कामों में जुट जाना प्रायः असम्भव ही था।

मेरी स्कीम थी कि केन्द्रस्थ कमेटी में वे पाँच फ़ौजी अफसर ले लिये

जायँ जो चरित्र और योग्यता में विशेषतया उपयुक्त हों। मैं चाहती थी कि फ़ौज से इस्तीफ़ा देकर, तथा हमारे सैनिक-विभाग से हटकर वे कमेटी में आजावें। मैंने स्पैरडोनी और डिगाइयैव को कमेटी का मेम्बर बना लिया था। वे दोनों ही मेरी बात से सहमत थे। यह तय हुआ कि डिगाइयैव फ़ौज में चक्कर लगावे, और सेंटपीटर्सबर्ग, ओडेसा और निकोलाइयैव से लौटकर वह अपनी पत्नी के साथ ओडेसा में रहकर प्रेस का प्रबन्ध करे। मैं ओडेसा में प्रेस का आयोजन कर रही थी।

सन्धि की बातचीत

१६ अक्टूबर को मिखेलॉवस्की, डिगाइयैव की अनुपस्थिति में मुझसे मिलने के लिए ख़ारकौव आया। उसने आकर मुझे ख़बर दी कि सरकार ने निकोलैज़ से कहा है कि वह सरकार और कार्यकारिणी के बीच पड़कर सन्धि करा दे। सरकार अब झगड़े से ऊब गई है, और वह इस शर्त पर शासन-सुधार के लिए तैयार है कि हम मार-काट बन्द करदें और नये ज़ार का सकुशल राज-तिलक होजाने दें। शासन-सुधारों के अतिरिक्त, राज-तिलक के अवसर पर एक शाही घोषणा होगी, जिसमें समस्त राजनैतिक क़ैदियों की रिहाई, प्रेस की आज़ादी, और शान्तिमय साम्यवादी प्रचार की इजाज़त दे दी जायगी। अपनी सचाई को साबित करने के लिए सरकार इज़ाइयैव ऐसे क़ैदियों को छोड़ने को तैयार थी, जिनके लिए फाँसी का हुक्म होचुका था। मिखेलॉवस्की ने निकोलैज़ से कह दिया कि मैं इस मामले में कार्यकारिणी कमेटी से पूछ-ताछ करूँगा।

अब चूंकि रूस में इस समय कार्य्यकारिणी कमेटी की मैं ही अकेली मेंबर थीं, इसीलिए मिखेलौव्स्की ने मुझे इन सब बातों की रिपोर्ट लाकर दी, और यह भी कहा कि निकोलैज़ से सरकार के एक ख़ास आदमी काउण्ट डैशकैाव ने यह सब बातें कही हैं। इससे मैं यह समझी कि सरकार जो चाल गोल्डेनबर्ग के साथ १८७६ में चल चुकी है वही चाल अब वह मेरे साथ चल रही है। सरकार ने इसी तरह गोल्डेनबर्ग को भी सुधार वग़ैरह करने का विश्वास दिलाया था, और यह कहा था कि अपने साथियों को बलि चढ़वा कर देश में शासन-सुधार करा लो! धोखे में आकर उस देशभक्त ने अपने साथियों की हुलिया तो बतला दी, किन्तु नाम किसी का भी नहीं बताया, और न किसी के साथ विश्वास-घात ही किया। जब उसे मालूम हुआ कि वह धोखे में फँस गया, तभी उस वीर ने अपनी आत्महत्या कर डाली!

मेरे सब एतराज़ों के जवाब में मिखेलौव्स्की ने यह कहा कि इस वक्त तुम्हारी पार्टी मार-काट करने में असमर्थ है, अतः ऐसा मौक़ा हाथ से क्यों खो रही हो जिसमें हानि कुछ नहीं, पर लाभ ही हो सकता है।

समझ-सोचकर मैंने यह निश्चय किया कि निकोलैज़ से रूस में इस मामले में कोई बातचीत न की जाय, बल्कि विदेश में बसे हुए टिकोमीरोव और ओशनीना से बातें हों, और मैं उन्हें पहले ही से इस बात की सूचना दे दूं, तथा यह भी लिख दूँ कि इस सम्बन्ध में मेरा क्या मत है। साथ ही मैं उन्हें यह भी सूचित करने को थी कि इस सम्बन्ध में उनका जो कुछ भी मत हो, उसीके अनुसार काम करें, किन्तु रूस में हम उसे मानने को बाध्य न होंगे। मेरा विचार था कि यदि स्थिति अनुकूल होगई तो

हम मार-काट करने के लिए स्वतन्त्र होंगे। मैंने यह भी तय कर दिया कि निकोलैज़ से यह कह दूँ कि मुझे यहाँ कमेटी का कोई मेंबर नहीं मिला, जो मेम्बर हैं भी, वे विदेशों में हैं। डिगाइयेव और स्पैरडोनी भी मेरे विचार से सहमत हुए। मैंने सैलोवा को ओडैसा से बुलाकर, इस काम के लिए टिकोमीरोव के पास पैरिस भेज दिया।

१५

डिगाइयेव

गाइयेव कार्य्यकारिणी कमेटी का कभी मेंबर नहीं रहा था, परन्तु उसके मेंबरों का उसपर विश्वास था। सेंटपीटर्स-बर्ग के हमारे गुप्त रहस्यों का उसे पता न था, किन्तु इस कारण नहीं कि वह विश्वासपात्र न था, बल्कि इसलिए कि, प्रत्येक बात को गुप्त रखना हमारी पार्टी का सिद्धान्त था। वह वहाँ के हमारे अनेक स्थानों में केवल इसलिए आता-जाता न था कि पुलिस उसे पह-चानती थी और उसके आने-जाने से हमारे आदमी पकड़ लिये जाते। यह पासशुदा रेल्वे-इञ्जीनियर था, और रेल्वे में नौकरी भी कर चुका था। यह परिश्रमी तो इतना था कि १० से ४ बजे तक रेल्वे-दफ़्तर का काम करता, हिसाब पढ़ाता, तोपखाने में अपने मित्रों से मिलता-जुलता, क्रान्ति-कारी कामों में भाग लेता, और इसपर भी कमेटी के हुक्म को बहुत साव-धानी और ख़ूबी के साथ पूरा करने के लिए तैयार रहता था। जो कुछ कमाता था, वह सब परिवार के पालन-पोषण में लग जाता था।

तोपखाने के कालिज में भी यह पढ़ा था, और उस काम से भी

अच्छी तरह परिचित था। वहाँ से वह अपने राजनैतिक विचारों के कारण निकाल दिया गया था। वौलौड्या डिगाइयैव का भाई था। वह नौसेना के ट्रेनिङ्ग-स्कूल में पढ़ता था। वह भी अपने राजनैतिक विचारों के कारण निकाला गया। वौलौड्या क्रान्ति के लिए बहुत उत्सुक था, और काम करना चाहता था। सुडेकिन एक विख्यात, योग्य और अनुभवी जासूस था। डिगाइयैव ने उसकी हरकतों की ख़बर रखने के लिए, अपने भाई को उसके पास जासूसी काम करने के लिए भेज दिया था, जिससे कि सुडेकिन हमारे दल का कुछ अहित न कर सके।

ज़ार की हत्या के बाद डिगाइयैव पकड़ा भी गया, परन्तु बाद में छोड़ दिया गया। सुडेकिन को मारने के लिए, डिगाइयैव ने उसीसे मिलकर एक नौकरी भी करली, परन्तु इसी बीच में उसे काकेशस जाना पड़ा, इसलिए वह काम न हो पाया।

डिगाइयैव हमारे दल का तपा हुआ और पुराना साथी था, इसलिए नई कमेटी में उसको लेना आवश्यक होगया। यह सेंटपीटर्सबर्ग और क्रौंस्टाट में तोपखाने में लीडर भी रह चुका था और नौसेना-विभाग में सुखानौव के मित्रों से परिचित था। हमारे सैनिक-विभाग में होने के कारण, यह उसके काम से भी अच्छी तरह परिचित था।

१६

मेरी गिरफ़्तारी

सम्बर के अन्त में ऑडेसा से यह समाचार मिला कि वे पाँचों आदमी, जिनका प्रेस से सम्बन्ध था, डिगाइयैव, उसकी पत्नी और स्पैरडोनी सहित पकड़े गये हैं। इस बीच में मैंने जितना काम किया था, वह सब चौपट होगया। प्रेस तो केवल ४ हफ़्ते ही तक चल पाया।

मैं इस समय की दशा का कैसे वर्णन करूँ? चारों ओर विपत्ति के बादल उमड़ रहे थे। काम करने का कहीं कोई सहारा न था। मेरी स्थिति सचमुच बहुत डवाँडोल थी। यदि सब लोगों के सामने अपनी वास्तविक दशा पर कुछ भी प्रकाश डालती, तो हमारे आन्दोलन को बड़ा ज़बर्दस्त धक्का लगता। देश के जो युवक, मेरी उँगली के इशारे पर काम करने के लिए मेरी ओर देख रहे थे, उन्हें इस प्रकार छोड़कर मैदान से भाग जाना भी मेरे लिए असह्य था। इस असहाय अवस्था में चारों ओर अन्धकार देखकर, मैं केवल यही चाहती थी कि यदि ईश्वर किसी तरह इस ज़िन्दगी से छुटकारा दे दे तो प्राण बचें। इस प्रकार, मेरी मनोव्यथा,

अथवा क्रान्तिकारी आन्दोलन की भीतरी हालत का पता, मुझे बाहर से देखकर कोई न लगा सकता था ।

मेरी एक परिचित लड़की, जो पुलिस के अत्याचारों से बिल्कुल पिस चुकी थी, केवल मेरी ही ओर आशा-भरी दृष्टि से देख रही थी, किन्तु मेरी गिरफ़्तारी की ख़बर सुनकर वह रेल के नीचे कट-मरी ! चलते समय मिखेलौव्स्की ने मुझसे पूछा कि मेरा आगे का प्रोग्राम क्या है । मैंने कहा कि अब मैं टूटे हुए धागों को इकट्ठा करके फिर से जोड़ूंगी, अर्थात् क्रान्तिकारियों की बिखरी हुई शक्तियों को फिर इकट्ठा करके एक बड़ा सङ्गठन करूँगी । मेरे चरित्र की हार न मानने के गुण की, उसने कितनी सराहना की, यह उस समय मालूम पड़ा, जबकि उसकी मृत्यु के बाद, वे कवितायें छपीं, जो कि उसने मेरे सम्बन्ध में लिखी थीं ।

फ़रार

२० दिसम्बर को ओडेसा में प्रेस की ज़ब्ती आदि हुई थी । २३ या २४ जनवरी को मैं एक मित्र के मकान पर गई । वहाँ जब मैंने डिगाइ-यैव को खड़ा हुआ देखा तब मेरे आश्चर्य्य की सीमा न रही । उसने अपने फ़रार होकर यहाँ आजाने का हाल बतलाया । असल बात यह थी कि पुलिस उसे गिरफ़्तार करके घोड़ागाड़ी में कियैव पहुँचाने के लिए स्टेशन ले जा रही थी । रास्ते में डिगाइयैव ने अपनी जेब से सूँघने के लिए हुलास निकाला । मौक़ा पाकर अचानक उसने पुलिस के दोनों सिपा-हियों की आँखों में हुलास झोंक दिया और गाड़ी से कूद कर साफ़ ही नौ-दो-ग्यारह होगया ! ओडेसा आकर वह अपने उन मित्रों में, जो फ़ौजी

अफ़सर थे, छिपा रहा, बाद में निकोलाइयैव के अफ़सरों के साथ बना रहा, और फिर ख़ारकौव चला आया।

डिगाइयैव से यह भी मालूम पड़ा कि औडेसा में कोई ऐसा आदमी है, जो क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध में पुलिस को ख़बर दिया करता है। यहाँ मैंने उससे कह दिया कि मुझे मरक्युलौव से ख़तरा है, क्योंकि वह पार्टी से फूट गया है और मुझे पहचानता है। मैंने डिगाइयैव को अपने मकान पर आने-जाने के सब रास्ते बता दिये।

पुलिस के पञ्जे में

दो-एक दिन बाद मैं मकान से निकल कर, थोड़ी ही दूर चल पाई थी कि मरक्युलौव का सामना होगया। वहाँ पुलिस के सिपाही न थे, इसलिए उसने मुझे फौरन ही नहीं पकड़ा, और मैं चलती गई। मैंने सोचा कि मेरे पास कोई आपत्तिजनक चीज़ तो नहीं है? मुझे तुरन्त ही डाकख़ाने की एक रसीद का ख़याल आगया, और मैंने उसे फाड़ देने का निश्चय कर लिया। ज़रा आगे बढ़ने पर कहीं से दो सिपाही आ धमके और मैं गिरफ़ार करके, एक गाड़ी में कोतवाली भेज दी गई।

वहाँ मैं एक कमरे में खड़ी कर दी गई और एक औरत मेरी तलाशी लेने को आई। उसने मेरे सब कपड़े उतरवा कर देखे। मेरे बटुए में जो रसीद थी, वह मैं मुँह में डालकर हड़प कर गई! इस पर औरत ने बड़ी चीख़-पुकार मचाई। लोग दौड़े आये और समझे कि मैंने ज़हर खा लिया है, क्योंकि मेरे बटुए में अदृश्य स्याही के लिए पीला पोटेशियम पड़ा हुआ था, जिसे वे ज़हर समझ गये! कैदी की पोशाक में यहाँ से मैं सेंटपीटर्सबर्ग भेज दी गई।

१७

मुक़द्मे से पहले

मेरी गिरफ़्तारी से अधिकारी बहुत ख़ुश हुए। नये ज़ार एलेक्ज़ेण्डर तृतीय ने कहा—"ईश्वर को धन्यवाद है कि ऐसी ख़तरनाक औरत पकड़ी गई!" ज़ार ने मेरी एक बहुत अच्छी तस्वीर खिँचवा कर अपने पास मँगवा ली।

न्याय-विभाग के मिनिस्टर मुराइयैव, पुलिस के डाइरेक्टर आदि के सामने मेरी पेशी हुई। उनसे विभिन्न विषयों पर अनेक प्रकार की बातें हुईं। एक मिनिस्टर काउण्ट टालस्टाय ने, ज़ारों की हत्या के सम्बन्ध में, पार्टी के सिद्धान्तों पर बातें कीं। मैंने कहा कि यदि मेरे पास वक़्त होता, तो इस सम्बन्ध में आपके विचारों को सुधार देती, और आप अपनी ग़लती मान लेते। सरकारी वकील ने मज़ाक में पूछा कि क्या तुम सच-मुच यह उम्मीद करती हो कि काउण्ट टालस्टाय को भी तुम अपने विचारों में रँग लोगी? इस पर मैंने उत्तर दिया—"क्यों नहीं?"

पीटर और पौल के दुर्ग में

तीन दिन बाद मैं सेंट्स पीटर और पौल के क़िले में पहुँचा दी गई। यह वह जगह थी, जो शाही इच्छा के अनुसार किसी भी व्यक्ति विशेष

को बन्द रखने के काम आती थी। यहाँ जो आदमी पहुँच जाता था उसका ईश्वर ही मालिक था। अपने मुक़द्मे से पहले २० महीने तक मुझे यहाँ बन्द रहना पड़ा। इस बीच में मुझे पुलिस ने कई बार बुलाया। मैंने साफ़ कह दिया कि पहली मार्च सन् १८८१ तक के क्रान्तिकारी कारनामों के बता देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु बाद के मामलों के लिए मैं बिलकुल चुप रहूँगी। मैंने यह भी कह दिया कि बार-बार पूछ-ताछ करने की ज़रूरत नहीं है, मुझे काग़ज़-क़लम दे दिया जाय तो मैं सब बातें लिख भी सकती हूँ।

कुछ हफ़्ते बाद सेरीडा नामका एक फ़ौजी जनरल मेरे पास आया। उसने कहा कि फ़ौजों में राजनैतिक प्रवृत्तियों की जाँच करने के लिए ज़ार ने मुझे नियुक्त किया है। यह बहुत अच्छा आदमी था। बात-चीत से मालूम पड़ा कि यह भी रूस की वर्त्तमान स्थिति से असन्तुष्ट है, और निरंकुश शासन का समर्थक नहीं है। परन्तु वह राजनैतिक क्षेत्र में हत्याओं के विरुद्ध था। उसने साफ़ साफ़ कहा कि यदि मेरे सर पर क़र्ज़ का बोझ न लदा होता तो आज मैं इस जगह पर न होता। उसने यह भी ज़ाहिर किया कि वह बहुत से आदमियों को फाँस कर अपने इस ऊँचे अधिकार का दुरुपयोग नहीं करना चाहता। यदि वह चाहता तो अपने अधिकार से दर्जनों आदमियों को बलि का बकरा बना सकता था! वह बात का धनी निकला। उसने केवल हम ख़ास २४ आदमियों ही पर, जिनमें ६ फ़ौजी अफ़सर थे, मुक़द्मा चलवाया।

जनरल सैरीडा, उस लेख को पढ़ कर आया था जो मैंने लिखकर अधिकारियों को दे दिया था। उस लेख का बड़ा असर पड़ा। एक उच्च

अधिकारी ने तो यहाँ तक कह डाला कि वह लेख हम लोगों में उपन्यास की तरह पढ़ा जा रहा है ! न्याय-विभाग के मिनिस्टर मुराइयैव ने तो स्वयं उस लेख की नक़ल करके अपने पास रखली और कई वर्ष बाद उसे पढ़ने के लिए मेरे भूतपूर्व स्वामी फिलीपौव के पास भेज दिया। फिलीपौव न्याय-विभाग में मुराइयैव के नीचे एक अफ़सर थे।

क़िले में, मैं दो हफ़्तों में अपनी माँ और बहिन से केवल २० मिनट के लिए मिल सकती थी। मिलने-वालों और मेरे बीच में एक गज़ का फ़ासला रहता था और बीच में लोहे के जङ्गले लगे रहते थे। एक बार माँ और बहिन मुझसे मिलने आईं। मैंने बहुत कोशिश की कि अपनी प्यारी माँ का हाथ चूम लूँ, और बहिन ओलगा ने मुझे एक फूल देना चाहा, परन्तु हम दोनों ही को अपनी इच्छा के अनुसार ऐसा करने की इजाज़त नहीं मिली। ग्रीष्म के आरम्भ में मेरी माँ कैज़ाँ चली गई और बहिन इलाज कराने के लिए ओसैल चली गई।

अब मेरे जेल-जीवन का एकान्तवास आरम्भ होगया। धीरे धीरे मेरी आवाज़ कम हो गई और साथ ही बोलने की इच्छा भी। एकान्त में चुपचाप पड़ी रहना मैं पसन्द करने लगी। जब तब मेरी माँ और बहिन मुझसे मिलने आती थीं, परन्तु किसी से भी मिलना और बात-चीत करना मुझे सुहाता न था और मैं केवल इस कारण उनसे मिल लेती थी कि उनकी तबीयत दुखे नहीं।

सन् १८८४ के बसन्त में, मैं क़िले के दफ़्तर में बुलाई गई। वहाँ मुझे सरकारी वकील डौब्रिन्स्की और जेनरल सैरीडा मिले। उनके सामने बड़ी किताबें रक्खी हुई थीं। डौब्रिन्स्की ने मेरे हाथ में एक नोटबुक दे

दी और मुझसे पूछा कि इस लिखने को पहचानती हो कि नहीं ? मैंने कहा कि नहीं। उस नोटबुक में एक जगह डिगाइयैव के दस्तख़त थे, और २० नवम्बर लिखा हुआ था। पहले तो मुझे यह ख़याल हुआ कि कोई ग़लती है, क्योंकि २० दिसम्बर को तो प्रेस ही ज़ब्त किया गया था। फिर डौब्रिन्स्की ने कई जगह से पन्ने उलट कर मुझे दिखाये। अब सन्देह करने की कोई अधिक गुञ्जाइश न रही। डिगाइयैव देश-द्रोही हो-गया था। मेरे सामने बड़े महत्त्वपूर्ण काग़ज़ पड़े थे, उनमें लिखनेवाले ने, सरकार के हाथों में ऐसी हर एक बात सौंप दी थी जो उसे पार्टी के सम्बन्ध से मालूम पड़ी थी। उसने पार्टी के बड़े काम के आदमियों के नाम ही नहीं बता दिये, बल्कि ऐसे आदमियों की भी चर्चा कर दी जो पार्टी के बहुत ही गुप्त सहायक थे। उत्तर और दक्खिन के फ़ौजी अफ़सरों के साथ भी विश्वासघात किया गया और सैनिक-विभाग का एक भी आदमी ऐसा नहीं बचा जो उसके विश्वासघात का शिकार न हुआ हो ! उसने पार्टी की सारी शक्तियाँ सरकार को सौंप दीं, और जो आदमी पार्टी से ज़रा भी सम्बन्ध रखते थे, उनकी सारी क़लई सरकार के सामने खोल दी ! मैं उठ खड़ी हुई और कमरे में टहलने लगी। फिर बैठने पर, दक्खिन के फ़ौजी अफ़सरों के तहरीरी बयान मुझे दिखाये गये। हरएक बयान इस प्रकार शुरू होता था—"मैं अपनी कृतियों पर पश्चाताप करते हुए निम्नलिखित बयान देता हूँ !"

ओफ़ ! जो लोग क्रान्तिकारी कामों में बड़े उत्साह से भाग ले रहे थे, और जो प्रतिक्षण क्रान्तिकारी सिद्धान्तों पर बड़ी सरगर्मी से बहसें किया करते थे और सशस्त्र क्रान्ति के पक्ष में थे, उनका विश्वासघात मेरे लिए

सचमुच एक हृदय-विदारक बात थी ! डिगाइयैव का मुझसे मकान आदि के बारे में पूछ-ताछ करना, और पुलिस के दो सिपाहियों की आँखों में हुलास झोंककर भागना, यह सब हमारी आँखों में धूल झोंकना और हमारे आदमियों को फँसाने का एक जाल था ! इस विश्वासघात से मुझे अनुभव हुआ कि स्वार्थ-लिप्सा में फँसजाने पर मनुष्य का कितना नैतिक पतन होजाता है !

मेरे हृदय में अब मरने की इच्छा प्रबल हो उठी। परन्तु साथ ही मुझे एक काम के लिए जीवित रहना आवश्यक था। मुझसे पहले मेरे बहुत से साथियों ने अन्त तक अपना कर्त्तव्य पालन किया था। मेरा भी एक अन्तिम कर्त्तव्य रह गया था। वह यह था कि अवसर मिलने पर, कार्य्यकारिणी कमेटी के मेम्बर की हैसियत से बयान देते समय, संसार के सामने अपनी वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डाल दूँ, और अन्त में, जिन देशभक्तों के साथ डिगाइयैव ने विश्वासघात किया है, उन्हींके साथ खड़ी होकर, अपना और उनके भाग्य का अन्तिम फैसला भी देख लूँ !

इस काम के लिए अब यह आवश्यक था कि अपने दुर्भाग्य की ओर ध्यान ही न दूँ। इसलिए इन सब बातों से अपने दिमाग़ को आज़ाद रखकर पुस्तकें पढ़ने में तत्पर होगई। मैंने अँगरेज़ी में, मैकाले का इंग्लेंड का इतिहास और स्पेंसर के ग्रन्थ पढ़ डाले। राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयों पर भी मैंने बहुत सी किताबें पढ़ डालीं। उन दिनों मैंने अपनी बहिन ओलगा को प्रायः ९० पत्र लिखे थे। उनमें इन विषयों पर मेरे विचारों की झलक है।

मेरी उँगली का आपरेशन किया गया। डाक्टर ने कहा कि यदि इसका आपरेशन न होता तो शरीर में, ज़हर फैलजाने से बचना असम्भव

होजाता। मैं ४३ नम्बर की बहुत ही गन्दी कालकोठरी में बन्द रहती थी। यह देखकर डाक्टर ने मुझे उससे अच्छी कोठरी दिलवा दी।

१६ या १८ सितम्बर सन् १८८४ को मुझपर फ़र्द-जुर्म लगा दिया गया, और मामले के लिए मेरी ओर से एक वकील नियुक्त कर दिया गया। जब वकील मेरे पास आया तब मैंने उससे मुआफ़ी माँगी और कह दिया कि मुझे आपकी सेवाओं की ज़रूरत नहीं है। उसने मुझसे धीरे से कहा कि डिगाइयैव शुडेकिन को मारकर लापता होगया है। अब तो, दो विरोधी बातों के अन्धकार में, मैं और भी चक्कर में पड़ गई कि किसने, कैसे और क्या किया?

१८

मुक़दमा और सज़ा

सितम्बर को मैं क़िले में से निकाल कर "हवालात-भवन" में पहुँचा दी गई। यह जगह विचाराधीन क़ैदियों के रहने की थी। उस रात सिपाहियों की आपस की बातचीत से मैं सो नहीं सकी। दूसरे दिन माँ से भेंट हुई। अबकी बार बीच में कोई जङ्गला न था, इसलिए पहली बार माँ का हाथ चूमने का मुझे अवसर मिला। परन्तु अपनी मनोवृत्ति के कारण थोड़ी देर बाद ही मैंने माँ से चले जाने को कह दिया। दूसरे दिन सोमवार को मुक़दमा शुरू होने लगा।

सोमवार को मैं उस कमरे में पहुँचा दीगई, जहाँ कि मेरे १३ और साथी थे। हर दो आदमियों के बीच में नङ्गी तलवार लिये हुए एक आदमी खड़ा था, इसलिए एक दूसरे से गले मिलना तो दूर, हाथ से छूना तक असम्भव था। जो लोग सदा साहस और वीरता की उमङ्गों में फूले न समाते थे, आज उनका शरीर जर्जर होगया था और चेहरे पीले पड़ गये थे। ज़रा ख़याल तो कीजिए कि इस दशा में हमारी कटुता और शोक की

कोई सीमा होसकती थी ? अपने एक साथी के विश्वासघात के कारण हम आज यहाँ खड़े हुए थे। मुक़द्दमे की हर एक कार्रवाई और घटनाओं में डिगाइयैव का हाथ साफ़ मालूम पड़ता था।

सरकारी गवाह और विशेषज्ञ पेश हुए और हमारे विरुद्ध ऐसे सबूत पढ़ कर सुनाये गये जिनका अन्त ही न था। किसी अभियुक्त ने कोई जवाब नहीं दिया। केवल चैमोडानौवा ने अपने बड़े अच्छे भाषण में, अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का प्रयत्न किया। यहाँ तक कि ख़ुद मैं भी, जिसने उसे ख़ारकौव में बुलाया था, चक्कर में पड़ गई। वास्तव में शायद वह अपने किसी निजी काम से ख़ारकौव आई हो, और संयोग से क्रान्तिकारियों में पड़कर उसका सम्बन्ध प्रेस से होगया हो। लुडमिला वैल्केन्स्टाइन अदालती कार्रवाई से अलग रही। वह धीरे धीरे बातें करती रही। अदालत के प्रेसीडेंट को कई बार उससे बातें करने की मनाही करनी पड़ी।

मुक़द्दमों का यह क़ायदा था कि सबूत की गवाही आदि होजाने के बाद प्रेसीडेन्ट अभियुक्त से कहता था—"मुलज़िम, अब तुम्हें कुछ कहना हो तो कहो।" यदि अभियुक्त इस मौक़े को हाथ से खो दे, तो फिर उसके लिए कुछ भी कहने को कभी मौक़ा नहीं था। चाहे उसे फाँसी पर चढ़ना हो, या आजीवन जेल में रहना पड़े।

अपने दल के सर्वनाश का वर्णन मैं कर ही चुकी हूँ, और जो कुछ बाक़ी भी था, उसका ख़ात्मा डिगाइयैव के विश्वासघात ने कर डाला। याद रहे कि डिगाइयैव से बातें होने के एक-दो दिन बाद ही मेरी गिर-फ़्तारी हुई थी और मरक्युलौव को मेरे मकान का पता लग गया था।

सन् १८८४ के मामले में डिगाइयैव की बदौलत फँसे हुए १४ अभि-युक्तों में मैं मुख्य थी। हमारा जो क्रान्तिकारी दल निरंकुश सत्ता के विनाश में लग रहा था, और जिसने हमारी मातृभूमि में हलचल मचा कर दुनियाँ को हिला रखा था, वही आज पंगु बनकर मुँह के बल पड़ा हुआ था।

मैं भी अपने उस समय के चित्त के विकार के लिए क्या कहूँ? जो बात होने वाली थी उससे हम अच्छी तरह परिचित थे, किन्तु उसका हमें तनिक भी डर न था। मैंने अधिकारियों को जो लेख लिखकर दिया था, उसमें अपने आन्दोलन के विषय में साफ़ साफ़ बातें लिख दी थीं और उसमें अपनी ज़िम्मेदारी ज़रा भी कम नहीं की थी। इसलिए मैंने सफ़ाई देने की क़तई ज़रूरत न समझी। पिछले मुक़दमे से मेरा नाम कार्य्यकारिणी के सम्बन्ध में बहुत आचुका था, इसलिए अधिकारीवर्ग और वर्त्तमान जज भी मेरे नाम से अच्छी तरह परिचित थे।

जब मेरी बोलने की बारी आई तब सब अभियुक्त, दर्शकों की भीड़ तथा मैं स्वयं भी, यह अनुभव कर उठी कि कार्य्यकारिणी कमेटी के अन्तिम मेंबर और अपनी पार्टी की प्रतिनिधि की हैसियत से, इस अव-सर पर मुझे ज़रूर कुछ कहना चाहिए। इधर मेरी अजीब हालत थी। अपनी मातृभूमि की वर्त्तमान दशा से मेरा हृदय टुकड़े टुकड़े होचुका था। मैं अनुभव कर रही थी कि झगड़ा और विरोध दोनों ही समाप्त होचुके हैं। जो दमन सरकार ने किया था उसके परिणामों से भी मैं अच्छी तरह परिचित थी। मुझे डर था कि अदालत में बोलते वक्त अचानक मैं कहीं रुक न जाऊँ।

एक फ्रांसीसी औरत ने, जिसने मुझे कैज़ाँ में पढ़ाया था, और १२ वर्ष की उम्र से मुझे जानती थी, पहचान लिया और मुझसे बड़े प्रेम से मिली।

मैं अपनी माँ से एकान्त में नहीं मिलने पाती थी। मुझे एक अन्तिम प्रबन्ध करना था। इसके लिए मैंने लियैानटीएफ़ नामके एक वकील को माँग लिया, जिससे मुझे एकान्त में उनसे बातचीत करने का अवसर मिल जाय।

अदालत में भाषण

मैंने अदालत के सामने निम्नलिखित आशय का एक भाषण दिया:—

"सरकारी वकील ने मेरे क्रान्तिकारी कामों की रूप-रेखा और उनके विस्तार के सम्बन्ध में आश्चर्य प्रकट किया है। यह सब बातें इतिहास से सम्बन्ध रखती हैं, और मेरे व्यक्तिगत मामले में इनका सम्बन्ध मेरे जीवन के इतिहास से ही है। मेरा जन्म बहुत सम्पन्न घराने में हुआ था। आर्थिक दरिद्रता से उसका कभी कोई सम्बन्ध न था। चारों ओर लोगों को दुखी और दरिद्र देखकर मैंने अपने जीवन का यह उद्देश बना लिया कि भूखे और दीन-दुखियों की सेवा करूँ। उन दिनों की अख़बार-नवीसी और फेमनिस्ट आन्दोलन ने मेरे मन में यह बात जमादी कि परोपकार और सेवा के लिए डाक्टरी का पेशा सबसे अच्छा है। इस-लिए ज़ूरिच जाकर मैंने विश्वविद्यालय में चार वर्ष अध्ययन किया। परन्तु जब मैंने डाक्टरी का अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त कर लिया, तब देश की सेवा के लिए ज़रूरत पड़ते ही, मैं बिना डिप्लोमा लिये रूस चली आई।

साम्यवादी विचारों की ओर मेरा झुकाव पहले ही से होचुका था। इसलिए मेरी बहिन लिडीआ का जो क्रान्तिकारी आन्दोलन था, उसमें मैं शामिल होगई। २-३ महीने तक दल के लोगों ने मज़दूर बनकर कारखानों में काम किया। इसी अपराध में मेरी बहिन तथा और लोगों को जेल, निर्वासन आदि की सज़ायें दे दी गईं।

इसके बाद मैंने कुछ बचे हुए लोगों को साथ लेकर एक प्रोग्राम बनाया, जिसके आधार पर बाद में नैरोडनीकी अर्थात् पैपुलिस्ट पार्टी बनी।

फिर मैं देहात में काम करने चली गई। मैं समझती थी कि काम करने का वास्तविक क्षेत्र गाँवों में ही है। वहाँ लोगों में घुल-मिल गई। परन्तु ज़मींदार, अधिकारियों तथा पुलिस की आँखों में खटकने लगी। उन्हीं दिनों 'लेण्ड एण्ड फ्रीडम' पार्टी ने मुझे अपने साथ काम करने को निमंत्रित किया, परन्तु मैंने इस वजह से इन्कार कर दिया कि मैं देहात ही में प्रचार करना चाहती थी। जब गाँवों में काम करना असम्भव होगया तब मैंने उक्त पार्टी को लिख दिया कि मैं अब ख़ाली हूँ।

उसके बाद मैं वौरौनै-वाली कान्फ्रेंस में शामिल हुई। सेंटपीटर्स-बर्ग आने के कुछ दिन बाद यह पार्टी टूट गई और मुझे 'विल अ फ़ दी-पीपुल' पार्टी की कार्य्यकारिणी में शामिल होने के लिए निमंत्रण मिला। इस वक्त तक मेरा यह विचार दृढ़ होगया था कि बिना हिंसा और मार-काट के वर्त्तमान दशा में परिवर्त्तन नहीं होसकता। स्वतंत्र प्रेसों के अभाव से, जनता में शान्तिमय उपाय से विचारों का फैलाना

भी असम्भव था। यदि शासन-पद्धति को बदलने के लिए देश की स्थिति में कोई और साधन दीख पड़ता, तो, मैं हिंसात्मक कामों में प्रवृत्त न होकर, उसका प्रयोग ज़रूर करती। परन्तु उस वक्त न तो कोई ऐसा साधन ही था, और न, इस प्रकार का साहित्य ही। इस दशा में, सशस्त्र क्रान्ति के प्रोग्राम के सिवा और कोई चारा ही न था। मैंने इस प्रोग्राम पर पूरे तौर से अमल किया।"

लियौनटीएव मेरे भाषण को लिखता गया। न्याय-विभाग के मिनिस्टर नैवोकौव ने उसकी एक नक़ल मेरे वकील से माँग ली। इस प्रकार मैंने अपने देश, समाज और पार्टी के प्रति अपना अन्तिम कर्त्तव्य पालन कर दिया। अब एक साम्यवादी की दृष्टि से मेरी मृत्यु होचुकी थी, क्योंकि, एक सामाजिक और राजनैतिक कार्य्यकर्त्ता की मृत्यु उसी समय होजाती है जब वह अपने समाज और देश की सेवा करने से वञ्चित होजाता है। एक कार्यशील व्यक्ति मृत्यु से पहले, अपने किये हुए कामों पर दृष्टिपात करके जो गौरव अनुभव करता है, वही अपने कामों पर नज़र डालते हुए मैंने भी किया।

मेरे साथ अन्य अभियुक्तों को फाँसी का हुक्म सुनाया गया। उनमें ६ फ़ौजी अफ़सर थे। अदालत से जेल में वापस लौटने पर, जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने आकर कहा-- "जिन अफ़सरों को फाँसी का हुक्म हुआ है, उन्होंने फाँसी की सज़ा बदलवाने के लिए अपील करने का निश्चय किया है। केवल बैरन स्ट्रौमबर्ग ने अभी तक निश्चय नहीं कर पाया कि वह भी अपील करें या नहीं। उन्होंने आपकी राय पूछी है कि उन्हें क्या करना चाहिए।"

मैंने उत्तर दिया—"स्ट्रोमबर्ग से कह दो कि जिस काम को मैं ख़ुद नहीं करती, उसे करने के लिए दूसरे को सलाह नहीं दे सकती।"

१० दिन

मुक़दमे के बाद, इतवार को मेरी माँ और बहिन मुझसे मिलने आईं। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं था कि मैं उनसे अन्तिम बार मिल रही हूँ। माँ की वह अन्तिम भेंट सचमुच बड़ी मार्मिक और करुणा-जनक थी। उसकी मार्मिक दशा का वर्णन मैंने अपनी एक कविता में किया है। उस दशा को, एक क्षण भर भी मैं सहन न कर सकी। उसी समय सदा के लिए जेल का फाटक बन्द होगया!

फाँसी के हुक्म के बाद, मैं "हवालात-भवन" से सेंट्स पीटर और पौल के दुर्ग में पहुँचा दी गई। यहाँ मुझे अपनी वह नीली पोशाक उतार देनी पड़ी जो माँ ने लाकर दी थी, और एक क़ैदी के फटे-पुराने कपड़े मुझे पहनने को दे दिये गये। अब मैंने एक ऐसा सफ़ेद सूती चुगा पहन लिया, जिसकी पीठ पर हीरे की शक्ल का पीला थेगरा लगा हुआ था!

मेरा वह शान्त वातावरण, जिसमें पहुँच कर कुछ दिन तक मुझे शान्ति मिली थी, बदल गया। अब मेरी विचार-धारा उमड़ने लगी। अपनी और अपने परिवार की वर्त्तमान दशा, तथा उस अन्त पर, जो मेरी प्रतीक्षा कर रहा था, मेरा ख़याल तक नहीं गया। मेरा ख़याल किसी कारण, पच्छिम तथा अपने देश के क्रान्तिकारी आन्दोलन के भाग्य, अपने विचारों और एक देश से दूसरे देश में उनके प्रसार की ओर गया। बीते हुए दिनों, तथा उन लोगों की पुण्य-स्मृति, जो बहुत

दिन पहले इस दुनियाँ से चल बसे थे, मेरे दिमाग़ में फिर से हरी हो-गई। मेरी कल्पना-शक्ति ऐसा काम करने लगी, जैसा कि पहले उसने कभी नहीं किया था। मेरे पास पुस्तकें नहीं थीं, पर उन दिनों में अपना ध्यान अपने सिवा और बाहरी किसी चीज़ पर जमा ही नहीं सकती थी। मुझे पढ़ने को धार्मिक पुस्तकें दीगईं। बचपन में एक बार उनके विचार मेरे हृदय में प्रवेश कर चुके थे, परन्तु अब उनसे मुझे कोई सन्तोष नहीं होता था। फ्रेंच और जर्मन भाषाओं का भी मुझे अच्छा अभ्यास था। हर शनिवार को, पीटर और पौल-दुर्ग के क़ैदियों को डाक्टर देखता था। इस शनिवार को भी वह आया। मेरी ओर देखकर बोला—

"आपका स्वास्थ्य कैसा है ?"

जिस व्यक्ति को फाँसी का हुक्म दिया जाचुका था, उसके सामने यह प्रश्न रखना सचमुच बड़ा विचित्र था ! परन्तु फिर भी, मैंने उत्तर तो दिया ही—"बहुत अच्छा !"

आठवें दिन शाम को मैंने द्वार खुलने और बन्द होने की आवाज़ सुनी। उस समय सचमुच कोई आदमी कोठरियों को देखने आ रहा था। मेरी कोठरी भी खोल दी गई। दुर्ग का कमाण्डर मेरी कोठरी में आ-गया। उसके साथ एक इन्स्पैक्टर तथा कुछ और आदमी थे। अपने हाथ में से एक काग़ज़ निकाल कर उसने पढ़ सुनाया—"श्रीमान् सम्राट् ने कृपा कर यह हुक्म दिया है कि तुम्हारी फाँसी की सज़ा बदल कर, तुम्हें जीवन भर के लिए क़ैद कर दिया जाय !"

पहली मार्च के बाद उन्होंने सोफिया पैरोव्स्काया को फाँसी पर लटका दिया था। ऐसा मालूम पड़ता है कि इस पहली महिला के फाँसी

पर चढ़ने से जनता में बहुत हलचल मच गई थी और इससे वह बहुत दुःखी थी। उस समय स्त्रियों का फाँसी पर चढ़ जाना कोई साधारण बात न थी। सोफिया को फाँसी पर चढ़े हुए तीन वर्ष बीत चुके थे!

यदि मेरी फाँसी की सज़ा बहाल रहती, तो मैं बिल्कुल निश्चिन्त होकर फाँसी पर चढ़ जाती! मेरा मन मृत्यु के लिए तैयार था। मैंने घुल घुल कर मर जाने की अपेक्षा, फाँसी के तख़्ते पर झूल कर एक दम समाप्त होजाना अच्छा समझा! उस समय मैं इसकी अनिवार्य आवश्यकता को अच्छी तरह अनुभव करती थी।

इसके दस दिन बाद १२ अक्टूबर को मुझे और कहीं जाना पड़ा, कहाँ, यह मैं उस समय नहीं जान सकी।

१९
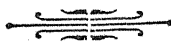
निर्वासन

मेरी कोठरी का निरीक्षक एक ऐसा आदमी था, जिसे ज़ोर-ज़ुल्म आदि बातें देखते हुए ज़माना बीत चला था। वह मौक़ा पाते ही हर एक से अपने दुर्भाग्य का रोना रोया करता था। जब मैं पकड़ कर ४३ नम्बर की कोठरी में पहले ही लाई गई तब उसने कहा कि यहाँ गाने की मुमानियत है। उस समय मैंने न तो गाने की इच्छा की थी, और न, उससे पूछा ही था। इससे मुझे और भी आश्चर्य हुआ। बीती हुई बातों का ख़याल ही ऐसा था जिसमें गाने की सूझ कैसे सकती थी ? यह वह जगह थी, जहाँका इतिहास पीढ़ियों से दुःख और यातनाओं की जीती-जागती कहानियाँ कह रहा था। यदि उस वातावरण में गाने का विचार भी किया जाता, तो उन महान आत्माओं की स्मृति के विरुद्ध एक अनैतिक काम होता, जो कि इस क़िले में नाश को प्राप्त होचुके थे !

१२ अक्टूबर सन् १८८४ को वही निरीक्षक मेरी कोठरी में कुछ कपड़े फेंक कर कह गया कि ख़ूब गर्म कपड़े पहन कर जल्दी तैयार हो-

जाओ। अब प्रश्न यह था कि मेरा क्या होगा ? मैंने ख़याल किया कि शायद मैं फाँसी पर चढ़ा दी जाऊँगी। परन्तु फिर यह भी ख़याल आया कि जनरल ने ख़ुद कहा था कि फाँसी से बदल कर मुझे आजन्म क़ैद की सज़ा दीगई है! उसकी यह बात भी याद थी कि मुझे "सख़्त सपरिश्रम क़ैद" की सज़ा भुगतनी पड़ेगी। मैं सोचने लगी कि शायद डौस्टौयेव्स्की की तरह, मुझे भी अपनी आँखों के सामने, अपने उन साथियों को फाँसी पर चढ़ते हुए देखना पड़ेगा, जिनके कन्धे से कन्धा मिलाकर मैं काम कर चुकी हूँ। परन्तु जब निरीक्षक की गर्म कपड़ों-वाली बात का ख़याल आया तब मैं मन में कहने लगी कि शायद मैं साइबेरिया, अथवा कारा की खानों में भेज दी जाऊँगी। इसके बाद मेरे हाथों में हथकड़ियाँ डाल दीगईं। इस पर मैंने बड़ा रोष प्रकट किया। क्या वे समझते थे कि मेरे विचारों और इच्छा को भी ज़ंजीर में बाँध लेंगे ? मैंने सुपरिंटेंडेंट से कह दिया कि मेरी माँ से कह देना कि मेरे साथ कुछ भी हो, मैं वही बनी रहूँगी। वह मेरे लिए रंज न करे, मुझे कुशल-समाचार ज़रूर देती रहे। यदि मुझे पढ़ने को पुस्तकें मिलती रहीं, तो मेरा समय अच्छी तरह कट जायगा।

फिर मैं सिपाहियों के बीच में होकर लेजाई गई। चौक में पहुँचने पर एक गाड़ी मिली, जिसमें मैं बैठा दीगई। मेरे यह पूछने पर कि मैं कहाँ जा रही हूँ, उत्तर मिला कि मालूम नहीं। नीवा के बन्दरगाह के किनारे किनारे हम चले। फिर जहाँ मैं उतरी, वहाँ मुझे उठाकर एक जहाज़ पर रख दिया गया। जहाज़ के जिस कमरे में मैं चढ़ा दी गई उसके चारों ओर पर्दे पड़े हुए थे। मैंने पीटर और पौल के दुर्ग में यह पढ़ा था कि "विल आफ़ दी

पीपुल" पार्टी के ४० आदमियों के लिए श्लूसैलबर्ग के क़िले में एक जेल बना कर तैयार करदी गई है। मैं सोचने लगी कि शायद वहीं लेजाई जा रही हूँ, अथवा फ़िनलैण्ड में कैक्शौम को। मुक़दमे के समय भी हमारे एक साथी ने पुकार कर कहा था कि हम सब श्लूसैलबर्ग को रवाना हो-रहे हैं।

८ घंटे बाद जहाज़ रुका। अब इस बात में कोई सन्देह नहीं रह गया कि हम श्लूसैलबर्ग आगये। क़िले के फाटक के ऊपर चील का, रूस का राष्ट्रीय चिह्न बना हुआ था, और "इम्पीरियल" शब्द लिखा हुआ था। यह शब्द मुझे बहुत खटका इसलिए कि, यह मुझे व्यक्तिगत बदले का भाव लिये हुए जान पड़ा; क्योंकि जिस ज़ारशाही के यह दोनों चिह्न और विशेषण थे, उसीका नाश करना मेरे जीवन का उद्देश था, और उसीसे हमारी यह दुर्दशा हुई थी।

अफ़सर और सिपाहियों के बीच में होती हुई मैं क़िले में पहुँची। जगह वास्तव में बड़ी रमणीक थी। चारों ओर हरियाली थी और वह एक कृषक-उपनिवेश सा मालूम पड़ता था। एक दृष्टि से वहाँ के मकान ग्रीष्मा-वास-भवन से मालूम पड़ते थे। बाएँ हाथ को एक दुमंज़िला सफ़ेद इमारत खड़ी हुई थी। यह लड़कियों के बोर्डिङ्ग स्कूल के लिए बड़ा उप-युक्त स्थान हो सकता था। वास्तव में यह सिपाहियों के रहने की जगह थी। दाईं ओर बहुत से सुन्दर मकान बने हुए थे। हर एक में छोटा सा बाग़ था। जगह जगह हरी हरी दूब और हरी-भरी झाड़ियाँ लगी हुई थीं। जाड़ों के दिन थे, इस कारण पेड़ों के पत्ते झड़ चुके थे, परन्तु गर्मियों में, जबकि, नये पत्ते छाजाते होंगे, तब यह जगह कितनी सुहावनी और

सुरम्य प्रतीत होती होगी। थोड़ी ही दूर पर एक गिर्जा था। उसका शान्त वातावरण मुझे अपने गाँव की याद दिला रहा था। आगे बढ़ने पर एक लाल ईंट की दुमञ्ज़िली इमारत देख पड़ी। उसकी खिड़कियाँ छोटी छोटी थीं और उसकी ऊपर निकली हुई दो चिमनियाँ एक फैक्टरी की याद दिलाती थीं। यहाँ पर लाल रँगे हुए लोहे के फाटक दीख पड़ते थे।

मैं दफ़्तर में पहुँची। सुपरिंटेंडेंट ने मेरे हाथ अपने सामने निकलवाकर मेरी हथकड़ी खोलदी। अब वहाँ एक जवान फ़ौजी डाक्टर और वहाँ की एक औरत के सिवा मेरे पास कोई न रहा। डाक्टर मेरी ओर पीठ करके कुर्सी पर बैठ गया। इधर औरत ने मेरे सब कपड़े उतरवा लिये, और मैं बिल्कुल नङ्गी कर दी। फिर डाक्टर उठा और मेरे चारों तरफ़ घूम कर मुझे ग़ौर से देखा और कुछ लिख लिया।

यह सब कार्रवाई इसलिए कीगई थी कि मेरे बदन पर अगर पहचान के लिए कोई ख़ास चिह्न हो तो देख लिया जावे। मुझे उस वक्त स्त्री होने के कारण शर्म आई या नहीं? और दुःखित हुई या नहीं? नहीं! मेरा भरोसा ईश्वर पर था, और मेरा धर्म था स्वाधीनता, समता, और बन्धुत्त्व। अपने इस धर्म के गौरव के लिए मुझे सब कुछ सहन करना ही चाहिए था। चार वर्ष पहले यही व्यवहार मेरी बहिन ईव्जीनिया के साथ हुआ था, और गिरफ़्तारी के बाद यही मेरे साथ भी होचुका था। उस वक्त मुझे यह सहन नहीं हुआ था और होममेम्बर काउण्ट टालस्टाय से बिगड़ कर मैंने कहा था कि यह हरकत बहुत बुरी है, और यह भविष्य में कभी न होनी चाहिए! शायद उस वक्त मेरे रोष प्रकट करने के कारण हो मेरे साथ यह दुबारा घृणित व्यवहार किया गया।

इस लाल ईंट के मकान में ४० कोठरियाँ थीं। हर एक में लोहे का एक दरवाज़ा था। बाहर छज्जे से, इस जेल का भीतरी दृश्य ख़ूब दिखाई पड़ता था और सब कोठरियाँ नज़र पड़ती थीं। मुझे २६ नम्बर की कोठरी मिली।

अब मेरा एक नया जीवन आरम्भ हुआ। इस जीवन और मृत्यु में कोई अन्तर न था। मृत्यु से भी आदमी सदा के लिए शान्त होजाता है और यहाँ भी हम लोग सदा के लिए शान्त थे! इस जीवन की यह ख़ूबी थी कि एक स्वप्न तो जीवन मालूम पड़ता था, और जीवन बिल्कुल स्वप्न-वत् था। रात में जब कभी निरीक्षक की लालटेन का प्रकाश छेद में होकर कोठरी में पहुँच जाता था, तब प्रकाश का क्षण-भंगुर अस्तित्त्व जीवन की वास्तविकता में परिणत होकर मेरी नस नस में बिजली दौड़ा देता था। रात को स्वप्न देखती थी कि लोगों को गिरफ़्तार किया जा रहा है, वे फाँसी के लिये लेजाये जारहे हैं, और भाप और बिजली से उन्हें अनेक प्रकार की शारीरिक यंत्रणाएँ दी जारही हैं! परन्तु यह सब होते हुए भी, मेरा हृदय यह कहता था कि मैं इन सब बातों को, अपनी घोर विपत्तियों को, जनता के दुःख को, और अपने साथियों की कशमकश और उनके नाश को भूल जाऊँ। साथ ही हृदय यह भी कह रहा था कि अदृश्य होते हुए भी, वे सब बलिदानी वीर मेरे साथ रह कर मेरी रक्षा कर रहे हैं और मैं अकेली नहीं हूँ।

२०
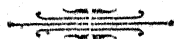
जेल-जीवन

ह म अपने देश, मनुष्यता, परिवार, मित्र, साथी आदि सबसे वञ्चित होचुके थे। किसी जीवित वस्तु से हमारा सम्बन्ध नहीं रहा था। हमारी कोठरियों के नीले शीशों ने सूरज की किरणों को भी मन्द कर दिया था। आसमान पर भी हमारा उतना ही अधिकार बाक़ी था, जितना कि वह दीखता था। दिन, महीने और वर्ष आये और चले गये, और बादल होने के समय लिये हुए चित्र की तरह हृदय पर एक धुँधला-सा प्रतिबिम्ब छोड़ गये।

मेरी कोठरी का फ़र्श काला, ऊपर से दीवारें भूरी तथा नीचे से ४-५ फुट तक जस्ती रंग दीगई। वहाँ जलने-वाले लैम्पों के प्रकाश में हमारी कोठरियाँ ऐसी लगती थीं मानों ४० अर्थियों के बक्स लम्बे खड़े कर दिये गये हैं! वहाँ का वातावरण बिलकुल क़ब्रस्तानी था!

हम लोग किसी से मिल नहीं सकते थे, और न, अपने परिवार से पत्र-व्यवहार कर सकते थे। न कोई ख़बर हमारे पास आने पाती थी, और न, हमारे पास से जाने पाती थी। किसी आदमी को यह जानने

तक की इजाज़त नहीं थी कि हम कहाँ और कैसे रहते हैं ! मेरी माँ के पूछने पर असिस्टेंट होममेम्बर ने जवाब दिया था कि जब तुम्हारी लड़की क़ब्र में पहुँच जायगी तब तुम्हारे पास ख़बर भेजेगी ! हमारे नाम तक बिसरा दिये गये, और हम इस प्रकार नम्बरों से पहचाने जाते थे, जैसेकि स्टेट की निजी कोई सम्पत्ति हों ।

क़िले के इधर-उधर का तो हमें कुछ पता ही नहीं था । हम सब क़ैदी तक एक दूसरे से परिचित न थे । मुर्दों की तरह क़ब्रों में अलग अलग पड़े हुए थे !

जो क़ैदी श्लूसैलबर्ग भेजे जाते थे, उनकी बहुत दिनों तक जीने की आशा नहीं की जाती थी । पहले पाँच वर्षों में १५ आदमी मर गये । मिनाकौव और मिश्किन दोनों ही प्रतिरोध करने के अपराध में गोली से मार दिये गये, तथा एक ने फाँसी से आत्म-हत्या कर डाली । ग्रेचैव्स्की ने अपना बदन जलाकर आत्म-हत्या कर डाली ! कुछ पागल होगये ! एक औरत मेरे जेल-जीवन के आठवें वर्ष में अपना गला काट कर मर गई । उसे यहाँ के एकान्त में एक महीना काटना भी असह्य होगया था । यहाँ से छूटने पर भी लोग अधिक समय तक जीवित न रहते थे, क्योंकि उनकी जीवनोपयोगी शक्तियों का श्लूसैलबर्ग में पहले ही से ख़ात्मा होचुकता था ।

मेरी भी जीवित रहने की इच्छा कुचली जा चुकी थी । हमारी पार्टी के जो लोग यहाँ लाये गये थे उन्हें सहारा किस बात का था ? क्रान्तिकारी आन्दोलन असफल होचुका था । उसका संगठन विनष्ट कर दिया गया था । आख़िरी दम तक कार्यकारिणी कमेटी निर्मूल कर दी गई थी। जनता और समाज ने हमारा साथ नहीं दिया । सरकार ने हम लोगों

के गले में फाँसी का फन्दा और भी कड़ा कर दिया था। हमने अपनी जगह पर काम करने के लिए रूस के रङ्ग-मञ्च पर कोई वारिस नहीं छोड़े। मुझे एक विशेष दुःख यह था कि मित्र, परिवार, देश, काम और सारे संसार से नाता तो टूटा ही, किन्तु साथ ही, मेरी माँ से, मेरा एकमात्र सम्बन्ध भी टूट गया ! माँ ही दुनियाँ में मेरी सबसे प्यारी चीज़ थी, वह भी मुझसे सदा के लिए छुड़वा दीगई, क्योंकि अपने कार्यक्षेत्र से अलग होजाने के बाद, मैं व्यक्ति-गत रूप से, रूस की नहीं, किन्तु केवल अपनी माँ की पुत्री हो रह गई थी।।

अपने श्लूसैलबर्ग के जीवन में, अनेक कठिनाइयाँ सहते हुए भी, मैंने इस बात पर कभी पश्चाताप नहीं किया कि जिस मार्ग का मैंने अनुसरण किया है, उस पर मुझे नहीं चलना चाहिए, अथवा वह अनुचित मार्ग है। मैंने जो कुछ किया था, वह ख़ूब सोच-समझ कर किया था, अब उसके ऊपर पश्चाताप का कोई प्रश्न ही नहीं था। जो हानियाँ सार्वजनिक रूप से, अथवा निजी तौर पर भुगतनी पड़ी थीं, उन सबने मेरे अन्दर बहुत कटुता पैदा करदी थी और उन बातों से मैं भीतर ही भीतर घुली जा रही थी। उस समय की अपनी मानसिक दशा का ख़याल करते हुए मुझे मृत्यु का ज़रा भी डर न था। वह तो स्वागत करने की बात थी, किन्तु मुझे डर यह था कि कहीं मैं पागल न होजाऊँ। इस-लिए अपनी मानसिक वृत्ति को स्वस्थ रखना बहुत आवश्यक था।

जेल में अपने मित्रों के साथ हमने दरवाज़े पर उँगलियों के ठोंकने से, अपने मनोभाव व्यक्त करके एक दूसरे के पास पहुँचाने का ऐसा तरीक़ा अख़्त्यार किया, जिससे वहां के एकान्त और नीरस जीवन में कुछ

अन्तर पड़ा। एक साथी की नसीहत से मैंने लाभ उठाया। उससे मेरे हृदय को सांत्वना मिली।

मेरी यह मनोवृत्ति कि मैं एक क्रान्तिकारी और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता की अपेक्षा, अपनी माँ की लड़की और केवल एक प्राणी हूँ, अनुचित और ग़लत थी, क्योंकि, क्रान्तिकारी की हैसियत से हम लोगों ने रूस के इतिहास पर अपनी एक गहरी छाप लगा दी थी। जैसे कि देशभक्तों ने फ्रांस में, बैस्टील में क़ैद रहकर अपने आपको गौरवान्वित बना लिया था, वही हाल हमारा रूसी बैस्टील श्लूसैलबर्ग में था। मैंने अपनी क़ैद के पाँचवें वर्ष में एक बार अनशन किया। मैं मृतक प्रायः होचुकी थी। उस दशा में मैंने अपने एक प्रसिद्ध साथी को दूसरे साथी से यह कहते हुए सुन लिया—"वीरा, अब केवल अपने मित्रों ही की नहीं, बल्कि समस्त रूस की सम्पत्ति है!" इन शब्दों ने मेरे हृदय में यह भावना दृढ़ कर दी कि मेरा व्यक्ति-गत जीवन अब भी रूस ही की सेवा के लिए रहेगा और इस उद्देश को पूरा करने के लिए मुझे पागलपन और साक्षात् मृत्यु तक पर विजय प्राप्त करनी है!

२१

वीरोचित बलिदान

मीनाकौव

मीनाकौव और मिश्किन वर्षों से क्रान्तिकारी काम में लगे थे। मीनाकौव को सन् १८७९ में ओडैसा में सज़ा हुई थी। पहले वह साइबेरिया भेजा गया, पर वहाँ से उसने भागने की कोशिश की, इसलिए पहले वह पीटर और पौल के दुर्ग में, और बाद में श्लूसैलबर्ग भेज दिया गया। जेल में घुल-घुल कर मर जाना उसे असह्य था, इसलिए कोई ऐसा काम करना चाहता था कि एक दम ही इस जीवन से छुटकारा मिल जाय। उसने तुरन्त ही बहुत सी सुविधाओं के लिए माँग पेश करदी। उसने चाहा कि उसे मित्रों और परिवार से मिलने-जुलने और उनसे पत्र-व्यवहार करने की इजाज़त दे दी जाय, खाने-पीने की सुविधा हो, और पुस्तकें, तमाखू आदि ज़रूरी चीज़ें भी मिलती रहें। एक दिन मीनाकौव ने डाक्टर के

मुँह पर थप्पड़ मारा। इसी जुर्म में वह गोली से मार दिया गया! उसने अपनी रिहाई के लिए मुआफ़ी माँगने तक से इन्कार कर दिया था।

मिश्किन

सन् १८८४ के बड़े दिन जब हमारी कोठरियों में खाना लाया गया, तब एक कोठरी से तश्तरियों के गिरने, और किसी की हाथापाई की आवाज़ आई। रुँधे हुए गले से मिश्किन पुकार रहा था—"मुझे पीटो मत, जान से मार दो!"

रूस के क्रान्तिकारियों में, मिश्किन उन लोगों में से था, जिन्होंने सबसे अधिक समय तक कष्ट सहन किये थे। वह मास्को का निवासी था। वहाँ वह ग़ैरक़ानूनी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए प्रेस चलाता था। प्रेस के सब आदमी पकड़ लिये गये और मिश्किन को चेतावनी दे दी गई। फलस्वरूप वह देश छोड़कर बाहर चला गया। साइबेरिया के विलिस्क शहर में चैर्नीशेव्स्की क़ैद था। मिश्किन पुलिस-अफ़सर की पोशाक पहन कर चैर्नीशेव्स्की को छुड़ाने के लिए जेल-अधिकारी के पास गया, और उसे एक जाली हुक्म दिखाकर कहा कि चैर्नीशेव्स्की को सेंट-पीटर्सबर्ग लेजाने के लिए मेरे हवाले कर दो। अधिकारी को सन्देह हो गया, और उसने कहा कि याकुट्स्क में गवर्नर से भी पूछ लो। उसने मिश्किन के साथ उसकी रक्षा के बहाने दो सिपाही और कर दिये। मिश्किन भी ताड़ गया कि काम होना तो दूर, अपनी जान और ख़तरे में पड़ गई। इसलिए याकुट्स्क के पास उसने एक सिपाही को गोली से मार डाला, पर दूसरा अपनी जान बचा कर भाग गया।

बाद में मिश्किन पकड़ा गया और १९३ अभियुक्तों वाले मामले में उसे १० बरस की सज़ा होगई। उस मामले में मिश्किन ने अभियुक्तों का नेतृत्त्व ग्रहण किया था और सबकी ओर से उसने एक बड़ा ज़बर्दस्त क्रान्तिकारी भाषण दिया था। सन् १८८० तक, दो बरस वह बड़ी भयानक मुसीबतों में ख़ारकौव-जेल में रहा। बाद में वह कारा भेज दिया गया। वहाँ दो बरस रह चुकने के बाद, वह अपने कई साथियों को लेकर भाग गया। परन्तु ब्लैडीबोस्टौक में पकड़ा गया। फिर वह सेंटपीटर्सबर्ग में रैब्लिन में क़ैद कर दिया गया। उस जगह हमारी पार्टी के आदमी धीरे धीरे काल के ग्रास होरहे थे! मिश्किन ने यहाँ भी कई बार अधिकारियों के दुर्व्यवहार के प्रतिरोध में विद्रोह खड़ा करने का उद्योग किया, परन्तु साथी नहीं मिले, इसलिए वह असफल रहा। बाद में रैब्लिन के सब लोग श्लूसैलबर्ग भेज दिये गये। मिश्किन १० बरस से, एक के बाद दूसरी जेल की कठोर यातनायें भुगत चुका था। परन्तु रूसी जेलों में अपनी भीषणता के लिए प्रसिद्ध श्लूसैलबर्ग ने उसकी नसें ढीली कर दीं। यहाँ उसने अपने प्राण देने का निश्चय कर लिया। उसने सोचा कि जेल-इन्स्पैक्टर का अपमान करूँ, तो इस जुर्म में मेरे ऊपर मुक़दमा चलेगा। मुक़दमे में, मैं श्लूसैलबर्ग में होनेवाली निर्दयतापूर्ण गुप्त कार्रवाइयों का रूसी जनता के सामने भण्डाफोड़ कर दूँगा, और इस प्रकार अपने प्राण देकर अपने साथियों के जीवन को सुखद बना सकूँगा! २५ दिसम्बर सन् १८८४ को यही उसने सत्य कर दिखाया। जहाँ तीन महीने पहले मीनाकौव गोली से मार डाला जाचुका था, वहीं मिश्किन भी गोली से मार दिया गया!

इसके फलस्वरूप असिस्टेंट होममेम्बर श्लूसैलबर्ग आ-पहुँचे। उन्होंने ख़ुद हरएक क़ैदी को जाकर देखा। अब ऐसे ६ आदमियों को, जो बहुत कमज़ोर और बीमार थे, जोड़े से टहलने का हुक्म मिल गया। मोरोज़ोव और बुट्सैविच का एक जोड़ा बना। इनमें से कुछ ही दिन बाद तपेदिक़ से बुट्सैविच मर गया। ट्रीगोनी और ग्राचैव्स्की का एक जोड़ा बनाया गया। फ्रौलैङ्कों और इज़्राइयैव का तीसरा जोड़ा बना दिया गया। इज़्रा-इयैव तपेदिक़ से बीमार था। एक नियम यह भी था कि जिनका चाल-चलन अच्छा होगा, उन्हें एक साथी के साथ टहलने की इजाज़त मिल जायगी। यह नियम अमल में नहीं लाया गया।

ग्राचैव्स्की

अपनी प्रारम्भिक युवावस्था में ग्राचैव्स्की समाज-सेवा के काम में लग गया, और चैकौव्स्की-दल में सम्मिलित होगया। दो बार जेल गया। अन्त में आर्कैञ्जल प्रान्त में निर्वासित कर दिया गया। वहाँ से वह साफ़ ही भाग खड़ा हुआ और सेंटपीटर्सबर्ग में आकर हमारी पार्टी में मिल गया। बाद में वह हमारी कार्यकारिणी कमेटी का मेम्बर बन गया। सन् १८८२ में विस्फोटक पदार्थों की प्रयोगशाला के सञ्चालन के जुर्म में उसे फाँसी का हुक्म हुआ। परन्तु फिर सज़ा बदल कर उसे आजन्म क़ैद का हुक्म दिया गया। आरम्भ में वह रैव्लिन में रखा गया और बाद में श्लूसैलबर्ग पहुँचा दिया गया। वहाँ उसने जेल के अत्याचारी शासन के विरुद्ध बड़ा ज़बर्दस्त आन्दोलन खड़ा कर दिया। इसीलिए १८८६ में उसने १८ दिन तक अनशन किया। श्लूसैलबर्ग के इन्स्पैक्टर सोकोलोव

ने उसे पुरानी जेल में रख दिया। तुरन्त ही ग्राचैव्स्की ने पुलिस-विभाग के पास एक अपील भेजी। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि वह अपील वहाँ पहुँची तक नहीं। ग्राचैव्स्की से काग़ज़, क़लम-दवात भी छीन लीगई।

अब ग्राचैव्स्की को जेल-यातनाएँ असह्य होउठीं। उसने भी मिश्किन की तरह काम करने का निश्चय कर लिया, जिससे कि श्लूसैलबर्ग के अमानुषिक शासन का भण्डाफोड़ कर सके। अपने निश्चय के अनुसार उसने जेल के डाक्टर को पीटा। अधिकारियों ने उसे अपनी शिकायत करने और शोर-गुल मचाने का मौक़ा न देने की ग़रज़ से, उस पर कोई अभियोग नहीं चलाया और यह बहाना कर दिया कि उसका दिमाग़ सही-सलामत नहीं है। परन्तु ग्राचैव्स्की, जब अपने इस उद्योग में सफल न होसका, तब वह यहाँ के कष्ट और अत्याचारों के विरुद्ध देश में लोक-मत जागृत करने के लिए, २४ अक्टूबर सन् १८८७ को अपने शरीर पर मिट्टी का तेल डाल, उसमें आग लगा कर जल मरा!

तीन दिन बाद जनरल पैट्रोव श्लूसैलबर्ग आये और इन्स्पैक्टर सौकोलौव को बर्ख़ास्त कर दिया। इससे हमारे बलिदानी वीर ज़िन्दा तो नहीं होगये, किन्तु हमारी मुसीबतें कुछ कम ज़रूर होगईं, और हमें अब पहले की अपेक्षा अधिक आज़ादी से सांस लेने का अवसर मिल गया। सौकोलौव बड़ा ही ज़ालिम था। ६ महीने बाद उसकी जगह फैडोरौव नियुक्त हुआ। इस आदमी को अनुशासन पसन्द था। पर था यह चुग़लख़ोर और ज़िद्दी, परन्तु निर्दयी नहीं था!

२२
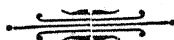
एक वीराङ्गना

नवरी सन् १८८६ में मैंने इन्स्पैक्टर से यह पूछा कि मुझे एक साथी के साथ टहलने की इजाजत क्यों नहीं दे देते ? उसने जवाब दिया—"यह सुविधा हम तुम्हें दे सकते हैं, परन्तु तुम्हारा कोठरी की दीवारों में खट खट करना मुझे पसन्द नहीं है।" मुझे यह मालूम था कि श्लूसैलबर्ग में एक दूसरी औरत एलेक्ज़ाण्ड्रोव्ना वौल्कैन्स्टाइन भी मौजूद है, और इसीलिए उसका नाम न लेकर मैंने यह प्रार्थना की थी।

१४ जनवरी को मुझे बाहर लेजाया गया। वहाँ मुझे वौल्कैन्स्टाइन खड़ी हुई मिली। हम एक दूसरी से गले मिले। इस पोशाक में एक दूसरी को पहचानना बड़ा कठिन था, इसी कारण मुझे पहचानने में कठिनता हुई। हम नहीं जान सके कि यह अवसर हर्षित होने का था, या रोने का ! मैं उसे पहले से नहीं जानती थी, मुक़दमे के समय मैंने उसे देखा था। परन्तु हम दोनों ही एक दूसरे के नामों से परिचित थीं। उसकी सादगी, सचाई और सहृदयता ने मुझे बड़ी जल्दी मुग्ध कर लिया।

यह था भी स्वाभाविक, क्योंकि अपनी दुनियाँ में, एक के लिए दूसरी के सिवा कोई था ही नहीं, और न, कोई दूसरी चीज़ ही थी। मुझे पौलीवानौव की वह आत्म-कथा, जो उसने अपने रैब्लिन के जीवन की लिखी थी, बहुत उपयुक्त जान पड़ी। हमारी-सी स्थिति में, दो आदमियों के मिलते समय, मानसिक विचारों से जो प्रसन्नता होती है, वह मनुष्य-स्वभाव के सर्वथा अनुकूल है, और उसको प्रकट करना असम्भव है।

श्लूसैलबर्ग के जीवन का, मेरी अपेक्षा एलेक्ज़ाण्ड्रौव्ना पर बहुत कम प्रभाव पड़ा था। जब मैं भूत और वर्त्तमान दशा से व्यथित होउठती थी तब वह अपनी मृदुल मुस्कान, सहृदयता और मीठी बातों से ढाढ़स बँधा कर मुझे प्रफुल्लित कर देती थी। हम लोग एक दिन बीच में छोड़ कर मिला करते थे, इसलिए और भी मिलने की उत्सुकता रहती थी।

जब कोई अपनी कोठरी में मरता था, अथवा मृत्यु के कष्ट से चिल्ला उठता था, तब हम भी एक दूसरे को व्यथित पाते थे। ऐसे वक्त हम दोनों को एक दूसरी से आँख मिलाना असम्भव-सा होजाता था। केवल व्यक्तिगत भावों को, एक दूसरी से गले मिलकर, चूमकर, तथा ज़मीन पर पास बैठकर व्यक्त कर लेते थे। सन् १८८६ के एक ख़ास महीने में तीन बार ऐसे अवसर आये, जबकि, कौब्लिइयैन्स्की, इज़ाइयैव और इवानौव विभिन्न रोगों के शिकार होगये!

इज़ाइयैव की बड़ी बुरी दशा थी। वह तपैदिक़ से पीड़ित था। जगह जगह बर्फ़ के ऊपर, जहाँ हम लोग टहलते थे, उसका थूका हुआ ख़ून देखते थे। अधिकारी इतना तक न करते थे कि उसके ख़ून को बर्फ़ ही से ढकवा दें। हमारे पास भी फावड़ा आदि ऐसी कोई चीज़ न थी, जिससे

बर्फ़ खोदकर उस ख़ून को ढक देते। उसके ख़ून का दृश्य और हृदय-विदारक खाँसी हमें बड़ी व्यथा पहुँचाती थी। इज़ाइयैव को मरते वक़्त बड़ी तकलीफ़ हुई और उससे हम लोगों को भी बड़ी व्यथा पहुँची। उसकी असहाय अवस्था, तथा उसकी कुछ भी सहायता करने में हमारी बेबसी बहुत ही करुणाजनक थी। यदि अधिकारी उसे ज़रा-सी अफीम दे देते, तो, मृत्यु से उसने जो सङ्घर्षण किया, वह आसान होजाता, और वह शान्ति के साथ मर सकता !

बसन्त आने पर मुझे और एलेक्ज़ाण्ड्रौव्ना को तरकारी के बग़ीचे में ज़मीन के दो टुकड़े दे दिये गये। हर एक टुकड़ा नौ फुट लम्बा और ढाई फुट चौड़ा था। इसमें सूरज की रोशनी बिलकुल नहीं आती थी। एक ओर पत्थर की दीवार थी, और बाक़ी तीन ओर नौ फुट ऊँचे तख़्ते लगा दिये गये थे। फिर भी वहाँ की मिट्टी को देखकर हम बड़े ख़ुश हुए, क्योंकि यहाँ की मिट्टी ऐसी ही थी, जैसीकि, हमारे गाँव में थी। हम लोग मिट्टी ढोकर इधर उधर डाल दिया करते और बो भी लेते थे। जब बीज उगने लगता तब हमारे हर्ष की सीमा न रहती। पहरे-वालों को हमसे बोलने की बिल्कुल मनाही थी। यहाँ तक कि, वे हमसे कोई हिदायत भी न कर सकते थे। कोई ख़ास ज़रूरत पड़ने पर इशारे से हमसे कोई बात कह सकते थे।

एलेक्ज़ाण्ड्रौव्ना बड़े कोमल स्वभाव की थी। वह कभी कीड़ों-मकोड़ों, अथवा और किसी जीव को कभी न मारती थी। चिड़ियाँ उससे इतनी हिल गई थीं कि उसके घुटनों पर बैठ कर जूठी रोटी आदि खाया करती थीं। कोई कीड़ा-मकोड़ा रास्ते में मिल जाता, तो वह हट जाती,

और मुझे भी रास्ते से खींच लेती। यदि कोई कीड़ा किसी पौदे पर बैठ जाता, तो, वह पौदे का नष्ट होजाना तो सहन कर सकती थी, किन्तु कीड़े को मार डालना उसे गवारा न था। एक बार उसने अपनी कोठरी में एक खटमल पकड़ कर काग़ज़ में बन्द कर लिया। जब वह घूमने बाहर गई, तब उसने बड़ी होशियारी के साथ काग़ज़ में से निकाल कर, उसे आज़ाद कर दिया! वह किसी व्यक्ति के गुण को ग्रहण कर लेती थी, और अवगुण पर नज़र भी न डालती थी। उसका यह दृढ़ विचार था कि भलाई और प्रेम से बुराई पर विजय प्राप्त की जा सकती है, कठोरता और ज़बर्दस्ती से नहीं।

अब यह प्रश्न उठता है कि ऐसी कोमल-हृदया महिला ने हमारी पार्टी के ख़ूनी प्रोग्राम को कैसे स्वीकार किया? और वह इस चक्कर में फँसी ही क्यों? यह देखकर कि देश के श्रमजीवी दिन दहाड़े चूसे जारहे हैं, वह साम्यवादी बन गई। रूस में सार्वजनिक हित के काम करने के लिए स्वतंत्र वातावरण न होने के कारण वह क्रान्तिकारी बन गई, और अमानुषिक दमन ने उसे ख़ूनी प्रोग्राम का समर्थक बना दिया। उसकी प्रेममयी बलिदानी आत्मा ने क्रान्तिकारी मार्ग से वह सुनहला आदर्श खड़ा किया, जो प्राण देकर भी, भावी सन्तति के हित के लिए प्राप्त करने योग्य था।

हममें से जब कोई किसी सुविधा के, अथवा और किसी मामले में इन्स्पैक्टर से ज़िक्र करता था, तब वह हमेशा झिड़क कर कह देता था कि सिर्फ़ अपनी बात करो, दूसरों से कुछ मतलब नहीं। जब हम टहलते थे तब हमारे साथी केवल इसी सुविधा के लिए घुले जारहे थे। वे चाहते

थे कि किसी का मुँह देखने को मिले। कुछ तो हमारे कौब्लियेन्स्की और लैटैपैल्स्की, ऐसे साथी थे, जिन्होंने मरते दम तक किसी साथी का मुँह ही नहीं देखा। एलेक्ज़ाण्ड्रौव्ना ने यह विचारा कि हमें अपना साथियों के साथ टहलने का हक़ ख़ुद दी तब तक के लिए छोड़ देना चाहिए, जब तक कि, यह अधिकार के रूप में सबके लिए एक साधारण नियम न बना दिया जाय। पहले तो कई आदमी हमारा साथ देने को तैयार होगये, परन्तु अन्त में हम पाँच ही व्यक्तियों ने इसे छोड़ दिया। पाँच में, एलेक्ज़ाण्ड्रौव्ना, बौग्डानोविच, पौपैाव, शैवलिन और मैं, ये ही व्यक्ति थे। डेढ़ वर्ष तक हमारा टहलना बन्द रहा। जब नया इन्स्पैक्टर फैडौरौव आगया, तब टहलने के अधिकार से कोई भी वञ्चित न रह गया। इस अधिकार को प्राप्त करने का श्रेय, मुख्यतः एलेक्ज़ाण्ड्रौव्ना को था। वह सचमुच एक वीराङ्गना थी। न्यायोचित अधिकारों के लिए सङ्घर्षण करना वह ख़ूब जानती थी।

२३

पुराने क़िले की कोठरी

ईसा शूली पर चढ़ा था। उसने बड़े बड़े कष्ट सहन किये थे। उसने किसी कष्ट से मुँह न मोड़ा था। मैंने बचपन ही से धार्मिक पुस्तकें पढ़ी थीं, अब कष्टों से मुँह मोड़ कर भी, क्या मैं ईसाई बनी रह सकती थी? उस दशा में क्या मैं अपने-आपको ईसा की अनुगामिनी कह सकती थी?

पौपौव की कोठरी मेरी कोठरी से नीचे थी। उसने खटखट किया। ऐसा करते समय वह पकड़ा गया, और पुराने क़िले की कोठरी में भेज दिया गया। यहाँ हम लोग सब एक ही जगह रहते थे, और एक दूसरे की चीं-पुकार की आवाज़ सुन सकते थे। इन्स्पैक्टर ने पौपौव से कहा कि मैं तुम्हें ऐसी जगह ले जाऊँगा जहाँ कोई जीवित आदमी तुम्हारी आवाज़ नहीं सुन सकता! थोड़े ही दिन पहले पौपौव एक बार वहाँ हो आया था, और वहाँ उस पर बड़ी क्रूरता से मार पड़ चुकी थी। मैंने सोचा कि फिर भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जायगा और बहुत से सिपाही उसपर एक साथ ही टूट पड़ेंगे। मैंने निश्चय कर लिया कि

पैपैाव की सांत्वना के लिए मुझे भी वहाँ पहुँचना चाहिए। मैंने इन्स्पैक्टर से कह दिया कि जब हम दो आदमी बातें कर रहे थे तब उनमें से केवल एक को सज़ा देना अन्याय है, इसलिए मुझे भी वहीं पहुँचा दो। इन्स्पैक्टर मुझे भी ले चला। पुराने क़िले के रास्ते में पाँच बरस बाद आसमान और तारे देखने को मिले! क़िले में लेजाकर मैं एक कोठरी में बन्द कर दी गई। कोठरी छोटी, ठण्डी और बहुत गन्दी थी। उसकी दीवारें भी, पुरानी होने के कारण बुरी दशा में थीं। वहाँ एक छोटी मेज, कुर्सी और एक बेञ्च पड़ी हुई थी। न बिस्तर था, और न बेञ्च पर बिछाने के लिए कोई चटाई। मैं सूती कपड़े पहने हुई थी। सर्दी से काँपने लगी। पहले तो मैंने समझा कि सिपाही बिस्तर और कपड़े लावेंगे, परन्तु कुछ नहीं आया और ठण्ड मेरी नस नस में भर गई। मैंने जूते उतार कर उनका तकिया बनाया और पड़ रही। यहाँ खाने को बहुत [बासी और कड़ी रोटी मिली थी।

एक दिन वहाँ शोर-ग़ुल शुरू हुआ। पैपैाव की चुप रहने की इच्छा न थी। उसने किवाड़ खटखटा कर शोर-ग़ुल मचाना शुरू कर दिया। मैंने भी यही किया। लोग दरवाज़ा खोलकर पैपैाव को पीटने ही को थे कि मैंने इन्स्पैक्टर को पुकार कर, उससे कहा—पैपैाव को मत मारो, तुम एक बार उसे पीट चुके हो, याद रहे कि किसी दिन इस काम के लिए तुमसे भी जवाब तलब किया जा सकता है। उसने कहा कि हमने उसे नहीं पीटा, हम केवल उसे बाँध रहे थे और वह हाथापाई कर रहा था। मैंने बिगड़ कर कहा—नहीं, तुमने ज़रूर पीटा है, और इस बात के गवाह मौजूद हैं! वह अब खटखट नहीं करेगा, मैं उससे कह दूँगी।

इन्स्पैक्टर ने कहा—बहुत अच्छा। इसपर मैंने पैपैाव को बुलाकर उसे ऐसा करने से मना कर दिया और कह दिया कि मुझे दुःख होता है!

सवेरा होते ही कर्मचारी मेरे लिए पलँग और चाय ले आये, परन्तु पैपैाव के लिए नहीं। मैंने चाय इन्स्पैक्टर के पैरों की तरफ फेंक दी और पलँग लेने से इन्कार कर दिया। मैंने रोटी का एक टुकड़ा इन्स्पैक्टर को दिखाया और बिगड़ कर बोली—याद रखो कि तुम हमें ऐसी रोटी और पानी पर रख रहे हो! इन्स्पैक्टर घबड़ा गया और उसने सिपाहियों को हुक्म दिया कि अच्छी रोटी लाकर दो। ५ मिनट के भीतर ही एक सिपाही ने ताज़ा और मुलायम रोटी लाकर मुझे दे दी। मैं कोई ऐसी वजह ढूँढ़ निकालने की कोशिश में थी, जिस पर प्राणों की बाज़ी लगाई जा सके। बचपन की शिक्षा से हम समझते थे कि शहीद होना बड़ा अच्छा काम है!

मुझे इस कोठरी में रहते हुए ५ दिन हुए थे, जबकि, इन्स्पैक्टर ने आकर ख़बर दी कि नम्बर ५ (पैपैाव) को पलँग, आदि ज़रूरी चीज़ें दे दी गई हैं। मैं बहुत कमज़ोर होगई थी, इसलिए पड़ रही। मेरे कान में गाने की आवाज़ आई। ग्राचैव्स्की गा रहा था। यह वही आदमी था जो डाक्टर को पीटने के जुर्म में इस पुराने क़िले में बन्द कर दिया गया था और जो अपने बदन पर मिट्टी का तेल डालकर जल मरा था।

सातवें दिन इन्स्पैक्टर ने मुझसे कहा कि तुम्हारी यहाँ की सज़ा पूरी होगई, अब पहलेवाली जगह को चलो। मैंने जवाब दिया कि अगर केवल मुझे ही ले जा रहे हो तो नहीं जाऊँगी। इसपर उसने कहा कि नम्बर पाँच तो चला गया। मैंने अपनी पहले की कोठरी में लौटकर

एक चमकीली स्लेट पर पानी लगाकर अपना मुँह देखा। मालूम हुआ कि सात दिन पहले की अपेक्षा मेरे मुँह पर ऐसी झुर्रियाँ पड़ गई हैं जैसी कि १० बरस में पड़तीं! यह झुर्रियां बहुत जल्दी मिट गईं, परन्तु उन सात दिनों की याद कभी भुलाई नहीं भूलती।

२४
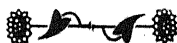
काव्य-रुचि

सैलबर्ग में तीन बरस रहने के बाद हम लोगों को एक एक कापी दे दी गई। इस कापी का हम स्वेच्छानुसार उपयोग कर सकते थे। परन्तु पख उसमें यह लगा दी गई कि कापी भर जाने के बाद हम उसे इन्स्पैक्टर को दे दें और दूसरी कापी ले लें। इस कारण यह सुविधा एक असुविधा में परिणत होगई। इस दशा में यह निश्चय करना बड़ा कठिन था कि इस कापी में हम क्या लिखें और क्या नहीं? इस प्रकार अधिकारियों ने जो चीज़ एक हाथ से दे दी, वही दूसरे हाथ से ले ली।

हम १६ आदमी अपनी अपनी कापियों में कविताएँ बना-बनाकर लिखने लगे। इससे हमें एक बड़ा लाभ यह हुआ कि हमारे दिलों में जो ग़ुबार थे, उन्हें हमें प्रकट करने का अवसर मिल गया। इस प्रकार हमें अपनी मानसिक दशा ठीक रखने में बड़ी सहायता मिली। हम लोग सामयिक कविताएँ भी लिखा करते थे। किसी के जन्म-दिवस पर, बधाई

के रूप में उसके सम्मान में, कविता लिख दिया करते थे। लोपाटिन ने अच्छी कविताएँ लिखीं। हर एक कविता में उसकी वर्त्तमान असहाय अवस्था के चित्र खिँचे हुए थे। एक कविता का भाव था—

"उस दिन में आग लगे, जिसके प्रकाश में वह मार्ग सूझा था, जिस पर चलकर मुझे आज़ादी से वञ्चित रह, इस चहारदीवारी में बन्द होना पड़ा! उस दिन में भी आग लगे, जिसमें मेरा जन्म हुआ था और न जाने, उसी क्षण मेरी माँ ने बुद्धिमानी से मुझे मार क्यों नहीं डाला?" इस प्रकार श्लूसैलबर्ग का सारा वायुमण्डल काव्यमय बन गया। विभिन्न छन्दों में कविताएँ लिखी गईं। लोगों ने गीत तक लिख डाले। पैंक्रा-टोव ने रौस्टौव में होनेवाली बीभत्स कृतियों के ऊपर कविताएँ लिखीं। मैं जब जेल के बाहर थी तब कविता नहीं लिखती थी। परन्तु यहाँ मैंने भी, माँ, बहिन और घर के ऊपर तीन कविताएँ लिख डालीं। मैंने निम्न-लिखित आशय की भी एक कविता लिखीः—

"हमें इस बात का सौभाग्य है कि हम अपनी शक्तियों को इसलिए दे रहे हैं कि आज़ादी ज़िन्दा रहे। हम भले ही मर जावें, कितने ही कष्ट सहें, पर मुँह नहीं मोड़ेंगे! सरकार के शिकार बनने के लिए हम सहर्ष आगे बढ़ते हैं, पर उसकी शिकायत नहीं करते। सब कुछ सहन करते हुए, शान्ति से, स्वतन्त्रता और न्याय के नाम पर युद्धक्षेत्र में कूद पड़ने के लिए, हम अपने युवक बन्धुओं का आह्वान करते हैं!"

पहले तीन वर्षों में शनिवार के दिन हरएक कैदी की तलाशी ली जाती थी। तलाशी लेते समय हमें बहुत परेशान किया जाता था। इस ढँग से तलाशी लेना बिल्कुल व्यर्थ था, क्योंकि वहाँ हमारे

पास हो ही क्या सकता था ? मार्टिनौव हमारा एक मज़दूर साथी था। उसने कविता करने में भाग नहीं लिया, किन्तु उसने एक डायरी लिख डाली। उसमें अन्य सब बातों का उल्लेख करते हुए, शनिवार की तलाशियों की कार्रवाई पर भी अच्छा रंग चढ़ाया। कापी ख़त्म करके उसने इन्स्पैक्टर को दे दी, और उसने पुलिस-विभाग में भेज दी। फलस्वरूप हमारी तलाशियाँ बन्द होगईं !

२५

अनशन

र्ष में दो बार उच्च अधिकारी हमारी जेल का निरीक्षण करते थे। हमें यह ढँग इसलिए अखरता था कि हमारे दैनिक कामों में विघ्न पड़ता था, और इससे यह ज़ाहिर होता था कि हम क़ैदी हैं। बेचारे इन्स्पैक्टर को यह ढंग इसलिए अखरता था कि उसे प्रबन्ध में व्यस्त होना पड़ता था। सन् १८८६ के अन्त में इन्स्पैक्टर फैडैरौव को यह ख़बर मिल गई कि निरीक्षण के लिए कोई अधिकारी आ रहा है। उसने हम लोगों को चेतावनी दे दी कि किताबों को छिपाकर रखदो, या लाइब्रेरी में पहुँचा दो। उसका मतलब उन पुस्तकों से था, जो हम क़ैद होते समय, जेल में अपने साथ लाये थे, और जो कि यहाँ की लाइब्रेरी में ऊँचे अफ़सरों के बिना जाने रहती थीं। हम सबने इन्स्पैक्टर की नेक सलाह को मान लिया। अकेले इवानौव ने नहीं माना।

डु नौवौ इस समय पुलिस-विभाग का डाइरेक्टर था। बाद में सन् १६०५-६ में यह होममेम्बर होगया और फ़ौजी दमन द्वारा क्रान्तिकारी

आन्दोलन को दबा देने में उसे सफलता मिली। आगे चलकर वह क्रान्ति-कारियों के हाथ से मारा गया!

डुनौवौ ने २८ नवम्बर को हम लोगों को आकर देखा। इवानौव की २८ नम्बर की कोठरी में, मिगनेट-रचित फ्रांस की राज्यक्रान्ति के इतिहास के ऊपर उसकी नज़र पड़ गई। उसने आश्चर्य प्रकट करते हुए इन्स्पैक्टर को आज्ञा दी कि कैदियों के सामाजिक और राजनैतिक विचारों पर जितनी किताबें यहाँ हों, वे सब हटा दी जावें। फलस्वरूप समाज-शास्त्र की पुस्तकें, डच और अमेरिका के प्रजातंत्र के इतिहास, प्रेसीडेण्ट लिङ्कन की जीवनी, पाँच जिल्दों में उन्नीसवीं शताब्दी का इतिहास, 'शरीर और आत्मा' नामकी पुस्तक, और पीसारेव की एक पुस्तक हटा दी गई। यही किताबें हम अपने साथ लाये थे।

हम लोगों ने सोचा कि हमें इस बात का विरोध करना चाहिए। यदि हम विरोध न करें तो शायद हमारी और सब पुस्तकें भी छीन ली जायँ, और हम अन्य सुविधाओं से भी वञ्चित कर दिये जायँ। विरोध के सम्बन्ध में हम लोगों की तीन प्रकार की विचार-धाराएँ थीं। एलेक्ज़ा-एड्रौव्ना और उसके समर्थक यह कहते थे कि प्रतिवाद में टहलने की सुविधा छोड़ दी जाय। मेरा और मेरे समर्थकों का यह कहना था कि प्रतिवाद में अनशन किया जाय, और वह तब तक जारी रखा जाय, जब तक कि, हमें पुस्तकें फिर से वापस न मिल जायँ। हम कहते थे कि या तो पुस्तकें ही लेकर रहेंगे, या इसी उद्योग में मर मिटेंगे! तीसरे विचार के वे लोग थे जो कहते थे कि हम इस बेबसी की दशा में कर ही क्या सकते हैं, इसलिए हमें चुप रहना चाहिए। बहुमत एलेक्ज़ाण्ड्रौव्ना के

विचारों का था। हम लोग केवल पाँच ही थे। लोपाटिन तीसरी विचार-धारा का आदमी था। एण्टोनौव को विवश होकर उसका साथ देना पड़ा, क्योंकि वह अकर्मण्यता के विरुद्ध था और व्यावहारिक रूप से काम करना चाहता था। तीन आदमी—एश्चैनब्रैनर, इवानौव, मैब्रूरोव—इस कारण हमारे साथ न पड़े कि अगर किसी कमज़ोरी की वजह से उन्हें बीच में खालेना पड़ा, तो उद्देश की हानि और होगी। पिछले दो आदमियों ने, खुल्लम-खुल्ला हमारा साथ न देकर यह ज़रूर किया कि वे गुप्त रूप से खाने को पाखाने में फेंक देते थे।

आख़िर हमारा अनशन आरम्भ हुआ। उसमें मेरे और एलेक्ज़ाण्ड्रौव्ना के विचारों के समर्थक थे। मुझे बाद में मालूम हुआ कि पिछले आदमियों ने यह तय कर लिया था कि वे पहले तो अनशन का विरोध करेंगे, पर जब मैं आरम्भ कर दूँगी, तब वे भी साथ देंगे और अन्त तक डटे रहेंगे।

यह भी निश्चय हुआ कि चाय ले लेंगे, परन्तु शक्कर नहीं, और स्त्रियां पुरुषों से दो दिन बाद अनशन आरम्भ करेंगी।

अनशन आरम्भ करके मैंने बड़ी ग़लती की। कारण यह कि इस काम में बहुमत नहीं था, केवल अल्पमत था, इसलिए अधिकारियों पर क्या असर पड़ता? यही नहीं कि, यह आन्दोलन प्रातिनिधिक नहीं है? दूसरी बात यह है कि ऐसी बातों में, अपने साथियों को देखकर अधकचरे, या ऐसे आदमी, जो इस सिद्धान्त के बिल्कुल विरुद्ध हैं, पर दूसरों को कष्ट सहते हुए देखकर सहानुभूति से साथ देने लग जाते हैं, और उसकी वास्तविकता से सहमत न होने के कारण पिछड़ कर कार्य्य को हानि

पहुँचाते हैं। जिन कामों में जान पर खेलना होता है उनमें ज़बर्दस्ती से लोग हाँके नहीं हँकते, बल्कि उनमें वेही लोग काम आते हैं जो सिद्धान्त में तन्मय हो, अपना सर हथेली पर रखकर काम करते हैं।

बुटसिन्स्की अनशन में ख़ून के कुल्ले करने लगा। उसे देखने को डाक्टर बुलाया गया! सोचने की बात है कि जो आदमी अपने हाथों से अपनी क़ब्र खोद रहा है, वही मौत से बचने के लिए डाक्टर को बुलाता है! स्वभावतः डाक्टर उसकी सहायता करने में असमर्थ था। उसने आने से साफ़ इन्कार कर दिया।

नवें दिन एक आदमी ने यह कहा कि अब अनशन तोड़ देना चाहिए। बहुमत से यह बात स्वीकार करली गई। पैपैाव ने मुझे यह सूचना दी और कहा कि मैं अनशन तोड़ दूँगा। मार्टीनौव तीसरे ही दिन खाने लगा था। मैंने उसके साथ अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। स्टैरौडवौर्स्की ने अपने ख़ून की नसें काट कर आत्म-हत्या करने की कोशिश की, परन्तु वह पकड़ा गया, और उसकी कोशिश बेकार गई। अन्त में वह भी खाने लगा! युर्कौन्स्की और मैं, केवल हम दोही डटे रहे। बाक़ी सबने अनशन तोड़ दिया।

मुझे अपने साथियों की इस कमज़ोरी से बड़ा ही धक्का लगा। पाँच बरस पहले, जब मैं यहाँ आई थी, तब क्रान्तिकारी चरित्र के सम्बन्ध में, विशेषकर क्रान्तिकारी समुदाय के ऐक्य में, मुझे बड़ा भरोसा था। इस ऐक्य की प्रतिछाया मुझे कार्य्यकारिणी कमेटी में अपनी आँख से देखने को मिली थी, और मेरे हृदय में यह बात जमी हुई थी कि सामूहिक क्रान्तिकारी अन्तःकरण भी कोई चीज़ है। ज़ैल्याबौव,

फ़ौलैङ्को आदि ने यह स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया था कि सच्चा क्रान्तिकारी वह है, जिसकी अप्रति-हत गति हो, और जो पीछे मुड़कर देखे तक नहीं ! आज जबकि, एक मौक़ा आया, तब उनमें से कुछ लोगों ने काम अधूरा छोड़ दिया। मुझे यह ख़याल और भी व्यथा पहुँचा रहा था कि जो लोग श्लूसैलबर्ग में थे, वे रूस के नर-रत्नों में से थे। परन्तु इन सब बातों से मुझे और भी अधिक बल मिला। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं अनशन जारी रखूँगी। वर्त्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए, अब मैं ज़िन्दा रहने की अपेक्षा मरने को अधिक आसान समझने लगी।

मुझे और युर्कौव्स्की को, अनशन करते हुए, औरों की अपेक्षा दो ही दिन अधिक हुए थे कि एक ऐसी घटना घटी, जिससे हमें भी अनशन तोड़ देना पड़ा। पौपौव और स्टैरौडवौर्स्की ने बिना एक दूसरे की राय लिये, मुझसे कहा कि यदि मैं अनशन से मर गई तो वे भी आत्महत्या कर डालेंगे ! उनकी इस नैतिक धाँधली से मुझे बड़ा क्रोध आया। उन्होंने एक तो मुझसे पूछे बिना अनशन के उद्देश को चौपट किया, और दूसरे ख़ुद मौत से बचने के लिए मुझे ज़िन्दा रखने की कोशिश की, और तीसरे उन्हें अपने पुरुषत्त्व के गौरव का ख़याल हुआ कि उनके मुक़ाबले एक औरत बाज़ी मारे ले जारही है। मैं अपने ऊपर अपने साथियों की हत्या का कलङ्क नहीं लेना चाहती थी, इसलिए मुझे भी अनशन तोड़ने को विवश होना पड़ा। परन्तु यह मैंने सदा के लिए निश्चय कर लिया कि ऐसे आदमियों के साथ जेल में कभी किसी प्रतिरोध में शामिल नहीं हूँगी। मुझे किसी बात का विरोध करना होगा, तो सोच-समझ कर ख़ुद ही करूँगी।

क़ैद के वक्त हम लोगों का जो रुपया जमा था, उसके सम्बन्ध में हमें सूचना दी गई कि वह हमारे सम्बन्धियों के पास भेज दिया जायगा। परन्तु असल में हुआ यह कि, हमारे अनशन के कारण वह ज़ब्त कर लिया गया।

६ दिन के अनशन में मुझे भूख नहीं लगी, और न, साथियों की तरह मुझे किसी तरह की तकलीफ़ हुई। मैं पड़ी-पड़ी किताबें पढ़ा करती थी। बाद में ज़रूर मैंने मानसिक और शारीरिक निर्बलता अनुभव की। कभी कभी चौंक कर पुकार उठती और रो पड़ती थी। यदि लोपाटिन के शब्द मेरे कान में न पड़ते, तो न जाने, मेरी क्या दशा होती। उन शब्दों का मतलब था कि मेरे लिए अब भी कुछ समाज-सेवा का काम बाक़ी है। इसी भाव ने मेरी मानसिक दशा सुधार दी और मैं जेल की चहारदीवारी के बाहर भी भविष्य देखने लगी।

२६

मनोरञ्जन

रे मुक़दमे के बाद माँ ने मुझे एक मूर्त्ति दी थी। उसे मैं बहुमूल्य वस्तु की तरह सदा अपने साथ रखती थी। श्लूसैलबर्ग में भी मुझसे उसे किसी ने लिया नहीं। मेरी माँ उसे हर्ष का चिह्न समझती थी। असल बात यह है कि श्लूसैलबर्ग में भी कोई न कोई ख़ुशी की बात होती ही रही।

पुराने क़िले में एक दिन हम लोग कुछ काम कर रहे थे। वहाँ एक अफ़सर अपने हाथ में से एक अख़बार पड़ा छोड़ गया। उसका मतलब यही था कि हम उसे ज़रूर पढ़ें, और हुआ भी यही। वह अख़बार जेल भर में एक हाथ से दूसरे में घूम गया। उत्तरी ध्रुव की बर्फ़ में, नेन्सन के फ्रेम नामके जहाज़ की गति, मध्य-अफ्रिका में स्टैनले की जंगलात की खोज, जर्मनी में साम्य-वादी प्रजातंत्र की पार्टी का विकास और उसके मेम्बरों का विस्तार, और वहाँ के शाह विलहैल्म का मज़दूरों के क़ानून के लिए यूरुपीय देशों की कान्फ्रेंस करना, आदि बातें हमने पढ़ीं। जर्मनी का हाल पढ़कर तो

साम्यवादी की हैसियत से हमें बड़ा हर्ष हुआ। सेंसर की कृपा के कारण हम अख़बार में कोई ऐसी बात नहीं पढ़ सके जिससे पता चलता कि हमारी मातृभूमि का क्या हाल है और उसकी भूमि में आज़ादी का अंकुर जमा है, या नहीं। इतने वर्षों में यह पहला ही अवसर था कि हमें अपनी चहारदीवारी की बाहरी दुनियाँ की झलक देखने को मिली।

गैनगार्ट श्लूसैलबर्ग का क़िलेदार था। वह बहुत उदार विचारों का आदमी था। उसने अपने यहाँ के क़ैदियों के लिए बहुत सी सुविधाएँ प्राप्त करलीं। वह क़ैदियों के मानसिक और शारीरिक विकास के कामों के लिए सदा उद्यत रहता था। उसने हमारे लिए सेंटपीटर्सबर्ग की लाइब्रेरियों से वे पुस्तकें मँगादीं, जो हमने पसन्द करली थीं। उन किताबों में लन्दन, मैन्चेस्टर, लिवरपूल आदि शहरों की औद्योगिक दशा, और अँगरेज़ी मज़दूरसङ्घ, हड़तालें, सहयोग-समितियों, यूनिवर्सिटियों, आदि के वर्णन ने हमारे जेल-जीवन पर पर्दा डाल दिया। आगे चलकर पुलिस-विभाग ने हमारा इस प्रकार लाइब्रेरियों से पुस्तकें मँगाकर पढ़ना बन्द कर दिया।

मौरोज़ौव को जेल के डाक्टर से मालूम हुआ कि सेंटपीटर्सबर्ग में प्रकृति-विज्ञान का एक ऐसा अजायबघर है, जो बाहर भी अपनी चीज़ें भेज देता है। उसने गैनगार्ट से प्रार्थना की कि उस अजायबघर से कुछ ज़रूरी चीज़ें हमारे लिए भी मँगा दी जाया करें। गैनगार्ट ने यह कह दिया कि मुझे ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं, पुलिस-विभाग से मंज़ूरी ले लो। मौरोज़ौव ने एक दरख़्वास्त भेज कर कहा कि मैं प्रकृति-विज्ञान के पदार्थों के समन्वय के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिख रहा हूँ,

इसलिए अजायबघर से कुछ ख़ास चीज़ें मँगादी जायँ। मैं भी इसी विषय का अध्ययन करना चाहती थी, परन्तु मौरैज़ौव की इस दरख़्वास्त के मंज़ूर होने की कोई आशा नहीं थी, और उसपर सब हँसते थे। संयोग से कभी कोई ऐसी बात भी होजाती है जिसकी कि पहले से आशा नहीं होती। जिस विभाग ने पुस्तकें मँगाने की इजाज़त नहीं दी थी, उसीने मौरैज़ौव की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली।

चार वर्ष तक यही सिलसिला जारी रहा कि डाक्टर बैज़ुरैाडनौव हर चैादहवें दिन नये वैज्ञानिक यंत्र और पदार्थ मँगा देता और पिछली देखी हुई चीज़ें वापस कर देता था। धीरे धीरे इस ओर हमारी सुविधाएँ बहुत बढ़ गईं। डाक्टर महोदय वैज्ञानिक तथा अन्य विषयों पर भी पुस्तकें लाने लगे, और बाद में अजायबघर की ओर से हमसे वैज्ञानिक प्रयोगों का काम भी लिया जाने लगा। हमारे बाग़ में कई-सौ तरह के पैादे लगे हुए थे, और श्लूसैलबर्ग-द्वीप की ज़मीन में सदियों की पुरानी चट्टानें मौजूद थीं। वैज्ञानिक दृष्टि से यह सब बातें बड़े काम की थीं। अजायबघर हम लोगों से प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के लिए अनेक वस्तुएँ तैयार कराता था। हमारा वह समय बड़े आनन्द से बीता। जब बैज़ुरैाडनौव और गैनगार्ट श्लूसैलबर्ग से चले गये, तब हमारे काम का चर्खा भी बन्द होगया।

२७
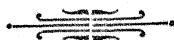
कुछ साथियों की विदाई

सैलबर्ग के सम्बन्ध में यह बात मशहूर थी कि यहाँ से आदमी बाहर लेजाये जाते हैं, ख़ुद जाते नहीं हैं। परन्तु यहाँ कुछ लोग ऐसे भी मौजूद थे जिनकी सज़ा का समय नियत था। जिनका समय नियत था, उसके पूरे होजाने पर वे चले गये।

यूवाचैव

यूवाचैव अपने निश्चित समय से बहुत पहले ही छोड़ दिया गया। मेरे साथ यह भी अभियुक्त था। ऐशैनब्रैनर ने उसे हमारी पार्टी के फ़ौजी विभाग में रखा था। यह निकोलाइयैव के नौसेना के अफ़सरों में था। यह बड़ा ज़बर्दस्त क्रान्तिकारी था। बड़ा काम करनेवाला था। उसे भी फाँसी की सज़ा हुई थी, किन्तु दया की प्रार्थना करने पर, फाँसी की सज़ा बदल कर १५ वर्ष की क़ैद कर दी गई थी। श्लूसैलबर्ग आते ही उसकी प्रवृत्ति धार्मिक होगई। दिन दिन भर वह घुटनों के बल पूजा किया करता, बाइबिल पढ़ता और बुधवार और

शुक्रवार को उपवास करता था। उसकी यह दशा पुलिस-विभाग को मालूम होगई और दो ही वर्ष में सैखलिन में निर्वासित करके, उससे नौसेना के अफ़सर का काम लिया गया। रूस लौटने पर, बाद में वह सेंटपीटर्सबर्ग में सरकार की ओर से जेल-कमेटी का एक अफ़सर बना दिया गया। हमारे सामने सबसे पहले यहाँ से यही आदमी छोड़ा गया।

कैरौलौव

दूसरा आदमी यह था। सन् १८८४ में इसे कियैव में हमारी पार्टी के १२ आदमियों के साथ चार वर्ष की सज़ा मिली थी। सन् १८८१ में जब मैं आज़ाद थी, तब सेंटपीटर्सबर्ग में इससे एक-दो बार मिल भी चुकी थी। यह आदमी शरीर से मज़बूत और विचारों का अच्छा था। जेल में यह हमेशा बीमार रहता था। इस कारण कि ४ वर्ष में छूटने की उम्मेद थी, वह हमारे झगड़ों में कभी शामिल न होता और अधिकारियों के आगे सीधा-सादा बना रहता था। हममें से बहुत आदमियों ने उसके द्वारा अपने परिवारों के पास बहुत सन्देश भेजे, पर उसने बाहर जाकर एक भी वादा पूरा न किया। श्लूसैलबर्ग ने उसके राजनैतिक विचारों को बदल दिया और वह बहुत ढीला पड़ गया। सन् १९०५ की क्रान्ति के बाद रूस की सबसे पहली पार्लामेंट ड्यूमा में वह उदार दल की ओर से भेजा गया। अब वह, हमारी पार्टी की भूमि-सुधार और सार्वजनिक वोट के अधिकार सम्बन्धी बातों के पक्ष में नहीं रहा था, क्योंकि चुनाव में धनिक ही उसके सहायक थे। कैरौलौव ने ड्यूमा में बहुत सम्मान पाया और उसने धार्मिक स्वतन्त्रता के प्रश्न का समर्थन किया। उसे

जब ड्यूमा में 'सज़ायाफ़्ता' के नामसे पुकारा गया तब उसने उत्तर दिया—"मेरा ख़ून बह चुका है, इसीलिए तुम आज इस कमरे में बैठ कर मीटिङ्ग कर रहे हो!" कैरोलौव सन् १९०७ में मर गया।

लैगौव्स्की

हमारे लिए तो मुक़द्दमे का स्वाँग रचा गया था, किन्तु लैगौव्स्की बेचारा केवल होममेम्बर के हुक्म से ९ बरस के लिए जेल में डाल दिया गया था। यह पैदल सैनिकों का अफ़सर था और हमारी पार्टी में शामिल था। इसके पास विस्फोटक पदार्थ बनाने का एक नुस्ख़ा पकड़ा गया था, इसलिए अक्टूबर सन् १८८९ में बिना किसी मुक़द्दमे के यह यहाँ भेज दिया गया। इसका बर्त्ताव यहाँ अच्छा नहीं था और अधिकारी इससे नाराज़ थे। इसलिए सज़ा पूरी होचुकने पर क़िलेदार ने आकर उसे हुक्म दिया कि होममेम्बर ने तुम्हारी ९ वर्ष की सज़ा और बढ़ा दी। जब यह सज़ा पूरी होगई तब वह छोड़ दिया गया। बाद में सन् १९०३ में खोपरा नदी में नहाते वक्त पानी में डूब कर मर गया।

मैनूचारौव

यह आदमी ख़ारकौव में पकड़ा गया था, पर बाद में भाग गया। सन् १८८४ में फिर पकड़ कर १० वर्ष के लिए यहाँ भेज दिया गया। इसके पूर्वज आर्मीनिया के रहने वाले थे। यह बहुत ज़्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था, और शक्ल से भद्दा था। परन्तु इससे अधिक दयालु और प्रेमी मनुष्य, अथवा अच्छा साथी मिलना कठिन है। यह हमसे इतना हिल-मिल गया था कि १० वर्ष की सज़ा पूरी होचुकने पर यहाँ से जाना ही नहीं

चाहता था। किन्तु यहाँ से ज़बर्दस्ती बाहर निकाल दिया गया। साइबेरिया में जाकर उसने शादी कर ली और एक छोटा-सा लड़का छोड़कर सन् १६०१ में इस दुनियाँ से चल बसा ! हम लोगों को उससे इतना प्रेम था कि हम पूरा नाम न लेकर उसे बहुत छोटे नाम से 'मेंन' ही कह कर पुकारते थे ! उसके छूटने के एक-दो वर्ष बाद मैंने सन् १८६६ का एक अख़बार उठा कर देखा तो उसमें अपनी ही लिखी हुई एक कविता देखी। उसके दूसरे पन्ने पर मेरी कविता के जवाब में एक दूसरी कविता थी जिसके नीचे (एम) लिखा हुआ था। मैं फ़ौरन समझ गई कि एम का मतलब मिखेलौव्स्की से है, और मेंन ने मेरी कविता द्वारा मेरी श्लूसैलबर्ग की आवाज़ मिखेलौव्स्की और अन्य मित्रों के पास पहुँचा दी है।

मेरी कविता का भाव यह था—"परमेश्वर की सुन्दर प्रकृति-स्थली में क्या मुझे घोंटनेवाली कोठरी ही रह गई है ?" इसके जवाब में था—"घबड़ाने की ज़रूरत नहीं है, आशा रखो, क्योंकि अन्धकार का अन्त हो रहा है और अरुणोदय होनेवाला है !"

सन् १८६४ में अपने बाप के मरने पर निकोलस द्वितीय तख्त पर बैठा। अधिकारियों का ख़याल था कि ख़ुशी में श्लूसैलबर्ग के सब क़ैदी छोड़ दिये जावेंगे। उस समय तो कुछ हुआ नहीं, परन्तु सन् १८६६ में क़िलेदार ने हम लोगों से कहा कि राज-तिलक की ख़ुशी में ज़ार ने इवानौव, ऐशनब्रैनर, स्टैरोडर्वौकी और पौलीवानौव की आजन्म क़ैद की सज़ा घटाकर २० वर्ष की कर दी गई है, और पैङ्क्राटौव, सूरैसैव, यानोविच और एलेक्ज़ाण्ड्रौव्ना की सज़ा घटाकर तिहाई कर दी गई है। फलस्वरूप पिछले तीन क़ैदी छोड़ दिये गये। एलेक्ज़ाण्ड्रौव्ना इस ख़बर से गुस्सा

हुई और उसे हमारा साथ छोड़ना अच्छा न लगा। परन्तु २३ नवम्बर को उसे छूटे हुए साथियों के साथ यहाँ से चला जाना पड़ा। उसी दिन १२ वर्ष की सज़ा भुगत चुकने पर मार्टीनौव और शैवलिन भी छोड़ दिये गये। जहाँ तक हम एक दूसरे को दिखाई दिये, वहाँ तक रुमाल हिलाते रहे! एलेक्ज़ाएड्रौव्ना जनवरी सन् १८९६ में, विद्रोही नौसेना के सिपाहियों के साथ ब्लैडीवौस्टौक में एक जुलूस में निकलते वक्त सरकारी मशीनगन से मारी गई!

पैङ्क्राटौव

यह आदमी सन् १८९८ में छोड़ दिया गया। इसका पेशा बढ़ई का था। गिरफ़्तारी के वक्त इसने एक सिपाही को घायल कर दिया था। यह हमारी पार्टी का मेम्बर था। इसकी कोठरी मेरे पास थी। इसकी उम्र केवल २० वर्ष की थी और मेरी ३२ की। पढ़ने-लिखने में मैं उसे सहायता दिया करती थी। यहाँ के अध्ययन ने उसे साइबेरिया में वैज्ञानिक खोजों का काम करने योग्य बना दिया।

ट्रीगौनी और पौलीवानौव

यह लोग सन् १९०२ में छोड़ दिये गये। पौलीवानौव सैरटौव प्रान्त के एक धनी ज़मीदार का लड़का था। स्कूल ही में उसे जनता से सहानुभूति होगई थी। सन् १८७८ में सर्बिया ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए जो लड़ाई लड़ी थी, उसमें उसने भाग लिया था। चार वर्ष बाद हमारी पार्टी के एक आदमी को बचाने की कोशिश करने में यह गिरफ़्तार कर लिया गया। यह बड़ा तेज़ पढ़नेवाला था। उसने स्वयं मुझसे कहा था

कि उसे १९ लाइनें दीखती हैं और एक साथ उन्हें पढ़ डालता है। वह समझता भी ख़ूब था। उसकी स्मरण-शक्ति इतनी तेज़ थी कि लण्डन के साप्ताहिक पत्र 'टाइम्स' को पढ़कर वह प्रायः प्रत्येक शब्द बिना देखे दुहरा देता था। उसकी साहित्यिक सूझ-बूझ भी बहुत अच्छी थी। सन् १९०३ में, उसने कुछ रहस्यपूर्ण कारणों से फ्रांस में आत्म-हत्या कर डाली !

श्लूसैलबर्ग से छूटकर सब लोगों को साइबेरिया में रहने की इजाज़त थी, और कहीं न रह सकते थे। उनमें से जो कुछ लोग बाहर गये भी, वे छिपकर गये।

२८

वैज्ञानिक अध्ययन

यः यह देखा गया है कि जब आदमी बड़ा होकर अपने काम में लग जाता है, तब स्कूल और कालेज में पढ़ी हुई बातों को भूल जाता है। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में एक ऐसा आन्दोलन चला था कि जो लोग अपने विद्यार्थी-जीवन में पढ़ी हुई बातों को फिर से ताज़ा करना चाहें वे शोटौका नामके शहर में जाकर अभ्यास कर लें। इस आन्दोलन का केन्द्र वहीं था। वहाँ अपने ज्ञान को विकसित करने के लिए बहुत से स्त्री-पुरुष एकत्रित होने लगे। मैंने भी सोचा कि मेरी उम्र ४० वर्ष की हो चुकी है, इसलिए मैं नियमानुसार बचपन में पढ़ी हुई बातों को फिर से ताज़ा कर लूँ।

ज़ूरिच में मुझे कैमिस्ट्री (रसायन-शास्त्र) पढ़ने का सबसे अधिक शौक़ था। मैं बर्न में एक अध्यापक की प्रयोगशाला में काम भी करती थी। वैसे तो वहाँ धातु-विद्या, बनस्पति-शास्त्र, जीव-शास्त्र, प्रकृति-विज्ञान, रसायन-शास्त्र आदि विषय अनिवार्य होने के कारण सभी पढ़ने पड़े

थे। मैं प्रकृति की सुन्दरता को अनुभव ज़रूर करती थी, किन्तु प्राकृतिक विषयों के अध्ययन की ओर मेरा ध्यान अधिक आकर्षित नहीं हुआ।

श्लूसैलबर्ग में इन सब विषयों को दुहराने का बहुत अच्छा मौक़ा मिल गया। डाक्टरी की जिन पुस्तकों को मैं यहाँ अपने साथ लाई थी, उन्हींसे मैंने दुहराने का श्रीगणेश किया। परन्तु मैंने बहुत जल्दी यह अनुभव किया कि अब जीवन में मुझे डाक्टरी से कभी काम ही नहीं पड़ेगा। इसलिए मैंने उन किताबों का देखना छोड़ दिया। अब मैंने बनस्पति-शास्त्र पढ़ना आरम्भ कर दिया। इसके लिए श्लूसैलबर्ग में विशेष सुविधा थी। ज़ार पीटर प्रथम के समय में, उसके हुक्म से श्लूसैलबर्ग पर चढ़ाई करते समय जो सिपाही मारे गये थे, उनकी क़ब्रों के चारों ओर एक घेरा बनाने के लिए हमारे साथियों ने ४० रूबल कमाये थे, उनसे गैनगार्ट ने कृपा कर एक ख़ुर्दबीन मँगा दी थी। यह ख़ुर्दबीन पौदों को देखने में बहुत काम आई। डाक्टर रैमोसैाव उन चीज़ों को मँगा देते थे जिनकी हमें ज़रूरत पड़ती थी।

हम लोगों में एक आदमी पदार्थ-विज्ञान का बड़ा पण्डित था। उसका नाम था लुकाशेविच। वह सन् १८८७ में पकड़ा गया था। उसने विश्वविद्यालय में भी बहुत नाम पाया था। विश्वविद्यालय स्वयं उसे अपने यहाँ रखना चाहता था। वह अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता था, और हरएक बात का निश्चित उत्तर देने के लिए तैयार रहता था। था वह बड़ा विनम्र। वह हरएक साथी को यथाशक्ति सहायता देने के लिए हर समय तैयार रहता था। वह हमें पढ़ाने के लिए तैयार होगया। उसने हमें जीव-शास्त्र भी पढ़ाया। वह जापानी मोम से बड़ी ख़ूबी के

साथ आकृतियाँ बना कर हमें समझाया करता था। वह ड्राइङ्ग भी बहुत अच्छी जानता था।

सेंटपीटर्सबर्ग के अजायबघर में बनस्पति सम्बन्धी जो वैज्ञानिक चीज़ें हमने बनाकर भेजीं, वे पैरिस की एक प्रदर्शिनी में भेज दी गईं। वहाँ उन चीज़ों का बड़ा नाम हुआ। किन्तु अजायबघर के अधिकारियों ने यह बात छिपाली थी कि वे चीज़ें किसी रूसी क़ैदखाने से बनकर आई हैं। यहाँ हमें समय तो काफ़ी मिलता ही था, साथही हमारे हृदय में यह बात भी जम गई थी कि छोटे-मोटे साधनों से हम बड़े बड़े काम करके कीर्त्ति कमावें। इसलिए हमने यहाँ बड़े बड़े करिश्मे कर दिखाये। हमने यहाँ बिजली की कई उपयोगी मशीनें भी बना डालीं। हमारे एक साथी ने जीव-शास्त्र का बड़ा ही विशद और व्यावहारिक अध्ययन किया। उसने कीड़े-मकोड़ों की रीति-नीति ख़ूब ही देखी-समझी और काच के एक छोटे घर में कीड़े-मकोड़ों को पाला और पैदा किया। इस प्रकार उसने जन्तु-जीवन की विभिन्न दशाओं का गहन अध्ययन कर लिया।

भूगर्भ-विद्या के अध्ययन के लिए लुकाशेविच ने हमारे लिए रङ्गीन चार्ट तैयार किये। खनिज पदार्थों और चट्टानों के विभाजन का काम हमने ख़ुर्दबीन की सहायता से किया। जिस प्रकार कोई आदमी चीन या जापान पहुँच कर, वहाँके सब आदमियों का एक ही रूप-रंग देखता है, और बाद में धीरे धीरे उनकी सूरत अलग अलग पहचानता है, इसी-प्रकार धीरे धीरे उक्त सब चीज़ों से हम परिचित होगये।

सेंटपीटर्सबर्ग के अजायबघर के लिए हमने काच में बहुत ही अच्छी

चीज़ें बनाकर भेजीं। रसायन-शास्त्र को भी हम भूल नहीं गये। हमने इसकी भी एक प्रयोगशाला बनाली थी।

इस प्रकार कई वर्षों से हमने प्रकृति-विज्ञान की मुख्य शाखाओं का, लुकाशेविच की संरक्षता में, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों रूप से अध्ययन कर लिया। जितना आनन्द हमें अपने अध्ययन में मिलता था, उससे भी अधिक आनन्द अपने अध्यापक के परिश्रम, उनकी कृपा और उदारता से मिलता था। प्रयोगशालाओं में अपने हाथों से बनाई हुई चीज़ों को देखने से हमें सचमुच बड़ा हर्ष होता था, किन्तु साथ ही, यह भी कुछ कम सन्तोष की बात नहीं थी कि हम ऐसे कामों में लग रहे थे जो संस्कृति की दृष्टि से भी बहुमूल्य थे।

हम लोगों में नौवरुस्की सबसे अधिक दक्ष और कार्य-कुशल था। दूसरा नम्बर मेरा और तीसरा मौरोज़ौव का था। लुकाशेविच तो हमारी गिनती में ही नहीं आसकता। इस काम से हम लोगों में इतनी घनिष्टता होगई कि श्लूसैलबर्ग-जीवन के बाद भी, बहुत दिनों तक हम एक दूसरे के सच्चे साथी बने रहे।

२९
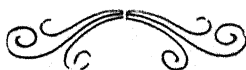
पत्र-व्यवहार

सैलबर्ग में जब हमें १३ वर्ष बीत गये, तब अपने परिवार के लोगों से पत्र-व्यवहार करने की इजाज़त मिल गई। स्वभावतः हमारी मनोवृत्ति ऐसी होगई थी कि पास न रहने के कारण अपने सम्बन्धियों और परिवारवालों से कोई प्रेम ही न रह गया था। मुझे तो सब सम्बन्धी मरे हुए से जान पड़ते थे, क्योंकि, उस जुदाई में मिलने की तो कोई आशा ही न हो सकती थी। यदि आरम्भ ही से हमारा यह अधिकार छीन न लिया गया होता तो सम्भव था कि परिवार के लोगों से प्रेम का तार जुड़ा रह जाता। हम पत्र-व्यवहार का लाभ, अपने परिवार के लोगों को वर्ष में केवल दो बार पत्र भेजकर ही उठा सकते थे। जो पत्र हमारे पास आते थे वे हमसे ले लिये जाते थे। कभी कभी पुराने पत्रों को बार बार पढ़कर आनन्द होता है और लिखना पहचानकर, लिखने-वाले के व्यक्तित्व का ध्यान आता है और उसके पिछले प्रेम-सम्बन्ध की याद आती है। पत्र वापस लिये जाने के कारण यह सब बातें हवा होगईं। इसपर भी आने-

जानेवाले पत्रों पर बड़ी सख़्त निगरानी थी, और पत्र-व्यवहार में अनेक ऐसा रुकावटें थीं जिनसे एक दूसरे के मन का भाव आज़ादी से व्यक्त नहीं कर पाते थे। यदि पहले मुझसे पूछ लिया जाता तो ऐसी सुविधा को कभी स्वीकार न करती, परन्तु यह बात अपनी माँ को न मालूम होने देती।

इस दशा में जो पत्र हमारे पास आते थे, उससे हमें हर्ष की अपेक्षा दुःख और होता था। लोपाटिन तो खाने के समय आये हुए पत्र को, इसलिए नहीं खोलता था कि खाना नहीं खाया जायगा, और बाद में इसलिए नहीं खोलता था कि खाने के बाद आराम में फ़र्क पड़ेगा। एक साथी के पास ख़बर आई कि ग़रीबी के कारण उसकी माँ एक शहर से दूसरे शहर में मारी मारी फिरती है। बहुत दिन तक इधर उधर भटकने के बाद वह एक अनाथालय में भरती होगई। हमारे साथी ने चाहा कि अपने कमाये हुए रुपये में से उसके लिए ख़र्च भेज दे, किन्तु पुलिस-विभाग ने उसे ऐसा करने से रोक दिया और अपने पास से ४० रूबल (रूसी-सिक्का) बुढ़िया को भेज दिये। थोड़े दिन बाद पुलिस-विभाग की ओर से हमारे साथी को सूचना दी गई कि रुपया पहुँचने से पहले ही उसकी माँ मर गई! एक दूसरे साथी की चिट्ठी में उसके परिवार के तितर-बितर होजाने का हाल था। जो मुसीबतें उसके सम्बन्धियों को उठानी पड़ी थीं, और जो दुखद घटनायें कई वर्षों में उसके परिवार में घटी थीं, वे सब एक ही साथ इस पत्र की कुल्हाड़ी के रूप में उसके सर पर आ गिरीं! माँ पागल होगई और कई वर्षों से पागलखाने में पड़ी हुई थी। बाप जो एक ज़मींदार था, अपनी ज़मींदारी के क़स्बे में बीमार पड़ा हुआ मर रहा था!

बिलकुल ग़ैर-आदमी उसकी जायदाद हड़प करने के लिए उसे घेरे हुए थे। दो बहिनों में परस्पर मन-मुटाव होगया, यहाँ तक कि, एक दूसरी से बोलचाल भी बन्द होगई। तीसरी बहिन ने वेश्या-वृत्ति अख़्त्यार करली। एक चौथे साथी की माँ ने लिखवाया था कि बुढ़ापे में उसके खाने-पीने का कोई सहारा नहीं है। वह असहाय अवस्था में अपने लड़के से अलग होने के कारण दुखी थी। मेरी बहिन ओल्गा ने १६ पृष्ठ का एक लम्बा पत्र मेरे पास भेजा। उसके पत्र से कोई यह ताड़ नहीं सकता था कि १३ वर्ष से हममें परस्पर पत्र-व्यवहार नहीं है। उसने सन् १८९६ की निज़्नीनौव्गोरोड की औद्योगिक प्रदर्शिनी, और वहाँ की कान्फ्रेंस के उत्साह का हाल लिखा। विट की आर्थिक नीति का उल्लेख करते हुए उसने लिखा कि इससे रूस के उद्योग-धन्दों की हालत बहुत सुधर गई है और उससे साम्यवादी प्रजातंत्र-आन्दोलन को बहुत लाभ पहुँचा है। पत्र में रूस की राजनैतिक स्थिति पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया था।

हमारे पास जो पत्र आते थे, उनमें घर की बातें लिखने की इजाज़त थी। प्रायः गेहूँ और फलों की फसल, ग़मी, शादी, जन्म, घरेलू बातों आदि से पत्र भरे रहते थे। ओल्गा ने बड़ी होशियारी से पत्र लिखा था। घरेलू बातों के बीच बीच में उसने और विषयों की भी चर्चा करदी थी। कहीं घरेलू बातों के रूप में सामाजिक दशा की वास्तविक झलक थी। इसी कारण शायद यह पत्र अधिकारियों की नज़र से बचकर हमारे पास तक पहुँच सका। सबके पत्र सब पढ़ लेते थे। ओल्गा के पत्र ने तो सब लोगों में एक विशेष आनन्द पैदा कर दिया। हम लोगों को पत्र में अपने साथियों, जेल की दशा, यहाँ के शासन, सार्वजनिक मामले आदि के

सम्बन्ध में कोई भी बात लिखने की इजाज़त नहीं थी। लोपाट्किन ने अपने भाई को उन्निद्र रोग की शिकायत करते हुए एक पत्र लिखा, और उसमें पुश्किन की कविता की एक लाइन उद्धृत करदी। उसका भाव था—
"सन्तरी की सङ्गीन में आधी रात का चन्द्रमा प्रकाशित होरहा है!"
पुलिस-विभाग ने वह पत्र वापस कर दिया और कहा कि इस पत्र को बदल कर दूसरा लिख दो। इस पत्र का आशय यही तो था कि क़िले की दीवार के सहारे सिपाही टहल रहा है, और सारे क़िले पर तथा दुनियाँ में चन्द्रमा चमक रहा है! परन्तु सेंसर ने पुश्किन की कविता का अर्थ यह लगाया कि इसमें क़ैदियों की कोठरियों का नक़्शा बताया गया है! अधिकारियों के इस हुक्म का कि पत्रों में हम केवल निजी बातें ही लिखें, मतलब यह जानना था कि जेल में आकर हमारी मनोवृत्ति में कुछ अन्तर पड़ा है कि नहीं? अन्त में वे असन्तुष्ट हुए।

बड़े बड़े काग़ज़ जो हमें लिखने को दिये जाते थे, उन्हें भरना मुश्किल पड़ आता था। इधर अधिकारी भी, वर्ष में दो ही बार के हमारे पत्रों के पढ़ने से थक गये थे, इसलिए वे हमें छोटे छोटे काग़ज़ देने लगे।

अपने परिवार से हम लोग इतने अलग होगये थे कि अपने सबसे प्यारे चाचा की मृत्यु का समाचार सुनकर मुझे कोई विशेष दुःख नहीं हुआ। एक दिन मेरी वह चिड़िया मर गई, जो हर वक़्त मेरी कोठरी में रहती थी। उसका मुझे इतना दुःख हुआ कि मैं १४ दिन तक रोती रही। अन्त में मुझे प्रार्थना करनी पड़ी कि मेरी कोठरी बदल दी जाय! मौरोज़ौव ने अपनी माँ को एक पत्र लिखा और मुझे सुनाया। मैंने कहा

कि इस पत्र में तो तुम्हारी मृत्यु के समाचार का बड़ा अच्छा मसाला निकलेगा।

अपने परिवार की ओर से मेरा चित्त इतना फिर गया था कि मैं सन् १६०३ में तब टस से मस हुई जब सुना कि माँ बीमार और मृत-प्रायः है!

३०
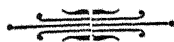
वर्कशाप और बाग़

न् १८९३ और ९४ में इतनी शिल्प-शालाएँ खुल गईं कि उनमें जाकर शारीरिक श्रम करना हमारे जीवन का मुख्य अङ्ग बन गया। हमें जिन चीज़ों की ज़रूरत पड़ी, वे सब सरकार ने मँगा दीं। उसने बढ़िया और क़ीमती चीजें मँगाने के लिए भी कोई बात उठा नहीं रखी। हम लोगों में से कुछ लोग तो बहुत अच्छा फर्नीचर बना लेते थे, और बाक़ी लोग आराम-कुर्सियाँ, मेजें और बहुत-सी मामूली चीज़ें बना लिया करते थे। कुछ लोग ख़ास तौर पर लकड़ी के बक्स, तश्तरियाँ, प्लेटें, घमले आदि अपने काम के लिए बना लेते थे। चूँकि हमारा बनाया हुआ काम सुशिक्षित लोगों का था, इसलिए सुन्दर होता था, और ख़ास तौर पर उस काम में सजावट होती थी। जो लोग रोटी के लिए परिश्रम करते हैं, और जो लोग विशेष प्रेम से उस काम को करते हैं, उनमें यह अन्तर होता है कि प्रेम से काम करने वाले उसके कई तर्ज निकाल लेते हैं और छोटे-मोटे आविष्कार भी कर लेते हैं। हमारी बनाई हुई विशेषतया सुन्दर चीजें बरामदे में सजा कर सबके

देखने के लिए रखी जाती थीं। एण्टौनौव ने ६ महीने में खाद्य-पदार्थों की एक बेल-बूटेदार आलमारी बनाकर वहाँ रखी थी। उसकी उजरत में उसे २५ रूबल मिले। उसने उन्हें हम सबमें बाँट दिया।

कई वर्ष तक कोशिश करने के बाद सन् १६०० में एण्टौनौव को सरकार से तालों के लिए भट्टी बनाने का हुक्म मिल गया। भट्टी पुराने क़िले के उस चौक में बनाई गई, जहाँ होकर मैं पैपौव वाले मामले में गई थी और जो जगह तब बिल्कुल सुनसान और मनहूस मालूम पड़ती थी। वहाँ अब हमारे कारख़ाने के लकड़ी आदि के औज़ार पड़े हुए थे। लुहारख़ाने में ख़ुद ही हमने भट्टी बना ली। वहाँ हम लोगों ने उस्तरे, चाक़ू, कुल्हाड़ी, तथा लुहार और बढ़ई के बहुत से औज़ार बना डाले। एण्टौनौव कहता था कि वह मोटर का एञ्जिन और मेरे लिए प्यानो बाजा भी बना सकता है।

बाग़वानी के काम में भी हमने ख़ूब तरक़्क़ी की। हम सूचीपत्रों में देखकर हर तरह के बीज मँगा लिया करते थे। अब हमने बाग़ में साढ़े चार-सौ प्रकार के फूल लगाये। हमारे बाग़ की तरकारियों में से तो कुछ अच्छी तरकारियाँ प्रदर्शिनी तक में भेजी गई थीं। लुकाशेविच की शलजम, एण्टौनौव की प्याज़, मेरी स्ट्रौबैरी, ईवानौव का गुलाब और पौपौव की टमाटर की फ़सल बहुत अच्छी हुई और चीज़ें सब बड़ी बड़ी आईं।

हम लोगों को तमाखू बिल्कुल नहीं मिलती थी। लुकाशेविच ने यह चाल चली कि बीजों का आर्डर देते वक़्त, उसमें निकोटिआना के लैटिन नाम से तमाखू का बीज भी मँगा लिया। जब तमाखू की फ़सल

तैयार होगई तब लोग उसे पहले छिपकर और बाद में खुल कर पीने लगे। हमारे पास दियासलाई नहीं थी, इसलिए आग जलाने के लिए हमने वे सब तरीक़े अख़्त्यार किये, जिनसे समय समय पर समस्त मानव-जाति काम ले चुकी है। सन् १८९६ में होम मिनिस्टर हमारे यहाँ आये। उन्हें वैज़रौडनौव ने यह समझा दिया कि ख़ून-ख़राबी की बीमारियों के लिए तमाखू राम-बाण औषधि है। तभी से तमाखू पीने की इजाज़त मिल गई। इधर जेल के अधिकारी तमाखू के धुएँ और उसकी ख़ुशबू से परेशान थे कि यह आता कहाँ से है, और चाहते थे कि तमाखू का हुक्म होजाय तो अच्छा है।

हमारे ६ बाग़ तो थे ही, गैनगार्ट के हुक्म से दो बाग़ और लगा दिये गये। फ्रौलैङ्को और पैपैव ने बाग़वानी के लिए पुराने क़िले का बड़ा चौक और ले लिया। अब वहाँ की सुहावनी घास भी खोद डाली गई। बाग़ बनने से यहाँ अब उस दृश्य का नाम तक मिट गया, जिसमें मिश्किन और मीनाकौव गोली से मार दिये गये थे, सन् १८८४ में रौगाचैव और स्ट्रौमबर्ग नाश को प्राप्त हुए थे, तथा एलेक्ज़ाण्डर यूलियानौव (लैनिन का भाई) और अन्य चार आदमी सन् १८८७ में मर मिटे थे! अब यहाँ ख़रबूजा, तमाखू, टमाटर, ककड़ी आदि चीज़ें सब जगह दिखाई देती थीं। इन सबमें फ्रौलैङ्को की कार्यपटुता की झलक थी।

समाज-सेवा, अथवा परोपकार के काम से वञ्चित रह कर, श्रम के ऐसे कामों के सिवा और हमारे लिए दूसरा कोई क्षेत्र ही न था, जिसमें हम अपनी शक्तियों का उपयोग कर सकते। इसलिए श्लूसैलबर्ग ऐसी मोद-विहीन चट्टानी भूमि को हरी-भरी और उर्वरा बनाने में हम संलग्न हो-

गये। लुकाशेविच और नोवोरुस्की ने अपने बाग़ में टीन के नल द्वारा ९ फुट ऊँचा एक फौव्वारा बना लिया। मुझे .खुश करने के लिए उन्होंने एक फौव्वारा मेरे बाग़ में भी बना दिया। इससे इस जगह की शोभा और भी बढ़ गई।

पुरानी जेल के पीछे जो ख़ाली मैदान पड़ा हुआ था वह मेरे साथियों की आँखों में बहुत खटकता था। उन्होंने वह जगह लेने के लिए जेल-अधिकारियों के सामने बड़ी वकालत की। सन् १८९८-९९ में वह जगह उन्हें मिल गई। यह जगह बिल्कुल निकम्मी पड़ी हुई थी। तीन फुट तक नीची ज़मीन चूना मिली हुई और कँकरीली थी। एक कोने में १०० वर्ष का पुराना एक बहुत बड़ा पेड़ था। ज़मीन के ऐसे टुकड़े को हमारे साथी एक स्वर्ग बनाना चाहते थे।

उन्होंने ज़मीन खोदना आरम्भ कर दिया। वहाँ की कँकरीली मिट्टी हटाकर वे बाग़ों की रौंसें बनाने को लेगये। एक जगह .खूब गहरा गड्ढा खोदा, जिसमें से उन्होंने बहुत सी मिट्टी तख़्ते भर के लिए निकाल ली। फिर गड्ढे में नीचे कँकरीली मिट्टी भर कर, तमाम ज़मीन के टुकड़े में बहुत गहराई तक उम्दा मिट्टी बिछा दी।

मुझे वहाँ जाने की इजाज़त नहीं थी इसलिए कि, साथी लोग उस ज़मीन को हरी-भरी दशा में दिखाकर मुझे अचम्भे में डालना चाहते थे। ऐसा ही हुआ भी। मैंने वहाँ जाकर विभिन्न प्रकार के फूल फूलते हुए देखे। उस १०० बरस के पुराने पेड़ पर लाल लाल फल लग रहे थे। वास्तव में वहाँ एक बहुत अच्छा बाग़ लग गया था।

३१
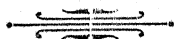
साहित्यिक जीवन
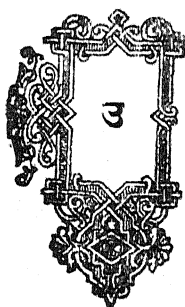
उपयोगिता की दृष्टि से हमारे यहाँ की लाइब्रेरी कुछ नहीं के बराबर थी। धीरे धीरे हमारी लाइब्रेरी सुधरने लगी और विभिन्न विषयों पर पुस्तकों की संख्या भी बढ़ने लगी। गैनगार्ट ने इस काम में हमें बहुत सहायता दी।

हम लोग जिल्दसाज़ी का काम भी करते थे। सिपाहियों के पास जो सस्ती पत्रिकाएँ आती थीं, वे हमें जिल्द बाँधने को दे दी जाती थीं। उन्हें पढ़ने से हमारा मनोरञ्जन ख़ूब होजाता था। सिपाहियों ने मुफ़्त में जिल्दें बाँधने के लिए हमें इतनी पत्रिकाएँ दे दीं कि आगे चलकर ऐसी बेगार करने से हमें इन्कार करना पड़ा। आरम्भ के १० वर्षों में हमने लाइब्रेरी में पुस्तकें बढ़ाने की बहुत कोशिश की, किन्तु जवाब यही मिला कि रुपया नहीं है। उपन्यास आदि मनोरञ्जक पुस्तकें मँगाने की प्रार्थना पर यह जवाब दिया जाता था कि ऐसा साहित्य तुम्हारी हार्दिक भावनाओं को भड़का देगा। जब कभी अधिकारी निरीक्षण के लिए यहाँ आते थे, तब मौरोज़ोव पुस्तकें मँगाने

के लिए उनके पीछे पड़ जाता था। उसीके उद्योग से हमारे यहाँ वैज्ञानिक पुस्तकें बहुत बढ़ गईं। सन् १८९५ में लाइब्रेरी में बहुत सी पुस्तकें मँगाली गईं। गैनगार्ट की देख-रेख में हम काम करते थे। उसकी उजरत से हमें जो रुपया मिलता था, वह हम पुस्तकें मँगाने में ख़र्च कर देते थे। पुस्तकें चुनकर हम पुलिस-विभाग की मंज़ूरी से मँगा लेते थे। कभी-कभी अधिकारी किसी पुस्तक के नाम से भड़क जाते और उसे नामंज़ूर कर देते। इस बात पर तो वे ख़याल ही न करते थे कि पुस्तक किस विषय की है, केवल उसका नाम ही उन्हें भड़काने के लिए काफ़ी था।

अगले वर्ष सन् १८९६ में सरकार ने लाइब्रेरी के लिए १४० रूबल वार्षिक देना मंज़ूर कर दिया। हम लोगों ने इस बात पर विचार किया कि प्रत्येक व्यक्ति की रुचि के अनुसार पुस्तकें कैसे मँगाई जा सकती हैं। मनोरञ्जन की पुस्तकें कम दामों पर आती थीं, किन्तु वैज्ञानिक पुस्तकों के लिए अधिक मूल्य देना पड़ता था। इसलिए सबने निश्चय किया कि कुल रक़म २० हिस्सों में बाँट कर, प्रत्येक की रुचि के अनुसार पुस्तकें मँगा ली जायँ, और अधिक मूल्य की पुस्तकें एक दूसरे की पारस्परिक सहायता से ख़रीद ली जाया करें। हमने इंग्लेंड, जर्मनी आदि बाहरी देशों से भी पत्र-पत्रिकाएँ मँगवाईं। हमारे यहाँ हर एक को नई नई वैज्ञानिक चीज़ों का बहुत शौक़ था। रेडियम आदि के नये विषयों को पढ़कर हम लोगों में खलबली मच गई। सबसे पहले हवाई जहाज़ के आविष्कार की ख़बर पढ़कर तो हमारे उत्साह का वारापार न रहा! टहलते वक्त आपस में हम हवाई जहाज़ की चर्चा करते थे। इससे सिपाहियों को सन्देह हुआ कि हम लोग श्लूसैलबर्ग से उड़कर निकल जायँगे!

मौरोज़ौव ने बादलों की गड़गड़ाहट और आँधी पर जो पुस्तक लिखी, और उसने ज्योतिष-शास्त्र-सम्बन्धी आसमान का जो चार्ट बनाया, उससे हम लोगों में बड़ा जोश फैला। एण्टौनौव तो हर्ष से गद्गद् हो उठा और कहने लगा कि मौरोज़ौव अद्वितीय विद्वान है और वह यूरुप भर में नाम करेगा।

रूसी मासिकपत्र, बहुधा छपने के एक वर्ष बाद हमें मिलते थे। कभी कभी उनमें से वर्त्तमान समाचार फाड़ दिये जाते थे। फिर भी हमें रूस की जागृति, विद्यार्थी-आन्दोलन, सार्वजनिक अशान्ति और हलचल, देश की औद्योगिक उन्नति आदि बातों का पता चल गया। आपस में हम लोगों में आर्थिक समस्याओं पर वाद-विवाद हुआ करता था। हमारे यहाँ सबसे अन्तिम क़ैदी सन् १८८८ का था। उसके बाद की स्थिति का हमें कुछ पता नहीं था। सन् १८६६ के आरम्भ में गैनगार्ट ने हमारे यहाँ 'न्यूवर्ड' (नया शब्द) नामका मासिकपत्र जिल्द बँधने के लिए भेजा। रूस में कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का यह पहला मासिकपत्र था। इससे हमारे यहाँ नये विचारों की बाढ़ आगई।

देश के युवक-समाज ने हमारे 'पौपुलिस्ट' विचारों को एक चुनौती दे डाली। कृषक-सङ्घ के ऊपर आक्रमण किया गया। लेखकों ने पूँजी की उपयोगिता दिखलाई और साम्यवादी बनने के लिए किसानों को, खेत से कारखानों की ओर जाने का रास्ता सुझाया, और कृषक-सङ्घों को पूँजी-वादी बताया। इसलिए 'न्यूवर्ड' द्वारा साम्यवादी प्रजा-सत्ता का सन्देश देश में मानसिक बम की तरह फट पड़ा! लुकाशेविच और नौवरुस्की ऐसे आदमी, जो कि सन् १८८७ के मार-काट के प्रोग्राम के समर्थक थे, और

जो पहली मार्च का दृश्य दुहराना चाहते थे, इस पत्र के विचारों से साम्यवादी प्रजातंत्र के हामी बन गये। शैबलिन, यानोविच और मौरोज़ौव भी उनके समर्थक होगये। बाक़ी के हम लोग, जो 'लैंड और फ्रीडम' तथा 'विल आफ़ दी पीपुल' के मेंबर थे, 'पैापुलिस्ट' बने रहे। सन् १८८४ में साम्यवादी प्रजातंत्र के वातावरण का कोई चिह्न न था। उस समय रूस में पूँजी की उपयोगिता पर उँगली उठाई जारही थी, और क्रान्तिकारी युवक-समाज उसके विरुद्ध था। परन्तु अब स्थिति दूसरी थी।

हमारी दोनों विचार के लोगों की बड़ी गरमागरम बहसें होने लगीं, और पारस्परिक कटुता बढ़ने लगी। वह लुकाशेविच, जिसका हम बड़ा आदर करते थे, विपक्षियों से झगड़ा करने पर उतारू होजाता। एक बार मामला इतना बढ़ गया कि मुझे यह कहना पड़ा कि सैद्धान्तिक वाद-विवाद की अपेक्षा यह बहुत ज़रूरी है कि हममें आपस में मेल बना रहे। इसपर आपस की तू-तू मैं-मैं बन्द होगई और बाद में कटुता भी दूर होगई।

लाइब्रेरी का क्षेत्र विस्तृत होजाने से लोग लिखने में जुट गये। मौरोज़ौव ने 'पदार्थ की बनावट' (The Structure of Matter) नामकी एक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक उसके मुख्य ग्रन्थों में से एक थी और बड़े आकर्षित ढँग से लिखी गई थी। उसने रसायन, प्रकृति, ज्योतिष आदि विषयों पर भी बहुत से लेख लिखे। जब वह यहाँ से छूटकर गया तब यह सब चीजें अपने साथ लेगया। यानोविच ने आर्थिक समस्याओं पर बहुमूल्य आँकड़े तैयार किये। लुकाशेविच ने पृथ्वी का एक बड़ा भारी इतिहास लिखा। उसके छूटने पर वह इतिहास

दो जिल्दों में प्रकाशित किया गया। उस पर 'ज्योग्रेफिक सुसाइटी' ने उसे स्वर्णपदक दिया और विज्ञान-समिति ने उसे पारितोषिक दिया। अन्य साथियों में, किसी ने उपन्यास, किसी ने आत्म-कथा और किसीने पत्रिका के रूप में ही कुछ लिख डाला।

काग़ज़ ऐसी चीज़ की उपयोगिता उस समय मालूम पड़ती है, जबकि वह मिलती नहीं, और जिस समय यह इच्छा प्रबल होती है कि अपने विचारों को प्रकट करें। जेल-जीवन में ऐसा ही होता है। ज़रूरत बड़ी चीज़ है। लुकाशेविच ने, आरम्भ में जब भूमि-सम्बन्धी नक़शे तैयार किये थे, तब उनमें काला रँग देने के लिए, लैम्प से काला, कोठरी की दीवार से प्लास्तर खुरच कर नीला और अपना रक्त निकाल कर लाल रँग भरने का काम लिया!

३२

साहसी युवक

बैगोलेपौव रूस का शिक्षा-मंत्री था। विद्यार्थियों के लिए उसका शासन असह्य होरहा था। सन् १६०० के विद्यार्थी-विद्रोह के बाद, सज़ा के रूप में, कियैव विश्वविद्यालय के १८३ छात्र और सेंटपीटर्स यूनिवर्सिटी के २७ छात्र फ़ौज में सिपाही बना दिये गये। उनमें अनेक छात्रों ने बारकों में आत्महत्या कर ली। इस कारण रूस के शिक्षित समाज और विद्यार्थियों में बड़ी हलचल मच-गई। कारपौविच पर इसका बहुत असर पड़ा। यह एक विद्यार्थी था, जो यूनिवर्सिटियों के बलवों में दो बार निकाला जा चुका था। यह समझता था कि राजनैतिक दृष्टि से विद्यार्थी-आन्दोलन बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यूनिवर्सिटी से निकाले जाने के बाद यह बर्लिन चला गया। क्रान्तिकारी पार्टी का मेम्बर न होते हुए भी, उसने स्वयं ही कुछ ऐसा काम कर डालने का निश्चय किया, जिससे सशस्त्र प्रतिरोध करके उस आदमी को दण्ड दे सके, जो यूनिवर्सिटी के युवकों का गला घोंटने-वाला समझा जाता था।

१४ फरवरी सन् १६०१ को शिक्षा-मंत्री का स्वागत होने को था। कारपौविच अचानक अकेला ही १२ फरवरी को बर्लिन से सेंटपीटर्सबर्ग आ-धमका। १४ फरबरी को स्वागत के समय उसने शिक्षा-मंत्री की गर्दन में गोली मार दी। मंत्री महोदय मार्च में इस दुनियाँ से चल बसे! कारपौविच को २० वर्ष की सज़ा देकर श्लूसैलबर्ग भेज दिया गया। इस काम से युवकों ने एक वीर की तरह उसका सम्मान किया। एक वर्ष के बाद उसीका अनुकरण कर बाल्माशेव नामके एक आदमी ने फिर ऐसा ही काम कर दिखाया। कारपौविच के काम का नतीजा यह निकला कि फिर यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी ज़बर्दस्ती कभी पल्टन में भर्ती नहीं किये गये। हमारे यहाँ नई स्थिति का दिग्दर्शन कराने-वाला, सन् १८८८ के बाद, अब १६०१ में यही एक व्यक्ति आया। हमने बड़े प्रेम से उसका नाम बैञ्जमिन रख लिया।

सब लोग नये आगन्तुक को देखने को उत्सुक थे। परन्तु मैं बहुत दुखी हुई इसलिए कि, आज वह ताक़त जिससे कि अभी काम नहीं लिया गया, वह चैतन्य शक्ति, जो कि अभी तक ख़र्च नहीं हुई, और वह जीवन, जो कि अपने विकास की प्रारम्भिक दशा में था, सदा के लिए श्लूसैलबर्ग की क़ब्र में दफ़नाया जारहा था! यहाँ आते समय हमारे हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हुई थीं, परन्तु उस युवक के हाथों में न तो हथकड़ी ही थीं, और न बदन पर जेल के कपड़े ही। मुस्कुराते हुए तथा कोठरियों की खिड़कियों की ओर अपना टोप हिला कर हमें सलाम करते हुए उसने यहाँ की चहारदीवारी में प्रवेश किया।

हमें इस बात की बड़ी उत्कण्ठा थी कि हम लोगों में और आज के रूसी

युवक में कुछ सामञ्जस्य भी है, या नहीं? हम लोग पुराने थे, और हमारे निर्वासन-काल में ही युवक सन्तति बढ़ कर मनुष्यत्त्व को प्राप्त हुई थी।

उस युवक से देश की वर्त्तमान स्थिति का समाचार पाकर हमारे हृदय फिर से आशापूर्ण होगये। उसने बतलाया कि समस्त रूस में जीवन-ज्योति जगमगा रही है। वह मज़दूर समुदाय, जो कि सन् १८८० के लगभग देखने को भी नहीं था, पश्चिमी यूरुप के ढाँचे पर आगे बढ़ रहा है। वह संयुक्त है, तहलका मचाकर सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश कर रहा है, आर्थिक दशा सुधारने के लिए माँगें पेश कर रहा है, हज़ारों मज़दूरों की संगठित हड़तालें हो रही हैं, और उनकी सङ्गठित शक्ति का प्रभाव शहरों की सड़कों और गलियों तक पर आँखों से देख पड़ता है। यूनिवर्सिटियों के युवकों की संख्या बहुत बढ़ गई है और अखिल रूस में उनकी एक संयुक्त संस्था है। वे सर्व-सम्मति से पुलिस-शासन का विरोध कर रहे हैं। विद्यार्थी-आन्दोलन के फलस्वरूप सैकड़ों युवक पकड़े गये और हज़ारों ही देश के बाहर निकाल दिये गये। ग़ैरक़ानूनी छापेखाने हर शहर में क्रान्तिकारी पर्चे, अख़बार और घोषणायें छापते हैं। जो प्रेस ज़ब्त हो जाता है, उसकी जगह फ़ौरन दूसरा प्रेस खुल जाता है। इस प्रकार आन्दोलन नई नई शक्तियों के द्वारा बराबर जारी है। युवक ने यह भी कहा कि ५ वर्ष में रूस में क्रान्ति होगी। यह बात हुई भी सच, क्योंकि रूसी क्रान्ति, युवक के कथनानुसार, ५ की अपेक्षा ४ ही वर्ष में होगई!

हमारे आन्दोलन के समाप्त होजाने पर, देश की जो स्थिति होगई थी, उसे ध्यान में रखकर, इस युवक की बातों पर विश्वास करना कठिन

होगया। हमारे लिए विश्वास करना इसलिए और भी कठिन था कि यहाँ कैदी के रूप में और साथी नहीं आये, दूसरे इसलिए कि, कार्पोविच अभी युवक है, उसके लिए ऐसा कहना बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि हाल ही में वह राजनैतिक अखाड़े से पकड़ का लाया गया है।

जेलवालों से कार्पोविच के झगड़े बहुत हुआ करते थे। उनके मना करने पर भी वह ख़ूब गाता था। एक बार इसी जुर्म में उसे दो-तीन दिन तक पुराने क़िले की हवा भी खिलाई गई थी।

वह हमारे लड़के की तरह, हम लोगों का आदर करता था। हम सब उम्र में उससे बहुत बड़े थे। हमारा भी उसपर बड़ा प्रेम था। उसकी बच्चों की सी उछल-कूद हमें बड़ी अच्छी लगती थी। इस बात से हमें विशेष सन्तोष था कि नये और पुराने क्रान्तिकारियों के बीच में कोई खाई नहीं है, और न, एक दूसरे के मनोभावों को समझने में कोई रुकावट ही है।

सन् १९०७ में यह युवक साइबेरिया से भाग गया। मार्च १९१७ की रूसी क्रान्ति के बाद, यह इँग्लैण्ड से रूस के लिए जहाज़ में रवाना हुआ। सन् १९०७ से १९१७ तक यह अधिकतर इँग्लैण्ड ही में बना रहा। रूस लौटते वक्त इसका जहाज़ जर्मन सबमरीन ने डुबा दिया, और उसके साथ ही कार्पोविच भी डूब गया!

३३

१९००
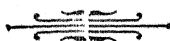
रते-गिरते सन् १९०२ के अन्त में शलूसैलबर्ग में हम १३ आदमी रह गये थे। कुछ छोड़ दिये गये थे, और तीन आदमी पागल होने के कारण अस्पताल भेज दिये गये थे। कुछ लोग तपैदिक़ ऐसे भयानक रोगों के शिकार हो चुके थे। बाक़ी के हम सबने, लड़-झगड़, कर धीरे धीरे बहुत सी सुविधायें प्राप्त करके अपना जेल-जीवन सुखद बना लिया था। हालांकि, सन् १८८४ के रेग्यूलेशन अभी टँगे हुए थे, लेकिन अब अमल में उनकी चर्चा तक नहीं थी। पुस्तकें प्राप्त करने के लिए अनशन करने के बाद, अधिकारियों ने किताबों के रूप में मानसिक भोजन न देकर, हमें खाना अच्छा देने लगे। सफेद रोटी, चीनी और चाय भी मिलने लगी। खाने की मिक़दार दूनी से ज़्यादा होगई। पहले ४० मिनट तक बाहर घूमने की इजाज़त थी, पर अब हम प्रायः दिन भर बाहर घूमते फिरा करते थे, यहाँ तक कि, खाने के बाद रात को भी टहल लिया करते थे। हमारी कोठरियों का रंग भी बदल गया था, और उनमें हमारी इच्छा के अनुसार हवा और प्रकाश का प्रबन्ध था। अब अकेले रहने का तो कोई सवाल ही नहीं था।

सन् १६०० के लगभग रूसी अधिकारीवर्ग को ध्यान भी न रहा कि सेंटपीटर्सबर्ग से ३५ मील के फ़ासले पर, महत्त्वपूर्ण राजनैतिक क़ैदी श्लूसैलबर्ग में सड़ रहे हैं! साम्यवादी प्रजातंत्र-आन्दोलन के विकास, विद्यार्थियों की हलचल, और मज़दूरों के राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश करने के कारण अधिकारियों के हाथ-पैर फूल गये थे। अब उन्हें इतनी फ़ुर्सत कहाँ थी कि सन् १८८० के आरम्भ के, एक चौथाई शताब्दी पहले के राजनैतिक क़ैदियों का ख़याल करते।

इधर जेलवालों के भी पञ्जे ढीले होने लगे। अब वे लोग तो नहीं, बल्कि हम हीं उन्हें डाँटा-फटकारा करते थे। हालांकि सुविधाएँ प्राप्त करने में आरम्भ ही से हमारी विजय होती चली आरही थी, फिर भी हम थे रौबिन्सन क्रूसो ही की तरह से, क्योंकि मानव-समाज में फिर से सम्मिलित होने की हमें कोई आशा ही नहीं थी। दुनियाँ की ओर से तो, हमारे दिमाग़ों पर पर्दा पड़ा हुआ था।

सन् १६०२ में यहाँ आये हुए मुझे भी २० वर्ष होगये। इस ज़माने में हमारी इच्छा ने बीती हुई बातों को बिल्कुल दबा दिया था। हमारे मन में समता का ऐसा भाव जम गया था कि दुःखों की तीखी जलन और वेदना ढूँढ़े नहीं मिलती थी। इस बात पर तो विश्वास ही कैसे करते कि हमारे वे सम्बन्धी, अथवा अनुयायी, या पीटर्सबर्ग के अधिकारी, जिन्हें हम भूल चुके थे, हमारी याद करते होंगे। स्वयं हमारा भी यह हाल था कि हम, लोगों के व्यक्तित्व को भूल गये थे और उनके नाम भी बड़ी मुश्किल से याद आते थे।

३४
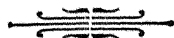
इन्स्पैक्टर की मरम्मत
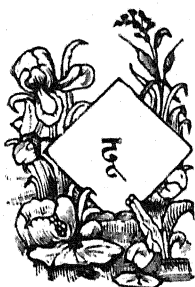
सरी मार्च को क़िलेदार ने आकर कहा कि आज से जेल के सब नियम-क़ानून पूरे तौर पर बर्त्ते जायँगे। मैंने उससे पूछा कि क्या मामला है, कहीं कुछ हो तो नहीं गया? उसने कहा कि मुझे नहीं मालूम। मैंने उसका हुक्म मानने और जेल के क़ायदे-क़ानून बर्त्तने से साफ़ इन्कार कर दिया। इसी तरह की बातचीत सब कोठरियों में हुई। सब जगह जेल में यही चर्चा होने लगी कि न जानें अब कैसी बीतेगी। मैं सोचने लगी कि जब हमारा कोई क़सूर नहीं है, तब इतनी सख़्ती क्यों होरही है, यदि यही हाल रहा तो जेल के अधिकारियों से हमारा ख़ूब सङ्घर्षण होगा।

एक दिन जेल में बड़ा कोलाहल मचा। कुछ आदमी, एक आदमी को एक कोठरी से हाथ-पैर पकड़ कर बाहर लारहे थे, और उसके मुँह से वेदना की आहें निकल रही थीं। हमारा ख़याल हुआ कि किसी ने

आत्महत्या करने की कोशिश की है। हमने असली बात जानने के लिए बड़ा शोर-ग़ुल मचाया। क़िलेदार ने कहा कि नम्बर २८ (ईवानौव) ने जेल के क़ायदों को तोड़ा है।

असल बात यह थी कि ईवानौव ने कोठरी के किवाड़ के उस सूराख़ के काच पर काग़ज़ चिपका दिया, जिसमें होकर सिपाही क़ैदी को देख लिया करते थे। उसे ऐसा करने से रोका गया, परन्तु उसने नहीं माना। इसलिए उसे सज़ा देने को दूर की अँधेरी कोठरी में चलने का हुक्म दिया गया। फिर भी, जब वह न उठा, तब सिपाही उसे हाथ बाँधकर उठा-लेजाने लगे। बाहर लाया जाने पर ईवानौव को मृगी का दौरा हो गया, इसलिए डाक्टर बुलवाया गया। फिर उसके हाथ-पैर खोल दिये गये। डाक्टर के आने के समय तक, वह ४० मिनट बेहोश पड़ा रहा। बाद में बड़ी मुश्किल से उसे होश आया।

हम लोगों में इस घटना की बड़ी चर्चा हुई। अब हमें इस बात की फ़िक्र हुई कि यह सब बातें कैसे दूर की जायँ। मैंने सोचा कि उच्च अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करदूँ। इसलिए मैंने अपनी माँ के नाम निम्नलिखित पत्र भेजा :—

"प्यारी माँ !

मैं आपके पत्र का उत्तर देने ही को थी कि एक ऐसी घटना होगई जिससे सब बातें उलट-पलट गईं। आप होममिनिस्टर, या पुलिस के डाइरेक्टर से प्रार्थना करें कि यहाँ फ़ौरन जाँच कराई जावे।

३ मार्च सन् १९०२ }

आपकी
वीरा"

मैंने इस पत्र का हाल अपने मित्रों को भी बतलाया। सबका ख़याल यह था कि यह पत्र यहाँ के अधिकारी ऊपर नहीं जाने देंगे। मैं इस सम्भावना को ध्यान ही में नहीं लाई। मेरे कोठरी में लौटते ही इन्स्पैक्टर ने आकर सूचना दी—

"तुम्हारा ख़त भेजा नहीं जा सकता, दूसरा लिखो।"

मैं—क्यों? तुम्हें भेजना पड़ेगा। ख़त रोकने का पुलिस-विभाग का काम है, तुम्हारा नहीं।

इन्स्पैक्टर—क़ायदे के मुताबिक़ ख़त में केवल तुम अपनी ही चर्चा कर सकती हो।

मैं—क़ायदा तो मैं जानती हूँ, तुम ख़त रवाना कर दो।

इन्स्पैक्टर—क़ायदे के मुताबिक़ उस ख़त को रवाना नहीं कर सकता। मैं तुम्हें नियम दिखाऊँगा।

वह जाकर सरकारी किताब ले आया और उसमें से नियम पढ़कर सुनाया।

मैं—रहने दो, यह मैं सब जानती हूँ। सब ख़त पुलिस-विभाग में पहुँच जाने चाहिए। फिर उनका काम भेजने, या रोकने का है।

इन्स्पैक्टर—चीख़ो मत! मैं विनम्र हूँ, तुम भी वैसी ही बनी रहो।

मैं—तुम हमको घोंटना चाहते हो, फिर कहते हो कि विनम्र बनी रहो! ख़त रवाना कर दो।

इ०—मिहरबानी करके चिल्लाओ मत, दूसरा ख़त लिख दो, तब भेज दूँगा।

मैं—नहीं लिखूँगी!

इन्स्पैक्टर—तो फिर, हम तुम्हें ख़त लिखने की सुविधा से वञ्चित कर दंगे ।

मैं—मैंने कोई अपराध नहीं किया, इसलिए तुम ऐसा कैसे कर सकते हो ?

बातों में समय काटकर मैं यह सोचने में लगी कि इसी क्षण मुझे निश्चय कर लेना है कि अब मैं किस ढँग से काम लूँ ।

इं—तुम दुबारा ख़त लिखने से इन्कार करती हो, इसलिए यह सुविधा हम छीनते हैं ।

मैं—तो तुम मुझे लिखने से रोकोगे ?

इं—हाँ !

यह ख़याल बिजली की तरह मेरे दिमाग़ में दौड़ गया कि केवल काम पड़ने पर ही अपनी शक्ति की परीक्षा होती है । बस, फिर क्या था, फ़ौरन मेरे हाथ इंस्पैक्टर साहब के कन्धों पर जा पहुँचे और उनके दोनों कन्धों से परतले दाएँ बाएँ गिर पड़े । इन्स्पैक्टर ने पुकार कर कहा कि, क्या कर रही हो ? फिर वह मेरी कोठरी से साफ़ भाग गया ! उसके साथ के सार्जेण्ट ने ज़मीन पर पड़े हुए परतले उठा लिये । वह सचमुच इस समय भौचक्का सा रहगया ।

मैंने सब साथियों को सूचना दे दी । अब जेल में बड़ी भारी हल-चल मच गई । मैंने अपने साथियों से यह प्रार्थना करदी कि कृपाकर अशान्ति न फैलावें, क्योंकि इस वक्त मुझे आत्म-नियंत्रण की बड़ी भारी आवश्यकता थी । मैं जानती थी कि मुझे पुराने क़िले की हवा खानी पड़ेगी ।

इधर श्लूसैलबर्ग में फाँसी का आयोजन किया जाने लगा । फ्रौलैक्रो

ने अपनी खिड़की में से सिपाहियों को फाँसी का सामान लेजाते हुए देखा। इस पर जेल में सन्नाटा छा गया। लोग दुःखित होगये। एण्टौनौव ने तो यह कहा कि हमें अब वीरा को अन्तिम प्रणाम करना पड़ेगा! असल में फाँसी का आयोजन बाल्माशेव के लिए होरहा था, वीरा के लिए नहीं। परन्तु वीरा के इस साहसिक कार्य्य का फल ज़रूर हुआ। होममिनिस्ट्री का एक प्रतिनिधि श्लूसैलबर्ग के क़िले में जाँच करने के लिए आया। वह अन्य क़ैदियों के सिवा मुझसे भी मिला। उसकी रिपोर्ट के अनुसार क़िलेदार और इन्स्पैक्टर दोनों ही हटा दिये गये। क़ैदियों की विजय हुई और पुराना ही शासन क़ायम रहा। मुझे ख़त लिखने की सुविधा नहीं रही। अब मुझे इसकी पर्वा भी नहीं थी।

३५

शूली पर !

सरी मई को सुबह ७ बजे क़िले में एक क़ैदी लाया गया। मुझे ख़ुशी और रञ्ज दोनों ही थे। रञ्ज इस बात का था कि हमारे साथ ही एक युवक श्लूसैलबर्ग की क़ब्र में दफ़नाया जारहा है। ख़ुशी इस बात की थी कि इस चहारदीवारी के बाहर लड़ाई जारी है।

शाम के खाने के बाद एण्टौनौव से मालूम हुआ कि कोई फाँसी पर चढ़ाया जायगा। उसके लिए एक पादरी भी आगया है। हम सभी चाहते थे कि जो आदमी फाँसी पर बलि चढ़ेगा, उसके साथ जाने के लिए अपनी आँखों ही को भेज दें! परन्तु रात के ३ बजे हमारे सबके बिना जाने सिपाही चुपचाप उसे निकाल लेगये। हमारे मन में यह भाव घाव कर रहा था कि जैसे जैसे क्षण बीतते जाते हैं, वैसे ही वैसे एक आदमी के जीवन का तार छोटा होता जारहा है।

अरुणोदय होते ही इन्स्पैक्टर, क़िलेदार, क़िले का फ़ौजी अफ़सर, डाक्टर, सिपाही, पादरी जल्लाद आदि एक के बाद दूसरे फाँसी-घर की

ओर जाते हुए दिखाई दिये। एक सिपाही ने फाँसी-घर के फाटक तक पहुँच अपने कलेजे पर हाथ रख कर यह भी कहा—"हुज़ूर, मुझे क्षमा कीजिए, मैं सहन नहीं कर सकता! मैं नहीं ·········!"

फाँसी होगई! यह व्यक्ति बालमाशेव था। इसने साम्यवादी क्रान्ति-कारियों के हुक्म से होम-मिनिस्टर को मार डाला था। फाँसी हो चुकने पर, पादरी उस दृश्य से दुःखित होकर गिरजे के पास एक बेञ्च पर जा बैठा!

३६
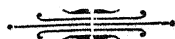
माँ का अन्त
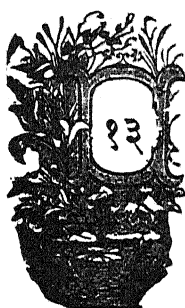
जनवरी सन् १६०३ को क़िलेदार ने मेरी कोठरी में आकर सूचना दी कि तुम्हारी माँ की दरख़्वास्त पर, सम्राट ज़ार ने कृपा करके तुम्हारी आजन्म क़ैद की सज़ा केवल २० वर्ष की करदी है, और २८ सितम्बर सन् १६०४ को तुम्हारी सज़ा ख़त्म होजायगी। मेरे पूछने पर यह भी कहा गया कि रिहाई का हुक्म सब लोगों को नहीं है, केवल मेरे ही लिए है। अब मुझे अपने परिवार से पत्र-व्यवहार करने की भी इजाज़त मिल गई। पहले तो मेरी भावना यह हुई कि अपनी माँ से नाता ही तोड़ दूँ, परन्तु सोच-विचार कर मैंने यह निश्चय किया कि मेरे सम्बन्धी जब ख़त लिखेंगे तब मैं जवाब दे दूँगी।

मुझे इस बात का बड़ा दुःख था कि जो माँ इतनी वीरा और धैर्य्यशीला थी कि अपनी दो लड़कियों को साइबेरिया में निर्वासित होते देख कर भी विचलित नहीं हुई थी, और जिसने मेरे सम्बन्ध में सज़ा कम कराने के लिए प्रार्थना न करने का वादा कर लिया था, उससे आज यह

कैसे बन पड़ा? ज़ार से प्रार्थना कर माँ ने मेरी इच्छा के विरुद्ध काम किया। मैं अपने साथियों का साथ अन्त तक नहीं छोड़ना चाहती थी। शाही कृपा ने मुझे और मेरी माँ को अपमानित किया। मुझे अपनी पूजनीया माता के हाथों अपमानित होना पड़ा।

तीन दिन के बाद बात खुल गई। माँ का ख़त आया। उससे मालूम पड़ा कि वह मर रही थी और तीन महीने से बीमार थी। दो बार भगन्दर का आपरेशन होचुका था। शाही कृपा के सम्बन्ध में माँ से मुझे जो असन्तोष था, वह सब जाता रहा। मुझे अपने निर्दय हृदय के ऊपर क्रोध आया और मैं बहुत विनम्र होगई। मुझे अपने बचपन की उस अवस्था की याद आई, जब माँ ने मेरे हृदय में आध्यात्मिक अंकुर जमाया था। मैं सोचने लगी कि मुक़दमे के दिनों में उससे मिलकर मुझे कितनी ख़ुशी होती थी, और उससे कितनी नैतिक सहायता मिलती थी। मुझे यह भी दुःख हुआ कि पहले तो कम उम्र में शादी होजाने के कारण माँ के पास न रह सकी, और फिर, क्रान्तिकारी कामों ने मुझे उसके पास न रहने दिया। मैं माँ की उन भलाइयों का कहाँ तक वर्णन करूँ, जो वह जीवन-भर मेरे साथ करती रही। अन्त में घुटनों के बल खड़ी होकर मैं ख़ूब रोई और मैंने अपने विचारों के लिए क्षमा चाही! इस पर मेरे अन्तःकरण से जवाब मिला कि माँ के हृदय में सन्तान की ओर से कोई जलन नहीं होती!

१५ नवम्बर सन् १९०३ को माँ चल बसी! फरवरी सन् १९०४ में मुझे अपनी बहिनों के पत्रों से यह भी मालूम होगया कि माँ को, उसके इच्छानुसार नीकीफौरौवौ में दफ़ना दिया गया!

३७

क्या करूँ ?

स प्रकार २० महीने बाद श्लूसैलबर्ग में २२ वर्ष की क़ैद का अन्त होने-वाला था। यह २० महीने इसलिए थे कि मैं भविष्य के लिए अपना प्रोग्राम निश्चित करलूँ। यह ख़याल कम उम्रवाले ऐसे आदमी के लिए नहीं था, जिसके लिए भूतकाल कुछ नहीं, और भविष्य ही सब कुछ है। मैं तो ५० वर्ष की हो चुकी थी, मेरे पीछे ही सब कुछ था, भविष्य में अधिक से अधिक २० वर्ष की आशा और हो सकती थी। मुझे विभिन्न प्रकार का अनुभव था। एक तो मैंने क्रान्ति का वह समय देखा था जो अग्नि की तरह तपता था, दूसरे मैं जेल-जीवन की उस लम्बी सड़क को पार कर चुकी थी जिसपर चलकर ख़ून भी बर्फ़ बन जाता था ! इस अनुभव के बल पर मुझे आगे का कार्यक्षेत्र ढूँढ़ना था। इन २०-२२ वर्षों में क्या से क्या होगया, इसका भी मुझे कुछ पता नहीं था। कार्पोविच ने ज़रूर ख़ुशख़बरी सुनाई थी, परन्तु उसकी वास्तविकता का क्या भरोसा हो

सकता था? जो लोग श्लूसैलबर्ग से ज़िन्दा निकले थे उन सबको साइबेरिया में रहना पड़ा। इसी प्रकार शायद मुझे भी वहीं जाकर अपने बाक़ी दिन बिताने पड़ें। जहाँ गाली-गलौज, और कोड़ेबाज़ी का अखण्ड राज था, और जहाँ का शासन काटने को दौड़ता था, वहाँ निर्वाह कैसे होता? और फिर ख़ूबी यह कि, देश के ऐसे लोगों के समाज में जाकर रहना पड़ता था जो लालच के कामों, मार-काट, लूट, आदि जुर्मों के अपराध में वहाँ बसा दिये गये थे। या फिर, यह सम्भव था कि उत्तरी ध्रुव के पास बर्फ़िस्तान में असभ्य जातियों में, जहाँ कि उनसे बातचीत करने का भी सहारा न हो, भेज दी जाऊँ।

इस दशा में श्लूसैलबर्ग की अपेक्षा वहाँ का अनिश्चित जीवन बिताना कैसा होगा? यह प्रश्न उठता था कि मैं 'वहाँ कैसे रह सकूँगी? इसी तरह की बहुत-सी बातें मेरे दिमाग़ में घूम रही थीं।

मैंने ९ मार्च सन् १९०४ को अपनी बहिनों को उनके पत्र का जवाब लिख दिया। उसमें पुरानी स्मृतियों की चर्चा करना भी मैं रोक न सकी।

३८

सेंटपीटर्सबर्ग में
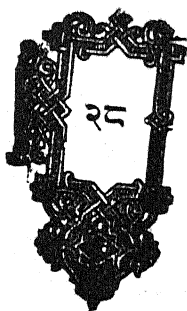
सितम्बर सन् १९०४ को मुझे सज़ा पाये हुए २० वर्ष हो चुके थे। उस दिन मैं श्लूसैलबर्ग से रवाना होने-वाली थी। २७ सितम्बर को ही मैं अपने उन ६ साथियों से विदा होली थी, जो यहाँ रह गये थे। किसी की आँखें भर आईं, और किसी का गला रुँध गया! मैंने सबको सान्त्वना दी।

पूछने पर मैंने अपने साथियों से कहा था कि इस जगह को छोड़ते हुए कौन रोवेगा? यह जवाब देते वक़्त मुझे श्लूसैलबर्ग के पिंजड़े की याद थी, अगर साथियों का ध्यान होता, तो मैं ऐसा कभी न कहती। इन लोगों के साथ समता बन्धुत्व, और प्रेम में मैंने २० वर्ष बिताये थे। यह समय भी, हमने एक दूसरे के बहुत ही घनिष्टतम संसर्ग में रहकर बिताया था। केवल उन्हींसे मुझे सहायता, हर्ष और सुख मिलता था। मेरी नज़रों में वेही परिजन, वेही समाज, वेही मातृभूमि और वेही मानव-जाति थे। असाधारण परिस्थितियों ने हम सबको असाधारण

प्रेम-पाश में बाँध दिया था, और अब मेरी रिहाई मेरे लिए इन्हीं बन्धनों को तोड़ देना चाहती थी। यही कारण मेरे आँसुओं का, और यही कारण मेरी निराशा का था।

२९ सितम्बर को मैं कोठरी से बाहर निकाली गई, और उन उन जगहों में होकर लेजाई गई, जहाँ कि हज़ारों बार मैं पहले घूम-फिर चुकी थी। अब अन्तिम बार वहाँ होकर निकल रही थी! जब तक मैं परिचित जगह में रही तब तक मेरी हालत ठीक रही, पर आगे बढ़कर अपरिचित स्थान में पहुँचते ही, मेरी हालत बदल गई। यह मालूम होने लगा कि ज़मीन मेरे पैरों के नीचे से फिसली जारही है, और वह दीवार, जिसका सहारा लेने को मैंने अपना हाथ बढ़ाया, नाटकीय दृश्य की दीवार की तरह, खिसकी जारही है! मैं सिसकियाँ भर कर रोने लगी! मैंने कहा कि मैं चल नहीं सकती, यह दीवार चल रही है। सिपाहियों ने पकड़कर मुझे गिरने से बचा लिया।

क्षण भर के बाद हम बाहर होगये। मैंने अन्तिम बार क़ैदियों की कोठरियों की ओर देख, मस्तक नवाकर प्रणाम किया! मेरे साथी सींकचों से लगे हुए, विदाई के समय अपने रूमाल हिला रहे थे। सेंटपीटर्सबर्ग जानेवाला जहाज़ अभी आया नहीं था, इसलिए क़िलेदार के दफ़्र में बैठकर मैं प्रतीक्षा करने लगी।

क़िलेदार ने कहा—"वीरा निकोलायैवना, थोड़ी चाय पियोगी?"

मैं, जो कि अभी १० मिनट तक, नम्बर ११ थी, एक साथ २० वर्ष बाद वीरा निकोलायैवना होगई! मैं उनकी कृपा का लाभ उठाना नहीं चाहती थी, इसलिए चाय पीने से इन्कार कर दिया।

पौलएड्रा नाम के जहाज़ पर मैं सवार कराई गई और सेंटपीटर्सबर्ग की ओर रवाना होगई। मुझे अपने भाई से, बाद में मालूम हुआ कि 'पौलएड्रा' शब्द का अर्थ, नौसैनिकों की बोल-चाल में, 'सावधान रहो'—से है।

सेंटपीटर्सबर्ग के निकट पहुँच कर मैंने इन्स्पैक्टर से पूछा कि मैं कहाँ लेजाई जारही हूँ? उसने जवाब दिया कि कल तो मैं तुम्हारे दो साथियों को "हवालात-भवन" में ले गया था, लेकिन तुम 'पीटर और पौल' के दुर्ग को जारही हो! यह सुनते ही मेरा दिल बैठ गया और सोचने लगी कि क्या मुझे अभी किसी और भी क़िले में रहना पड़ेगा?

रात को १० बजे "पौलएड्रा" इसी दुर्ग के पास जा पहुँचा। मैं भी पौल के दुर्ग में दाख़िल होगई। पहले की तरह अब यहाँ की कोठरियों में मिट्टी के तेल का नहीं, बल्कि बिजली का प्रकाश था। आते समय मैं रास्ते में ४३ नम्बर की उस कोठरी के सामने होकर भी निकली, जिसमें पहले २ वर्ष रह चुकी थी।

थोड़ी देर बाद एक ऊँचे क़द का बूढ़ा सा अफ़सर आया। उसने बिजली तथा हाथ-मुँह धोने के सामान की तरफ़ उँगली उठाकर कहा कि पहले की अपेक्षा अब तो सब प्रकार की सुविधा होगई है। वह बड़ी बेतकल्लुफ़ी के साथ मेरे पलँग पर बैठ गया। उसके इस असभ्य व्यवहार से नाराज़ होकर मैंने बड़े ज़ोर से फटकार बताई—"चले जाओ यहाँ से!" मैं इस उधेड़-बुन में थी कि साइबेरिया की अपेक्षा मुझे यहीं तो नहीं भेज दिया गया? मैंने एक सिपाही से लाइब्रेरी से एक पुस्तक लाने को कहा। वह किताब लाकर देगया। पढ़ते पढ़ते मैं सोगई। सच-मुच पौलएड्रा शब्द का अर्थ ठीक था।

तीन दिन तक कोई मुझसे मिल नहीं सका। चौथे दिन मैं कार्लाइल की 'वीर और वीर-पूजा' (Heroes and Hero-worship) नाम की पुस्तक पढ़ रही थी कि इन्स्पेक्टर ने मुझे ख़बर दी कि तुम्हारे भाई-बहिन आये हैं, और उनसे कह दिया गया है कि वे ऐसी बातें करें जिससे बीती हुई बातें ध्यान में न आवें। इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि हम सब अपने हृदय की उस आग को दबा दें, जो विगत २० वर्षों के इतिहास से प्रज्ज्वलित होरही है !

यह बात मेरे क़ाबू के बाहर थी कि मैं अपने हृदय की उन भावनाओं को दबादूँ, जो अधिकारियों के ज़ोर-ज़ुल्म और जेल की असहनीय यातनाओं से मेरे हृदय में उमड़ रही थीं ! जेल-वालों ने परिवार के लोगों से मिलने का अवसर तो मुझे ज़रूर दिया, किन्तु इस शर्त्त पर कि, बीती हुई बातों के ऊपर पर्दा डालने की शर्त्त के रूप में, नाटक खेले बिना ही, उसका सारा दृश्य दिखा दें ! इस दशा में हमें ऐसा असम्भव और विचित्र नाटक खेलने को विवश किया गया, जो हमारी कल्पना के एक दम बाहर था !

मैं अपने भाई बहिनों के सामने लाई गई। मैंने इन सबको बच्चों की शक्ल में देखा था। अब वहाँ परिपक्व अवस्था का एक स्वस्थ और सुन्दर ऐसा इञ्जीनियर बैठा देखा, जिसने अपने जीवन के कार्यक्षेत्र का राजमार्ग बना लिया था। यह भाई था। उसी अवस्था की ऐसी मोटी ताज़ी स्त्रियां बैठी हुई थीं, जो परिवारों की माताएँ थीं। मैं वहां डिकेन्स के उपन्यास की उस महिला की तरह बैठी हुई थी, जिसने कि, पति के उपस्थित न होने पर, घड़ी की सुई बारह पर ठहरा दी थी, और जिसकी

शादी की पोशाक चिथड़ों के रूप में परिणत होगई। मेरा जीवन २० वर्ष पहले बीत चुका था। मैं भी उस पागल औरत की तरह यही समझ रही थी कि जीवन की घड़ी में अब भी बारह बजे हैं!

मैं अपने भाई-बहिनों से जाकर मिली। मेरे भाई ने अपने हाथों में मेरे हाथ ले लिये। मैं धीरे धीरे भाई को पहचानने लगी। बातें बहुत मामूली और ऊपरी ही हो पाई थीं कि इन्स्पैक्टर ने कहा कि भेंट का समय समाप्त होगया। ॐ

ॐ वीराफिगनर के श्लूसैलबर्ग के साथियों में से अधिकतर मर गये। सन् १६०४ में वीराफिगनर २० वर्ष की क़ैद के बाद यहाँ से छोड़ तो दी गई, परन्तु फिर साइबेरिया में निर्वासित करदी गई। आगे चलकर वहाँ से वह किसी समय रूस में वापस आगई।